ओ३म्

आठों प्रमाणों से सि…

हमारा पुनर्जन्म एवं कर्म…

जिस पर गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्याल…
फिलासफी [PhD] की उपाधि वर्ष 1985 मे…



लेखक -/ डा० रामेश्वर दयाल गुप्त बी. एस सी. एम. ए. [द्व] पी एच डी. (द्व)
रिटायर्ड इंजीनियर . सिद्धान्त-शास्त्री
…ीय आर्यपीठ - आर्य नगर - ज्वालापुर (हरिद्वार)



गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
के
वर्ष 1987
के दीक्षान्त समारोह पर लेखक
डा. रामेश्वर दयाल गुप्त
M.A. द्वय Ph. D.
द्वारा उपाधि ग्रहण

समर्पण

पूज्य पिता जी



...बराम गुप्ता [विक्रमाब्द १९६०–२०३८]

...र (हरिगंज) जनपद-एटा उ०प्र०]

... के ४० वर्ष मंन्त्री/प्रधान आदि

... का प्रबन्ध किया

...त किया।

...उपकृत-पुत्र

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित हैं। इस तिथि सहित ३०वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

ओ३म्

पुनर्जन्म एवं कर्मफल-सिद्धान्त

(जिसका स्रोत लेखक का शोध प्रबन्ध था)
जिसका शीर्षक था

"जीवात्मा के वेद प्रतिपादित स्वरुप की विवेचना"

और जिस पर गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय से उसे डाक्टर आफ फिलासफी (Ph. D.) की डिग्री मिली।

लेखक व प्रकाशक :
डा० रामेस्वर दयाल गुप्त, एम.ए. (द्वय), पी एच. डी. (द्वय)
प्राप्ति स्थान :– रामेश्वर कुञ्ज
..र :– २६/१ आर्य नगर, पोस्ट-ज्वालापुर, जनपद-हरद्वार
: ०१३३-४२७००१ एवं ४२३५३३
..ड – २४६४०७

प्रथम बार :– [अनुदान एवं पोस्टल कन्सेशन की दृष्टि से घटाया हुआ लागत राशि]:

मूल्य :– मात्र पचास रुपया

मुद्रण :– अनुभव एवं प्रिस प्रिन्टर्स
अवधूत मण्डल आश्रम मार्ग, आर्य नगर
ज्वालापुर (हरद्वार)

प्राक्कथन

जहां प्राच्य दार्शनिकों में जीव की विभुता, अणुता, चैतन्य और ज्ञानात्मकता को लेकर अनेक दृष्टिकोण पाये जाते हैं, वहीं पाश्चात्य वैज्ञानिकों, साम्यवादी चिन्तकों एवं एतद्देशीय चारवाक दर्शन द्वारा जीव के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह अंकित हुआ मिलता है। इस प्रकार जीवात्मा के विषय में मतैक्य नही अपितु मतभेद है। मनुष्य अल्पज्ञ है एवं परमात्मा सर्वज्ञ। इस सिद्धान्तानुसार मनुष्यकृत चिन्तन भी अल्पकोटि का होता है। जिससे उसमें मतभेद पाया जाना कोई असम्भव नही है। वेद परमात्मा का आदि ज्ञान हैं। उसमें मानवीय चिन्तन का सम्मिश्रण न होने से वह शुद्ध एव सत्य है। इसलिए जीवात्मा के 'वेद प्रतिपादित स्वरुप की विवेचना' शीर्षक शोध में लेखक ने जीवात्मा की सत्ता, अनादिता, अनेकता, कर्मफलभोक्ता आदि के सिद्धान्तों का ऋग्वेद और उसके अनुवर्ती वैदिक वाड.मय के परिप्रेक्ष्य में मनन चिन्तन किया है और साथ ही पश्चिम के विज्ञान द्वारा इस पर की गई खोजों को भी उद्घृत किया है। यह अनुसंधान लेखक की अध्यवसायी प्रवृत्ति का परिचायक है।

वैदिक वाड.मय में तृण से लेकर मोक्षपर्यन्त सभी पदार्थों का कहीं विस्तार से तो कहीं अल्प 'ग्रामम् गच्छन् तृण स्पृशतिवत्' वर्णन हुआ है। आध्यात्मिकता से तो वेद अनुस्यूत हैं। इनमें दार्शनिक भावों का तो बड़े ही मार्मिक शब्दों में वर्णन किया गया है। ऋग्वेद ने जहाँ ईश्वर और प्रकृति की सत्ता का बखान किया, वहीं जीव का भी पिप्पलं स्वादिन्त, कहकर उसकी सत्ता भी सिद्ध की है। हमारी दृष्टि में वेदों में जीव को अमरता और मृत्यु के उपरान्त की स्थिति के विषय में दार्शनिक चिन्तन अत्यल्प है। यदि लेखक इस तरफ भी कुछ मौलिक प्रकाश डालते तो बहुत अच्छा होता।

आत्मा के साथ जब जीव शब्द जुड़ जाता है, तो उसका मौलिक स्वरुप ही बदल जाता है। आत्मा शब्द एक चेतन तत्व का बोधक है जो ईश्वर और पुरुष दोनों के लिए ही प्रयुक्त होता है। किन्तु जीव शब्द के साथ आत्मा का प्रयोग केवल पुरुष के लिए ही होता है। संस्कृत भाषा के व्याकरण की प्रकृति एवं प्रक्रिया के अनुसार सततगमनवाची 'अत्' धातु से 'मनिणं' प्रत्यय करने पर 'आत्मा' शब्द सिद्ध होता है। जिसका अर्थ होता है सतत गतिशील तथा सतत सर्वत्र व्याप्त। जीवात्मा अनादिकाल से एक देह से दूसरे में और दूसरे से तीसरे में निरन्तर गतिकरता चला आ रहा है। इसलिए सतत् गतिशील अर्थ जीवात्मा पर लागू होता है। जो सतत सर्वत्र व्यापक रहता है उसे 'परमात्मा' कहते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक पाँच अध्यायों में विभक्त है। प्रारम्भिक दो अध्यायों में प्रत्यक्ष आदि आठ प्रमाणों के आधार पर जीव की अमरता की पुष्टि की गई

है। तृतीय अध्याय में जीव के जन्म व पुनर्जन्म के कारण की विवेचना की गई है। यह स्थापना की गई है कि एतद्विषयक वैदिक कर्म और कर्मफल व्यवस्था कितनी अविरुद्ध है।

कर्म का विषय बड़ा गहन है। आत्मा के साथ स्वभावतः इसका सम्बन्ध होने से पूर्वी और पश्चिमी सभी विद्वानों ने जी खोलकर उसके अंग और प्रत्यंगों पर विचार करने का यत्न किया है। पश्चिमी विद्वानों ने अपनी शैली के अनुसार अधिक विस्तार से इस सम्बन्ध में लेख लिखें हैं। पुस्तक लेखक ने गम्भीरता से उन पर भी विचार किया है। प्रबन्ध की उपयोगिता में इससे चार चांद लग गए।

चतुर्थ और पंचम अध्याय क्रमशः जीव का अनेक लोक-लोकान्तरों में सेन्द्रिय या निरिन्द्रय शरीर के साथ वास और मुक्ति प्रकरण से सम्बद्ध है।

इस प्रकार यह प्रबन्ध आत्मबिषयक नाना विचारों का कोष है। अतः यह पठनीय एवं संग्रहणीय है। इसका अध्ययन करते समय ऐसा लगता है जैसे हम किसी वस्तु का कालक्रमिक इतिहास पढ़ रहे हों। प्रस्तुत पुस्तक के अन्त में 'वृक्षों में जीव विषयक मान्यता' की भी अति संक्षेप में चर्चा की गई है। इस पर पं० गणपति शर्मा एवं स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती तथा पं० राजवीर शास्त्री एवं प० रामदयालु [शास्त्री] के बीच शास्त्रार्थ हो चुके हैं। अस्तु। पुनर्जन्म एवं कर्मफल सिद्धान्त सम्बन्धी इस ग्रन्थ से पूर्व आर्यसमाज के विद्वानों ने इस विषय पर सैकड़ों ग्रन्थों का प्रणयन किया है। जिनमें नारायण स्वामी कृत 'कर्मरहस्य', पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय प्रणीत 'जीवात्मा' और 'आस्तिकवाद' कर्मनारायण कपूर द्वारा अंग्रेजी में लिखित Autobiography of the soul अपना प्रमुख स्थान रखते हैं।

अनुसंधान एक सतत् प्रक्रिया है। जो कि निरन्तर प्रवाहमान नदी जल के तुल्य स्वच्छ एवं निर्मल है। जो कि समाज, राष्ट्र एवं संसार को नयी दिशा एवं चेतना देती है। उसके अवरूद्ध हो जाने पर समाज में अनेक बुराइयां घर कर जाती हैं। एवं उसका विकास भी अवरूद्ध सा लगने लगता है। इसलिए पं० लेखराम ने कहा था कि तहरीर ओर तकरीर अर्थात् लेखन और व्याख्यान का काम बन्द नहीं होना चाहिय। इस दृष्टि से यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ से वैदिक साहित्य में 'एक महत्वपूर्ण अध्ययन की वृद्धि हुई है और इस क्षेत्र में रूचि रखने वाले पाठक और जिज्ञासु विचारक लाभान्वित हो सकेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। डा० रामेश्वर दयाल गुप्त को ऐसे ग्रन्थ के प्रणयन पर मैं अपनी हार्दिक बधाई देता हूं।

डा० धर्मपाल
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

* बधाई *

परम कारुणिक जगत् पिता ने प्राणी मात्र के कल्याण के लिए वेदों की रचना की। मानव जीवन गाथा वेदों से प्रारम्भ होती है। उत्थान और पतन की कहानी क्रमशः चलती रहती है। प्राणी जन्म लेते हैं और निर्धारित समय पर मर जाते हैं। मर कर फिर जन्म लेते हैं। मरना और जन्म लेना अनादि और अनन्त है। "जायस्व-म्रियस्व" की यात्रा निरन्तर चलती रहती है। शिशु से युवा, युवा से वृद्ध, वृद्ध से मृत्यु और मृत्यु से फिर जन्म लेकर शिशु होना, यही हमारी नियति है ? अब प्रश्न यह होता है कि मरने से पूर्व और जन्म के बाद क्या होता है ? यही समय मनुष्य के अपने हाथ में होता है। वह जैसा बनना चाहता है, यदि वैसा ही कर्म करता है तो वही बन जाता है। अपने पुरुषार्थ से सुख और आनन्द को प्राप्त कर सकता है। अपने ही अशुभ कर्म से दुःख तथा कष्ट को प्राप्त करता है। यही कर्मफल व्यवस्था है। कर्म-फल व्यवस्था के लिए एक कर्माध्यक्ष की आवश्यकता होती है। ईश्वर को सभी जीवों के कर्मों का द्रष्टा और फलप्रदाता कहा गया है।

योग दर्शन का सुस्पष्ट कथन है –"सति मूले यद्विपाको जात्यायुर्भोगाः" कर्मों के आधार पर ही जाति, आयु और भोग प्राप्त होते हैं। यजुर्वेद का कथन है-"स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व" हे मनुष्य ! तुम स्वयं अपने शरीर का निर्माण करो, तुम स्वयं यज्ञ (कर्म) करो और तुम स्वयं ही उसका भोग करो। सब कुछ मनुष्य के कर्म पर आधारित है। कर्मफल को भोगने के लिए पुनर्जन्म को मानना अनिवार्य है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक डा० रामेश्वर दयाल गुप्त जी ने बड़े परिश्रम से कार्य किया है। सैकड़ों ग्रन्थों का अध्ययन किया है। सेवा निवृत्ति के बाद वैदिक साहित्य के अध्ययन के लिए गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार के वेद विभाग में प्रवेश लिया। वहीं से ही मास्टर्स ऑफ आर्ट और डाक्टर ऑफ फिलासोफी की उपाधि प्राप्त की। एक ओर वे हमारे परिवार के पिता तुल्य पद पर थे और दूसरी ओर ये बन्धु जी के छात्र रहे। जिन्होंने इन्हें निरुक्त पढ़ाया। अतएव यह प्रस्तुति हमारे लिए भी गौरव की वस्तु है और हम उन्हें इस बहुमूल्य कृति पर प्रचुर बधाई देते हैं।

चन्द्रकान्ता बन्धु M.A. B.ed
बन्धु सदन, आर्यनगर, कनखल रोड
पोस्ट-ज्वालापुर-२४९४०७
जिला-हरिद्वार

डा. मनुदेव बन्धु M.A., Ph.D.
अध्यक्ष–वेद विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
(हरिद्वार)

तिथि १५-८-९६

जीवात्मा के वेद प्रतिपादित स्वरुप की विवेचना :-

—: प्राक्कथन :—

इस शोध के हर अध्याय का साराँश पृथक लघु पुस्तिका के रूप में मुद्रित है।

विषय सूची (अध्याय 1 : साधारण प्रतिज्ञा)

(पृष्ठ संख्या कोष्ठक में है।)

अध्याय–2

जीव की अमरता के सिद्धान्त की पुष्टि :–

अध्याय 4

आत्मा का अन्य लोकों में भ्रमण और जन्म लेना

अध्याय 5

भाग– 5 – उ प सं हा र–

* इत्यलम् *

प्राक्कथन ।—

जीवात्मा के वेद प्रतिपादित स्वरूप की विवेचना

सारे विश्व का अब तक का दार्शनिक चिन्तन प्रकृति, जीव तथा ईश्वर के अस्तित्व और उनके पारस्परिक सम्बन्धों पर हुए चिन्तन की कहानी मात्र है। इनमें से प्रथम दो तो दृष्टिगत है :— उनसे इन्कार कैसा ? केवल ईश्वर ही अस्ति और नास्ति के ऊहापोह का विषय है। प्रकृति के मूल रूप को विज्ञान ने अनन्त सिद्ध कर दिया है । Law of Indestructibility of Mass—इसमें प्रमाण है। और प्रकृति का विस्तार लोकलोकान्तरों के रूप में अनन्त है। और जीव की चैतन्यता और बुद्धितत्व भी दिखाई देता है। पश्चिम में वैज्ञानिकों का एक गुट तथा कम्युनिस्ट चिन्तत जीव का अस्तित्व नहीं मानता। पूर्व में आचार्य बृहस्पति का भी ऐसा ही दर्शन है। जिसे उनके शिष्य चारवाक के निम्न श्लोकार्द्धों से जाना जाता है।

यावज्जीवेत् सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचर ।
भस्मीभूतस्य शरीरस्य पुनरागमनम् कुतः ?

और पश्चिम के सैमेटिक धर्म जोव को अनादि तो नहीं मानते, पर अनन्त अवश्य स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार खुदा द्वारा निर्मित होकर एक जीवन बिता कर वे कर्मानुसार अनन्त काल तक दोजख या बहिश्त में निवास करते हैं।

यह खोजना है कि विश्व की सर्वप्रथम पुस्तक ऋग्वेद और उसका अनुबर्ती वैदिक वाड्.मय इस विपय में क्या कहता है। इसलिए यह शोधकार्य हाथ में लिया गया है। जो कुछ आदि—पुरातन होता है. उसमें मानवोय चिन्तन का सम्मिश्रण न होने से वह शुद्ध एव सत्य होता है— इसलिए उसे ईश्वरीय (Divine) संज्ञा दी जाती है।

वेद एवं वैदिक वाड्.मय से इस बिषय में तोन मान्यतायें बताई हैं—

१— आत्मा न केवल अनन्त बल्कि अनादि है।

२— वह कर्मफलों का संचय करता है और उन्ही के अनुसार जाति (योनि) आयु और भोग पाता है।

३— कर्मफलानुसार लोकालोक में जन्म स्वर्ग-नरक और मोक्ष प्राप्त करना है। अच्छे और बुरे फलों का भुगतकर फिर संसार में आता

इस शोध में इन्हीं बिन्दुओं पर विवेचना की गई है। और पश्चिम के विज्ञान द्वारा इन पर की गई खोजों को उद्धृत किया गया है । क्योंकि वे शनै-शनैः वैदिक मान्यता के निकट आ रही हैं । यदि दार्शनिक और वैज्ञानिकों ने वैदिक मान्यतायें स्वीकार कर ली तो यह निष्कर्ष विश्व में शान्ति और न्यायपूर्ण व्यवस्था लाने में सफल होंगे। संसार के विद्वजन अब बुद्धिवादी (Rationalist) होते जा रहे हैं। और इस शोध के बौद्धिक निष्कर्षों से इंकार न कर पावेंगे। और तब एक नये प्रकार का विश्व समाज बनेगा। क्योंकि तब :—

१– मृत्यु के भय से मानव-जाति को मुक्ति मिलेगी. क्योंकि उसे आगामी जीवन का प्रवेश द्वार समझा जावेगा।

२– मृत्यु उपरान्त भी बनी रहने वाली सत्ता आत्मा का रोग-कष्ट से रहित सिद्ध होने पर मानव भविष्य जीवन के स्वस्थ्य बने रहने से वह आशावान होगा।

२– निकटतम सम्बन्धी के दिवंगत होने पर दुख व क्लेश का अपहरण होगा क्योंकि आत्मा तो पुनः कहीं प्रगट होकर बाल्यावस्था एवं यौवन पुनः प्राप्त करेगा।

४– मृत्यु को अपवित्र मानने के भाव का समाज से मिटना और सूतकादि तज्जन्य क्लेश का अन्त हो जायेगा।

५– कतिपय असत्य साम्प्रदायिक मान्यताओं के निर्मूल होने से हिन्दुओं में शुद्धि, तेरहवीं, तर्पण, वर्षी आदि के अपव्यय से समाज बच जावेगा।

६– मनुष्यों में यह भाव जागृत होगा कि उसकी अपनी भावनायें और उद्वेग ही इस जीवन में उसकी प्रसन्नता और परिपक्वता के कारण हैं।

७– सम्भवतः कभी दिवंगत पर पुनः न उत्पन्न आत्माओं से सम्पर्क का कोई यांत्रिक मार्ग निकल आवे और युग-युग का संचित पिछला ज्ञान उपलब्ध हो सके।

१– हर व्यक्ति समझेगा कि वह इस विशाल सृष्टि का नागरिक है और तब अर्न्तजातीय एव अन्तर्राष्ट्रीय भ्रातृभाव पनपेगा।

९– कर्मफल के सिद्धान्त के कारण मनुष्य पापरत न होगा और चरित्रमय तथा न्यायानुकूल स्थिर समाज का निर्माण होगा।

१०– मनुष्य क्रूर न रहेगा और पशु-पक्षियों कों हिंसा नहीं करेगा। उन्हें अपना अनुज समझेगा।

अपनी शोध से यह महान आशायें लेकर यह विवेचन अपनी प्रिय (Alma Metre) के माध्यम से विश्व की आत्माओं को अर्पित है।

आर्यनगर हरिद्वार रोड़ ज्वालापुर
कृष्ण जन्माष्टमी
दि० २७ अगस्त १९८६

रामेश्वर दयाल गुप्त
एम० ए० वैदिक साहित्य काँगड़ी
एम० ए० पी०एच०डी० राजनीति दर्शन
भोपाल विश्व विद्यालय

॥ ओउम् ॥

गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार के
डाक्टर आफ फिलासफी (पी.एच.डी.) हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध का विषय

जीवात्मा के वेद प्रतिपादित स्वरूप की विवेचना

प्रस्तुतकर्त्ता :—डा० रामेश्वर दयाल गुप्त, बी.एस.सी. (इन्जी०)
एम० ए०, पी.एच० डी०, भोपाल वि० वि०राज०. विज्ञान

निदेशक :– (डा० प्रो०डा० भारत भूषण, एम०ए०, पी०एच० डी०)
वैदिक साहित्य विभाग, गुरूकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय

विभागाध्यक्ष :—श्री राम प्रसाद वेदालँकार

रजिस्ट्रेशन :– ८२००२७१ दिनाँक २०-१२-८४

कार्य प्रारम्भ :—२१-१-८५

कार्य समाप्त :— ११-१०-८६

अब ग्रन्थ समर्पण : आदि प्रेरणा स्रोत पूज्य स्व० श्री बाबूराम पिता श्री बाबूरामगुप्तआजन्म मन्त्री आर्य समाज अलीगंज, (जनपद एटा) उ० प्र०,

धन्यवाद ज्ञापन

इस शोध पर कार्य १९८४ में प्रारम्भ किया था। दो वर्ष में कार्य सम्पन्न हुआ। और १० वर्ष का अन्तराल प्रकाशन हेतु बीता। कई अन्य ग्रन्थों के लेखन-प्रकाशन में लगा रहा। कुछ आर्थिक व्यवधान भी थे, क्योंकि प्रकाशक जन कहते थे कि दस हजार रुपया दे जाओ। मुद्रणोपरान्त कुछ पुस्तकें भेंट का देंगे। पर अचानक डाक से श्री रतनलाल राय जी पूर्व प्रधान आर्य समाज गाजियाबाद (नई बस्ती निवासी) का एक ड्राफ्ट २५००/- रुपये का प्राप्त हुआ। पत्र में लिखा था कि आप आर्ष ग्रन्थों के लेखन में लगे हैं। पिछली शोध वैदिक राजदर्शन मैंने पढ़ी। मैं २५००/- रु० का पुरस्कार भेज रहा हूँ। उस शोध पर मुझे १९७९ में भोपाल विश्व विद्यालय से भी डाक्टरेट मिली थी। तो सोचा अपने इस दूसरे शोध ग्रन्थ का भी स्वयं मुद्रण करा डालूँ। कमर तोड़ कागज की मँहगाई तथा मुद्रण रेट के वावजूद यह कार्य हो गया। सो सबसे पहिले आस्तिक होने के नाते ईश्वर का धन्यवाद देता हूँ।

तदन्तर गुरुकुल काँगड़ी विश्व विद्यालय का धन्यवाद इसलिए देता हूँ कि १९८२ में ६२ वर्ष की आयु में उन्होंने वेद निकाय में एम० ए० में प्रवेश दिया और पढ़ाया। जीवन भर के निजी स्वाध्याय को दिशा मिली। और फिर डा० भारत भूषण जी ने निर्देशन दिया और शोध प्रबन्ध तैयार हो गया। और शोध का मौखिक परीक्षण डा० भवानी लाल भारतीय ने लिया। और तत्कालीन कुलपति ने १९८७ में डिग्री अर्पित कर दी। और अपनी दृष्टि कमजोर थी, सो भी डा. मनुदेव बन्धु ने कृपा करके पुस्तक का प्रूफ देख दिया। और मेरे निर्बल कन्धों पर प्रचुर व्यय आया देख एक अन्य आर्य मनीषी व सेठ जी आदित्य प्रकाश आर्य बी०ए० (पानीपत) ने आधा मुद्रण व्यय वहन करना स्वीकार किया। जब ईश्वर ने कोई कार्य कराना होता है, तो उसकी सहायता अनेक मार्गों से आती हैं।

इस प्रकार यद्यपि देश में कोई शोध ग्रन्थ १०० रुपये से कम का नहीं है, वहीं पर यह शोध निजी शेप लागत मात्र अर्थात् ५० रुपये में दी उपलब्ध है ताकि जीव की अमरता सम्बन्धी इस खोज पूर्ण ग्रन्थ को पढ़कर लोगों की पुनर्जन्म के सिद्धान्त में आस्था दृढ़ हो और वे अपना उन्नततर आगामी जन्म सुनिश्चित करने हेतु आदर्श चरित्र अपना कर पुण्य ही अर्जित करते रहेंगे।

भवदीय —राजेश्वर दयाल गुप्त, लेखक व प्रकाशक

दि०१ जनवरी १९९६

आर्य नगर, ज्वालापुर, हरिद्वार

शोध का भाग 'अ'–साधारण प्रतिज्ञा

१०० वैदिक वाङ्मय की जीव सम्बन्धी मान्यताएँ

१. जीव की अमरता का सिद्धान्त भारतवर्ष के दर्शन का प्रारम्भ बिन्दु है। यहां की सारी सामाजिक राजनैतिक तथा धार्मिक कर्मकाण्डीय व्यवस्था इसी दर्शन पर आधारित है। इस दर्शन को आत्मविद्या कहा गया है। इसी आत्मविद्या के आधार पर कर्माकर्म और तदनुसार फलाफल की व्यवस्था व्यक्ति के हेतु निर्धारित की गई है। दर्शन को दैनिक व्यवहार से जोड़ने का यह स्तुत्य प्रयास हैं। इस लिए यहां परिवार में, समाज में, और पेशो में स्थायित्व और सामंजस्य है जिससे पश्चिम के देश वंचित से है, और एक स्वयं जात अनुशासन मानव के जोवन को अनुबन्धित करता रहा है। उसमें राज्य के हस्तक्षेप की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती है। मनुष्य के भौतिक जीवन में वर्ताव पर यह सिद्धान्त नियन्त्रण रखता है। उसे ज्ञात है कि शुभकर्मो से भविष्य सुधरता है। अतः वह उनमें प्रयत्नवान बना रहा करता है, ताकि अगला जीवन सुखकर मिले। ऐहिक जोवन में वह उसी डर वा आशा से अन्य मनुष्यों तथा पशु पक्षियों से करुणा और न्याय का व्यवहार करता है। इस भावना के न होने पर येन केन प्रकारेण धन व भोग के संबन्ध में लगा रहता हैं, और समाज क्रूरता एवं अन्याय से प्रभावित हो जाता है। शासन के कानून अप्रभावी हो जाते हैं। परन्तु जीव की अमरता का सिद्धान्त वेदादि शास्त्रों एवं कतिपय दार्शनिकों द्वारा ही स्थापित है। वैज्ञानिकों ने प्रत्यक्षानुभव के आधार पर अभी तक सिद्ध नहीं किया कि आत्मा शरीर छोड़कर कहीं जातो है, कब लौटती है तथा इस बीच कहां क्या करती है तथा कौन से कर्म क्या फल दिलाते हैं–कैसा जन्म प्राप्त कराते हैं। विभिन्न धर्माचार्यों ने इन प्रश्नो पर परस्पर विरोधी समाधान प्रस्तुत करके मनुष्य को और भी चक्कर में डाल दिया है। आज का मानव इन प्रश्नों का ठीक उत्तर चाहता है, जो प्रत्यक्ष हो, जिसे इन्द्रियों के ज्ञान से समझा जा सके। यह कि एकाएक जीवन का अन्त हो जाये और हमारे सारे प्रयत्न और उपलब्धियां नष्ट हो जाये, भयानक सा विचार है। अतः मनुष्य सदा ही मृत्यु से डरता हैं और यदि जीवात्मा की निरन्तरता सिद्ध हो जाये तो मानव जाति का महान उपकार हो। इस विश्व की प्रथम पुस्तक वेद में यत्र तत्र बिखरे

भावों को संगठित करना आवश्यक है। और फिर देखना है कि विश्व की अद्यतन वैज्ञानिक उपलब्धियां उनसे मेल खाती हैं या नहीं।

वेदों में आर्यो के दार्शनिक चिन्तन की अपेक्षा उनके धर्म और कर्मकाण्ड का ही विशद वर्णन है। अतः वेदों में जीव की अमरता और मृत्यु के उपरान्त की स्थिति के विषय पर दार्शनिक चिन्तन अत्यल्प है।

डा० राधाकृष्णन ने अपनी पुस्तक 'उपनिषदों का तत्वज्ञान' में पृष्ठ १४ पर यह मत निम्न शब्दों में प्रगट किया है :–

The hymns and litergical books of the Veda are concerned more with the Religeon and Practice than with the Thought of the Aryans.

दयानन्द सरस्वती का भी लगभग ऐसा ही मत था। जैसा कि उन्होंने ऋगवेदादि भाष्य भूमिका में विभिन्न ज्ञान विज्ञानों का प्रतिपादन वेद में किया है, यद्यपि जनसाधरण का प्रायः यह विश्वास है कि वेद अध्यात्म के हो ग्रन्थ है, वास्तविकता यह है कि उनमें वैदिक जोवन बिताने के आदर्शो और मूल्यों का कथनोपकथन अधिक औरअध्यातम तत्व का चिन्तन अपेक्षाकृत कम है। जीवनयापन हेतु दोनों ज्ञानों का यही अनुपात आवश्यक भी है। अतः वेदों को २५००० ऋचाओं में जीव षिषयक निम्न स्थल इस शोध में उदघृत है :–
१०२ ऋग्वेद १ ११३-१६ में उसे असु १-१४०-८ में जीव, सूक्त १-५८ में मन तथा ऋचा १०-१६-३ में उसे आत्मा की संज्ञा दी गई है। अतः यह समानार्थक से शब्द हैं।

मान्यता –।

ऋग्वेद को निम्न ऋचा मानव के फिर जन्मने को उत्कट इच्छा प्रगट करती है। मरणासन्न व्यक्ति प्रार्थना करता है।

"असुनीते पुनर स्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरतमनमते मुड् त्या नः स्वरित ॥
पुनर्सो असु पृथ्वी ददासु पुनर्धो दबीं पुवरन्तरिक्षम् ।
पुनर्नः सोमस्तन्तं ददातु पुनः पूपा पथ्यां वा स्वस्ति ॥ (१०/५६/६.७)

हे असुनोते। हममें पुनः वसु प्राण स्थापित हों, इस संसार में उत्तम

भोग प्रपत हों । उच्चर त सूर्य को निरन्तर देखूं । हे अनुमते । हमें कल्याणकारी हो। हमें वस्तु पृथ्वी, सूर्य की ज्योति, अन्तरिक्ष और औषधियाँ और पुष्ट स्वस्ति फिर दो ।

चूंकि पुनः प्राणः मांगे है अतः यह मरते समय की हुई ईश्वर से प्रार्थना है कि हमें पुनः जन्म दो । नेरन्तर्य की इस उत्कट अभिलाषा से जीवन की अमरता भी सिद्ध होती है ।

ऋचाद्वय १-२४, १-२५में कहा गया है: अग्नि मनुष्य को अदिति के पास वापस ले जाती है, जहां कि पुत्र अपने माता पिता को पुनः देखता है । यह अदिति शायद यमलोक है, जहां कि ऋचा १०-१४-१२ के अनुसार यम नामक प्रथम मानव पहुंचा था।

मान्यता-।।

वैदिक मान्यतानुसार मृत आत्मा तुरन्त पुनर्जन्म नहीं भी ले सकती है और इस बीच लोक विशेषों में आती है, जिन्हें पोराणिक गाथाओं में स्वर्ग या नरक कहा गया हैं । इन मान्यताओं का स्रोत भी वेद मंत्रों में मिलता है । ऋग्वेद के निम्न स्थल दृष्टव्य हैं :—

१—ऋचा १-१०९-७ यहां सूर्य से पितरों का सम्पर्क वर्णित है ।

२. ऋचा १-११५-२ तथा १-१५४-५ में विष्णु के उपासकों को परमपद में आनन्द उठाते हुए बताया गया है ।

३-ऋचा ९-११३-७ से ११ तक में सोम से प्रार्थना की गई है कि मुझे उस अमर लोक में ले चलो जहां सदैव बने रहने वाला प्रकाश [अजस्त्रम ज्योतिः] है । जहां वैवस्त सूर्य [यम] विराजमान हैं, जहां स्थान धिरा हुआ [अवरोधनम्] है, जहां यहच्छा तीनों लोकों में घूमना उपलब्ध है । (तृगके तृदिवे दिनः) और जो लोक प्रकाश—वन्त (ज्योतिषन्ताः) है । जहां इच्छाये [निकामाः] हैं । जहां प्रकाश स्वरुप के बैठने का स्थान [विष्तपम्] है जहां स्वधा [भोजन] भरपूर है, तथा प्रसन्नता [मुदः [तथा परम प्रसन्नमा [प्रमुद] का परिवार है और सभी इच्छायें पूरी होती हैं ।

४—ऋ० १०-१४-८ जो अथर्व १८-३-५८ में भी आई हैं, कहती हैं कि परम व्योम [उच्चतम आकाश] में एक स्थान है जहां मृतात्माये जाकर पितरो और यम से मिलती हैं ।

५–ऋ० १०-१३५-१ के अनुसार यम अमृत पेय देता है तथा अन्य देवों के साथ एक हरे भरे वृक्ष पर बैठा है। यह अथर्व ५-४-३ में वर्णित अश्वत्य का वृक्ष लगता है। सूक्त १०-१५४ के अनुसार यह पेय घृत, मधु या सोम का हो सकता है। जिससे वीर पुरुष दयालु सत्यनिष्ठ तथा आस्तिक हो जाता है।

६–स्वर्ग शब्द का प्रयोग इसी वेद की ऋचा ६-१२०-३ तथा १८-४-२ तथा १२-३-१७ में हुआ है। ऋग्वेद के १० वे मंडल में ५ सूक्त ऐसे हैं, जो अन्तयेष्टि संस्कार में विनियोजित हैं। इन पर विचार करके भी यम लोक की बात स्पष्ट हो जाती हैं।

ऋग्वेद १०/१४ अन्त्येष्टि सूक्त। यम ऋषि। लिङ्गोक्ता देवता।
प्रेहि इत्याद्यास्तिस्रो लिङ्क्तोदेवताकाः। पितृदेवताकाः
अतिद्रवसारमेयौ इत्यादि स्कतृवः सूरमापुत्रौ यौ
श्वानो परलोकमार्गमभितः स्थितौ तद्दैवताकः ॥१॥
परेभिवांसे प्रवतो महींरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्।
वैवस्वत संमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥२॥

To him that passed along the great height and sought out a path for many vaivastwas son, the gatharer of men, yama, the king to him bring worship and offering [GRIFFITH]

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरभयर्तवा उ।
यत्रा नः पूर्बे पितरः परेयुरैनां जज्ञानाः पथ्याइअनुस्वाः ॥

यम ने हमारे लिए सर्वप्रथम वहां का रास्ता खोजा था। यह उपजाऊ क्षेत्र है जिसमें हमें कोई लूट नहीं सकता हैं। वहां मानव जाते हैं। विविध मार्गो से जाते हैं। हमारे पितर भी इसी मार्ग से गये थे।

मातली काव्यैर्यमो भङ्गिरोभिर्वृहस्पति ऋक्वभिर्वावृधानः।
यांश्चदेवा वावृधुर्यें देवान्तस्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥३॥

मातली काव्यो के साथ, अग्निरसों के साथ वृहस्पति ऋक्वनो[गायको] के साथ थे। इनमें से एक तो स्वाहा से और दूसरे स्वधा से संतुष्ट थे तथा एक दूसरे का स्वागत करते थे। यह सब स्वर्ग में प्रभु की सेवा करते हैं, प्रभुदेव तो यज्ञाहुति से तथा पितर स्वधा [Obeations] से तृप्त होते रहते हैं।

इमं यम प्रस्तरमा हि सोदाङ्गिरोभिः पितृभि. संविदानः।
आ त्वा मंत्रा कविशस्ता वहन्त्वेना सजन्हविषा मादयस्व ॥४॥

ऐ यम ! यहां तुम्हारे लिए स्थान हैं। हमारे पूर्वज अंगिरस का सानिध्य प्राप्त करो और बैठ जाओ। हमारे बुद्धिमानों की स्तुतियां तुम्हें सुख लाभ प्राप्त करवायें और यहां बुला लावे ताकि तुम हमारीं छवि प्राप्त कर सको।

विवस्वन्तं हुवे यः पिता वेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषधं ॥५॥

ऐ यम, मैं तुम्हारे पिता वेवस्वत को बुलाता हूँ। इस यज्ञ स्थल की कुशा भूमि पर तुम दोनों आकर बैठो।

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्वोभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यामि वरुणं च देवम् ॥७॥

उन्हीं पुराने पथों पर चढ़ो जिन पर हमारे प्रथम पूर्व पुरुष गये हैं। दोनों देव यम और वरुण अन्त्येष्टि समय प्रसन्न होते हैं। ऐ मृत पुरुष तुझे वे दोनों अब दिखाई देंगे।

संगच्छस्व पितृभिः यं यमेनेष्टापूर्तेन परमें व्योमन्।
हित्वायावधं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चा ॥८॥

ऐ मृत जा और परम व्योम में पितरों से मिल, यम से मिल और अपने किये शुभ कर्मों से मिल। सब बुरा यहीं छोड़ दे और अपने घर को पुनः प्राप्त कर और सुन्दर शरीर प्राप्त कर।

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एवं पितरो लोकमक्रन्।
अतोभिरद्‌भिरक्तभिर्व्यक्त यमो ददात्यवसानमस्मै ॥९॥

ऐ चिता के पास खड़े व्यक्तियो ! एक ओर खड़े हो जाओ चले जाओ चले जाओ। इधर-उधर निज निज गृह जाओ। पितरो ने यह स्थान इस मृत के लिए बनाया है। तथा इसे दिन रात्रि और जल से संजोया है। यम इसे अब शान्ति देंगे।

अतिद्रव सारमैयो श्वानो चतुरक्षौ शबलौ साधुना तथा।
अथापितृन् संविदयां उपेहि यमेन ये सदमाध मदन्ति ॥१०॥

शव को सम्बोधन करते हुए भागो और सरमा के दो कुत्तों से आगे निकल जाओ। यह कुत्तें [spekled]हैं। इनको चार आंखे है। सीधे मार्ग से जाओ। पितरों के पास पहुंचो। यह पितर यम के साथ खाते पीते और मौज उड़ाते मिलेंगे।

यौ ते श्वानो यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षो ।
ताभ्यामेनं परिदेहि राजन्त्स्वस्ति चास्या अनभविं च धेहि ।।

ऐ यम, ! तेरे वे दोनों पहरेदार कुत्ते जो मार्ग के रक्षक भी हैं, चार आंखों से जाने वाले मनुष्यों को देखते रहते हैं। उन कुत्तों को यह मृत मनुष्य सौप दे तथा इसके लिये स्वस्ति और धन सुनिश्चित कर दे।

उरूणासावसुतृपा उदम्बला यमस्य दूतो चरतो जना अनु ।
तावस्पभ्यं दृश्ये सूर्याय पुनर्दातामसुमधेह भद्रम ।।१२।।

दो बड़े नथूनों वाले यम के यह दो दूत (कुत्ते) मानवों में घूमते रहते है (उन्हें सूंघते हुए) ये दूत मुझे (मृत को) फिर प्राण दें ताकि हम सूर्य को पुनः देख सके (अर्थात फिर जन्म पा सकें)

यमाम समं सुनतु यमाय जुहुता ह वः ।
यमं हि यज्ञो गच्छत्याग्नि दूतो अरंकृतः ।।१३।।

ऐसे यम हेतु सोभ उड़ेलो । यज्ञ की अग्नि के साथ यह हवि यम को जाती है। अन्त्येष्ठि यज्ञ को हवि से आशय है।

यमाय घृतवद्धविर्जुहोत पृच तिष्ठतृ ।
स नौ देवेकवा यमद्दीर्घमायुः प्रजीवसे ।।

यम को ही घृत जाता हैं। उसके पास जा स्थित हो, तथा वहां देवों में दीर्घायु पावे। वहां मनुष्य को बलिष्ठ सुन्दर शरीर प्राप्त हो जाता है। तथा इस शरीर की रोग व्याधि दुर्बलता तथा त्रूटियां सभी दूर हो जाती है। पुण्य कार्य करने वाला प्राणी अपने सम्पादित इष्ट (यज्ञ तथा कुआ खोदना आदि स्मृति निर्दिष्ट कार्य)के फल को प्राप्त करता है तथा पितरों और यम से मिलकर आनन्द भोग करता है।

यमाय मधुमस्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन ।
हदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृदभ्यः ।। १५ ।।

यम राज को मधुयुक्त हवि उड़ेल दो। फिर पूर्व के ऋषियों, पितरों को नमन करो जिन्होंने कि हम सभी के लिए यह पितृ यान खोजा था।

ज्योति मौ आयु तीन विशेष भाग को विकदुक कहते है। इनमें आहुति से यम को प्राप्त हो जाता है। फिर ६ संख्यक उर्वी (Space) को प्राप्त होता है। इनमें ऐ सक वृहत् (विशाल) है (६:- द्यो पृथ्वी, अपः औषधिः

उर्व एवं सूनृता) फिर सारे विष्टुप और गायत्री छन्द यम हेतु ही है।
मान्यता-३ :

जो न तो द्युलोक जाते हैं, न पृथ्वी पर जन्मते है, वे पितर कहलाते है और ऋग्बेद ने उसका अलग ही अस्तित्व माना है। हर व्यक्ति मरणोंपरान्त पितर हो जाता है। अतः उसका कर्म वैशिष्ट्र्य से कोई सम्बन्ध नहीं है।

ऋग्वेद ६/५७/४ में "अवन्तु मा पितरो देवहूता"—कहकर देवताओं के अतिरिक्त पितरों को भी आहूत किया गया है। अतः वे देवत्वगुण वाली आत्माओं से भिन्न है।

पितरों की स्थिति को समझने के लिए ऋग्वेद के १० वे मण्डल का १५वां सूक्त विनियोजित है। इसका यमपुत्र शंखाख्य ऋषिः है तथा देवता पितरः है। हम कुछ ऋचाये सार्थ उदघृत करते है।

उदरि तामवर उत्परास उन्मध्यमा पितरः सोम्यासः।
असुं व ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरोहवेषु ॥ । ॥

पितर ३ प्रकार के है—उत्तम, मध्यम तथा अधम।

सो प्रिय तथा तीनों प्रकार के पितर पुनः उठें। इनमें जो उत्तम हैं, वे यज्ञादि कर्म में हमारी आकर रक्षा करे।

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वय ये पूर्वासो य उपरास ईयुः।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता यो वा नूनं सुवृजनसु विक्षु ॥ २ ॥

यजामन से ज्येष्ठ व कनिष्ठ दोनों पितरों हेतु नमन है।, यदि वे पृथिवी पर अब रह रहे हो चाहे आकाश में या (Blessed) देवों के साथ रह रहे हो।

आहं पितृमृविदवां अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः।
वर्हिषदों य स्वधया सुतस्य जन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥३॥

मैं यजमान, अपनी इस भक्ति को जानने वाले पितरों को निमंत्रित करता हूं। वे अतिशीघ्र आवें और सुत (घास) पर बैठकर अपने अन्न भाग को प्राप्त करे।

वर्हिषदः पितरः उत्यवांग इमा वो हव्या चक्रमा जुष्ध्वम् ।
त आ गतावसा शतमेनाथो नः शयारपि दधात् ।। ४ :।

पितलोक को प्राप्त पितरौ ! यहां आकर हमारी सहायता तथा रक्षा करो । घास पर जा बैठो। जो हव्य हमने तैयार की है, उसे प्राप्त करो तथा हमें स्वास्थ्य एवं धनादि राशि दो ।

उपहूता यितरः सोभ्यासोर्वहिश्त्रेषु निधिप्रु प्रियेषु
स आ यमन्तु स इह भूवन्त्वाधि बुवन्तु तेऽवन्त्स्मान् ।।५।।

(सोभ्यासः) सोम प्रिय पितर बुलाये गये हैं । उनकी प्रिय हवि उपस्थिति है और घास पर रखो है । वे आवें । वे हमारी सुनें और बौल कर आर्शीवाद दे और हमारी रक्षा करे ।

आगे छठी ऋचा में कहा गया है कि पितरों अपनो परिया Knees को लचाते हुए आक्वा कर्ता के दक्षिण हस्त को ओर बैठो तथा यज्ञ को ग्रहण करो तया हमारे द्वारा किये गये किसी त्रुटिपूर्ण कार्य के कारण हमें कष्ट न दो। क्योंकि आखिर हम मनुष्य हैं ।
(To err is human : पुरुषता कराम)

सातवी ऋचा में पितरों से प्रार्थना की है कि मृत पुरुष के पुत्रों को धन-धान्य दो। ६वीं और दसवीं में पितरों से प्रार्थना की है कि अग्नि के साथ आओ । पितरों के इन के साथ रहने का भी संकेत है ।

ग्याहरवीं ऋचा में पितरों को अग्निष्वाताः (अर्थात जिन्हें अग्नि ने भस्म करके अपने में मिला लिया था) से कहा है कि आकर हवि ग्रहण करें ।

बारहवीं ऋचा में अग्नि को कहा है कि हमारी हवि को तुम पितरो तक ले जाती हो ।

ये चहे पितरी ये चनेह चांश्च विद्म यां उ न्च न प्रविघ्न ।
त्वं वेत्थ यति ते जातभेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ।।१३।।

वे सब पितर जो हमारे समीप हैं, या दूर हैं, तथा जिन्हें हम जानते हैं, या नहीं जानते हैं । परन्तु उन्हें हे जातवेद तू जानता है । सो तू हमारी हवि उन सबके लिए ग्रहण कर ।

ये अग्निदग्धा ये अनस्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभिः स्वरावनतुनीतिमेता यथावशं तन्वं कल्पस्व ।।१४।।

जो पितर अग्निदग्धा थे अथवा अनग्निदग्धा थे वे सब द्युलोक के मध्य में हवि प्राप्त करते हैं और प्रसन्न होते हैं।, हे यमराज! उन पितरों को यथा वश (यथाकाम) योनि व गृह में जन्मने का अधिकार दे।

इसमें यज्ञ के समय उनके आकार के पृथक् पृथक् आसनों पर बैठनें और यजमान को पुत्र पौत्र एवं ऐश्वर्य देने की प्रार्थना की गई है। स्पष्ट है एक ऐसा लोक है, जहाँ, पितर निवास करते हैं।

तदन्तर ऋचा १०-१६-१ के अनुसार मृत्यु पर पार्थीव जीव का तो अन्त हो जाता है। परन्तु उसके व्यक्तित्व के कुछ अंश अन्त्येष्टि संस्कार के बाद भी अवशिष्ट रहते हैं।

पितृयान :—

पितरों के आने के मार्ग को पितृयान कहते हैं।

के स्रुतो अश्रणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् (ऋ० १०-८८-१५)

यहां से देवयान व पितृयान की कल्पना ली गई है। इन्हीं को कठोपनिषद्कार श्रेय व प्रेय मार्ग कहते हैं। पितृयान ने जाने वाले राजा यम के लोक जाते हैं। ऋ० १०-१४-१ के अनुसार यम ने ही उस लोक को सर्वप्रथम ढूंढ़ा था। पितरों के जाने के योग्य इस मार्ग को भी १४-१४-२ के अनुमार यम ने ही तलाश किया था। पहले ८-११-३०८ का उद्धरण दे आये हैं।, जहाँ कहा है कि यम का निवास अमृत लोक में छिपे स्थान पर है।, जहाँ हर समय नया नीर बहता रहता है। तथा (इदं यमस्य सादनं देवयान उच्यते। इदमस्य धम्यते रयं गीभिः परिकृतः ॥

(ऋ० १०-१३५-७)

(यम के सदन को देवताओं ने बनाया है और इसमें गाने की तान छिड़ी रहती है।)

यम मृतकों को आश्रय व निवास प्रदान करते हैं) यमो ददात्यव मानमस्मै (ऋ० १४-१४६)

म. १०-१७-३ में प्रार्थना की गई है कि पूजन मृतक को अपने पितरों के पास पहुंचायें जो इस लोक से अच्छे लोक में रहते हैं। और वहां

पर जाने से पहले वह एक दीप्ति युक्त शरीर प्राप्त करले-ऐसी प्रार्थना १०-१७-४ में है। जो इस प्रकार है हित्वायावधे परमस्तमेहि सँगच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ।

यह स्पष्ट नहीं है कि यह शरीर यहीं जैसा पार्थिव शरीर है या कोई अभौतिक आवरण जैसा कि सूक्ष्म या कारण शरीर होता है।

मान्यता V-देवयान :-

बहुचर्चित देवयान शब्द ऋग्वेद में १४ बार आया है। वह देवताओं को अमृत की ओर ले जाने का मार्ग है। छान्दोग्य (५-१०-१-२) में [सएनम् ब्रह्म लोकं गमयति एष देवयानः पन्था इति] कहकर देवयान का वर्णन किया है। कठो० २-२ का श्रेय मार्ग भी यही ले जाता है। ऋग्वेद ६-६-४ ने उसे अमर ज्योति तथा ६-६-५ में ध्रुव ज्योति कह कर छोड़ दिया है।

ऋचा १०-१६-६ के अनुसार मनुष्य को स्वर्ग में पार्थिव शरीर पुनः प्राप्त होता है। वहां तब सदा के लिए बुढापे से छूट जाता है । ऋचा १०-२१-२७] उसे अपने पूर्व मृत पूर्वज, पुत्रादि व पत्नी की आत्मा से पुनः साक्षात्कार होता है [ऋचा १-२४-२] वह यहां पर अमृत पान करता हैं। (१०-१५४.१) तथा स्वर्गीय संगीत और वंशा की ध्वनि सुनता है । (१०-१३५-७) तथा आस्वाद व्यंञ्जनादि प्राप्त करता है और (६-११३-७) के अनुसार यह जीव ऋतानुगामी, यज्ञकर्ता और आस्तिक्य को प्राप्त होता हैं।

मान्यता-VI-तीन स्वर्ग लोक

ऋग्वेद में तीन स्वर्ग लोक बताये हैः-(।) और (२) तो सविता के पास है तथा एक यम के लोक में है। यहीं बात १-३५-३६ में दुहराई हैं। जो इस प्रकार है ।

"तिस्रो देवप्रसवितुरा" उपस्थ्यां एका यमस्य भुवने तुराषाट् आरिंम् न रथ्याममृताधितस्थुरिह ब्रवीतु ।। मतच्चिकेतत् ।।

(दो लोक तो सविता सूर्य के पास हैं और एक यमलोक में है। दो तो द्युलोक हैं, क्योंकि इनका सूर्य के साथ सीधा सम्बन्ध है। मध्य क्षेत्र अर्थात् अन्तरिक्ष यम से सम्बन्धित है क्योंकि इसी रास्ते से मरे हुए लोगों की आत्मा यमलोक को जाती है। द्युलोक सर्वोच्च स्वर्ग है। निम्नतर यम का स्वर्ग है, जोंकि चन्द्रमा से सम्वन्धित है। वहां दानी तथा अन्य साधार आत्माएं रहती हैं। पर द्युलोक और पृथ्वी पर देवत्व प्राप्त आत्मोएं रहती हैं। विष्णु के तीन पद जो कहे हैं, वे शायद यही तींन स्वर्ग हैं। १०-५४-१ में कहा है कि वहां सोम घृत व मधु का प्रवाह होता रहता है।

अथर्व वेद में तो वहिस्त शब्द तक आया है।

ऋग्वेद १०-१५४-२ व ३ में कहा गया है कि यह स्वर्ग उन्हें मिलता है, जो या तो युद्ध में लड़ते हुए मारे जाते हैं, या प्रचुर दक्षिणा देते हैं और तप करते है।

(विष्णु पदे परमे मध्वउत्सः—ऋग्वेद १-१५४-५) सो अमृतत्व प्राप्त आत्माये द्युलोक वाले स्वर्ग में जाती है और उससे कुछ नीचे की पर देवत्व प्राप्त पृथ्वी पर अच्छे जाति, आयु व भोग को प्राप्त करती हैं जैसा कि स्वर्ग की परिभाषा देते हुए दयानन्द सरस्वती ने लिखा है।

मोक्ष अर्थात् प्रथम स्थानीय

पीछे देवयान की चर्चा हमने की है, जहां होकर ब्रह्मलोक को जाते हैं। यों तो वेदों को आध्यात्म विद्या का ग्रन्थ कहते हैं और अध्यात्म का अंतिम पाथेय मुक्ति या मोक्ष है। पर चारों वेदों में मोक्ष का शब्द संज्ञा रूप में नहीं आया है। केवल ७-६६-१२ ऋचा में यह क्रिया रूप में आया है। :-

त्रयम्बकम् यजामहे सुगन्धिम् पुष्टि वर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बनधनात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

अर्थः—

त्रयम्बक प्रभु की हम स्तुति करते है जो कि सृष्टि के पदार्थों में सुगन्धि और पुष्टि भरता है। वह प्रभु हमें बन्धन मुक्त करे ठीक वैसे जैसे पक जाने पर खरबूजा अपने बेल से टूट कर गिर पड़ता है।

यहां पर एक बात स्पष्ट होती है कि जोवन का उद्देश्य मनुष्य को दुख भुगताना मात्र नहीं है, वरन् उसे सुख और आनन्द के मार्ग से परिपक्व करना भी है। पक कर जब फल गिरता है तो उसे दुख नहीं होता क्योंकि वह अब डाल पर रह भी नहीं सकता है। ऋग्वेद में भी एक जगह और जीवन को बन्धन बत् बताया है।

अपध्वान्त मुर्णु हि पूर्धि चक्षुर्मुभागमुग्ध्यस्मान् निधयेव बद्धान् १०-७३-११

हे चन्द्र! अन्धकार को दूर करो। चक्षुओं को तेज से भरो और जाल से बन्धे के समान हमको मुक्त कर दो।

हम इस दार्शनिक उहापोह में नहीं पड़ना चाहते हैं कि जीव ब्रह्म में मिल जाता है या नहीं। क्योंकि अमर है अतः उनका व्यक्तित्व मुक्ति में भी नष्ट नहीं होना चाहिए। मुक्ति में वह ब्रह्मानन्द में मग्न रहता है, ईश्वर के सानिध्य में रहता है। जैसा कि कठोपनिषद में कहा है कि 'साम्यमुपैति' ईश्वर की समता प्राप्त करता है। ईश्वर रत् हो जाता है। सिवाय इसके कि सृष्टि निर्माण संचालन और विनश्वन से उसका कोई वास्ता नहीं होता। मुख्य बात है अपार्थिव शरीर का बना रहना। परान्त काल तक रह सकता है तो कम समय भी रह सकता होगा। उस रहने के स्थान के लोक होगे। और समय का भी कोई अनुबन्ध होता होगा।

मान्यता VII

नरक

स्वर्ग की ही भांति नरक की भी कलपना है। ऋग्वेद में नरक नहीं आया है, पर अधम तमस कृष्णतमस तथा अन्धतमस शब्द अवश्य आये हैं। यजुर्वेद में अन्धन्तमः शब्द आया है। अन्धन्तम प्रविशन्ति ये के चात्महनो जनाः। परन्तु अथर्ववेद १२/४/३६ में नरक शब्द का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद ७/१०/१२ में एक स्थल पर यों प्रार्थना की गई है। :-

इन्द्रसोमा दुष्कृतोवते अन्तरनारम्भये तमांसि प्रविध्यतम्
यथा नातः पुनरकस्यबोघयत् तद्वामस्तु सहोस प्रविध्यतम् मन्युमच्छवः

हे इन्द्र सोम। तुम दुष्कृतों को गर्त में बिना सहारे के अन्धकारों में ढ़केल दो ताकि उनमें से कोई बचने न पाये। ऋग्वेद ४/५/५ में भी कहा

है कि दुराचारियो व असत्यवादियों को गम्भीर (गहरे) स्थान में डाल दो । सेमेटिक धर्मो के जन्नत की कल्पना यहीं से ली गई दीखती है ।

(वह लोक सांप कीबांबी की तरह का गड्ढ़ा सा है,अन्धेरे से ढका है,ठंडा है। प्रार्थना की गई है कि इन्द्र सोम एवं अग्नि देव इनमें देवों के शत्रुओं को भेजे यह स्थान हमारी पृथ्वी पर स्थित नहीं कहे व माने जा सकते हैं। वे ही बाद में बांङमय में नरक कहे गये है । क्योंकि तैत्तिरीय संहिता २-६-१०-२ में कहा है कि पापी आत्माओं का प्रवेश पितृलोक (यमलोक) में निषिद्ध है । यही भाव ऋचा २-२६-६ तथा ६-७३-८ तथा १०-१५२-४ में है यजुर्वेद का दृष्टिकोण :-

यजुर्वेद (३-६-६) के अनुसार मृत्यु के बाद आत्मा प्रथम दिन सविता को, द्वितीय दिन अग्नि को, वायु तीसरे में, आदित्य चौथे में, चन्द्रमा पांचवें में, ऋत छठे में, मरुत सातवें में, बृहस्पति आठवें में, मित्र नवें में, वरुण दसवें में, इन्द्र ग्यारहवें में, तथा विष्णु को, बारहवें दिन जाता है। तदन्तर वे वापस आ जाते हैं ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस पर भाष्य करते हुए लिखा हैं कि कई आत्मा नक्षत्रारि में घूम कर वह तुरन्त दूसरा जन्म ले लेता है । पं० शिब शंकर शर्मा काव्यतीर्थइन्हें देश या काल के लोक में न मानकरमानसिक स्थिति मात्र मानते है । पौराणिक इन्हें वास्तविक लोक मानते हैं । जहां से लोट कर वे अपने परिवार में एक बार अलविदा कहने फिर आते है । तभी शायद १३वें दिन तेरहवीं मनाने की हिन्दुओं में व्यवस्था है ।

पुर्णजन्म होता है

(यजुर्वेद का दृष्टिकोण चौथे अध्याय तक यही रहता है । पुनर्मेमनः पुनरायुर्म आगन पुनः प्राण पुनरात्मा म आगन् पुनश्चक्षु । पुनः श्रोत्रं म आगन् । वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अग्नि नः पातु दुरितादवधात् "४/१५"

(हे अग्ने । मैं पुनः मन, आयु, प्राण व आत्मा प्राप्त करूं । वैश्वानरो ! हमारे शरीरों का पालन करो । हमें पातक और दुखों से दूर रखो ।

(पुनः आयु का अर्थ है दूसरा जीवन)

युजुर्वेद का ३५ वां अध्याय भी पितृ यज्ञ हेतु विनियोजित है। महीधर भाष्यानुसार पित्रादि के मरने के विषम वर्षो में चित्रा नक्षत्र या किसी मास में पितृ यज्ञ करे। जितने पुत्रादि हो उतने घड़े व छाते रखे। अस्थि (फूल) चारपाई पर रख कर ढोल बजावें। रात्रि में दान व नृत्यादि करे। प्रातः अस्थि कुण्ड लेकर दक्षिण दिशा में जावे तथा सायंकाल जहां हो, वहां भूमि यथा प्रमाण तैयार करे।

अब प्रथम मन्त्र कहता है कि यह आर्यपुरुष (सुतावत) तो यम के प्रशस्त्र अवसान में जावे परन्तु यह देव ईर्ष्यालु पणि वहां न जावे। दूसरी ऋचा कहती है–

सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्यां लोकमिच्छतु। तस्मै युज्यन्तामुस्रियाः।
सूर्य की किरणें तुझे पृथ्वी या अन्य लोक में शरीर प्राप्ति हेतु ले जावें।

अध्वर्यु उस भूमि पर झाड़ू देकर, झाड़ू दक्षिण दिशा में फेंककर ६ बैलों का हल जोतकर भूमि की मेंढ बनाता हैं। फिर बैलों को छोड़ देने का अभिनय हैं। फिर ३½ हाथ इस क्षेत्रफल में कल्पित शव पृथ्वी माता के अर्पण करने का अभिनय है। फिर ७वी ऋचा यों है।

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते अन्य इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते श्रृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजांरिरीषो मोत वीरान्॥

जो देवयान से भिन्न मार्ग है, मृत्युदेव उससे न ले जावे। इस वीर को मृत्यु नष्ट न करे। उसे लेजाये ऐसा देवता यम [मृत्यु]है। फिर उदक लोक पर पाप सुखाने की सम्भावना दर्शाई है। तदन्तर १० वीं ऋचा में वैतरणी पार करने की बात है। परन्तु ३९/३ में यम का उल्लेख अन्तक और मृत्यु के साथ हुआ है।

११– अथर्व वेद का मत—

अथर्व वेद के चौथे काण्ड के ३४ वे सूक्त में स्वर्ग का वर्णन बतलाया है। अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम्।

नेषा शिश्नं प्रदहति जातवेदाः स्वर्गा लोके बहू स्तौण मेषाम् ॥२॥
एष य।ज्ञानां विततो ब्रहिष्ठा विष्टारिण पकत्वा दिवमा विवेश आ
एडीकं कुमुद सन्तनोति विसं शालू कशपकोमुलालो एषात्वा धारा

उपयन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमतविन्च माना उपत्वा तिष्ठतुपुश्करिणी समन्तः ॥५॥

घृत ह्रदा मधु कलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्त्ता उदकेन दध्ना ।
एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत पिन्व माना उपत्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणः समन्ता ॥ ॥

पहले मंत्र का अर्थ महीधर द्वारा इस प्रकार से है कि [अनस्था] विकार रहित [पवनेन शुद्धा] शुचय [पवन से शुद्ध पवित्र[शुचम लोकम् अपियन्ति] निर्मल बने हुए शुद्ध लोक को प्राप्त होते हैं । [जात वेदाः] अग्नि [एषां शिश्नं म प्रदहति]इनके शिश्न को नष्ट नहीं करता । [स्वर्ग लोके एषां बहु स्त्रेणम्] स्वर्ग लोक में इनको बहुत स्त्रियां प्राप्त होती हैं ।

स्वर्ग में घृतसुरा, क्षीर दूध, जल और दही से पूर्ण धारायें बहती हैं और मनुष्य वहाँ जाकर अपनी इन्द्रियों से बहुत स्त्रियों का सुख भोगा करता है । यह भी कहा जाता है कि मुसलमानों और पुराणकारों ने इन्हीं मंत्रो के आधार पर अपने अपने बहिश्त और स्वर्ग की कल्पना की हैं । यह भी कि ५ वे मन्त्र में आये (बहिष्ठः) शब्द से ही फारसी भाष का बहिश्त शब्द बनाया गया है । वेदों में स्वर्ग, पितृ–लोक के लिए प्रयुक्त हुआ करता है । पितृ लोक या स्वर्ग में जाना मत्यु के बाद प्राणियों की दूसरी गति है । इस गति प्राप्त प्राणी आवागमन से बाहर नहीं होते है किन्तु उसी चक्र में ही रहते हैं । इस लिए मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर यदि कोई स्वर्गाधिकारी मधु, घृत व दूध आदि बहुतायत से इस्तेमाल करता है अथवा गृहस्थ के सुख का भी उपभोग करता है तो इसमें कोई हानि नहीं है ।

दूसरे मंत्र में आया "शिश्न" शब्द कर्मेन्द्रियों के लिए उपलक्षण के तौर पर आया है । अतः स्पष्ट है कि दूसरे (स्बर्ग) लोक में "सर्वतन देव" सम्पूर्ण शरीर के साथ यजमान उत्पन्न होता है । वेद में वह आगमन

के अन्तर्गत एक विशेष (मनुष्य) योनि में उत्पन्न होने की व्यवस्था है और उससे मोक्ष प्राप्ति का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। मुक्ति उससे सर्वथा भिन्न वस्तु है।

और आगे ऋचा ५-१६-३ में स्वर्ग से विपरीत नरक यम के क्षेत्र के रूप में बताया गया है। वहां राक्षसिणियों तथा अभिचारिणियों का निवास बताया गया है। इस युग्म मय स्वर्ग नरक की पुष्टि निम्न ऋचा से भी होती है।

पुनमेत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्रह्मणं च।
पुनरग्नयो धिष्ण्या यथा स्याम कल्पन्तामि ३ हव ॥ ७-६७-१ ॥

मुझे पुनः सारी इन्द्रियां प्राप्त हों। पुनः आत्मा, धन-धान्य, ब्रह्मज्ञान, अग्नि [यज्ञ सम्बन्धी सुबुद्धि] यथावत् इस संसार में मिले।

सारी इन्द्रियां तथा बुद्धि की प्रार्थना स्पष्टतः मनुष्य जीवन में ही सम्भव है। अन्य योनि में नहीं। सो यहां पुनः मनुष्य जन्म की प्रार्थना हैं कि स्वर्ग नरक से तात्पर्य यहां पुनः अच्छा या बुरा मनुष्य जन्म पाने से है।
(यम सदन का उल्लेख एक स्थल पर और उपलब्ध है।)

एतत्ते देवः वासो ददाति मर्तवे।
तत्वं यमस्य राज्ये व सानस्तायं वर।। (अथर्व १८/४/३)

मृत के ऊपर रेशमी वस्त्र पहिना दे जिससे यम के घर में जाने के समय मृतक अच्छी तरह कपड़े पहने हुए जावे।

वेदों में जो पक्ष स्थापनायें उन्हें हम साधरग प्रतिज्ञा कह सकते हैं। जैसे कि ज्योमेटरी में (General Enunciation) होता है। वेद सम्बन्धी वाग्मय में इस साधारण प्रतिज्ञा को विशद वणन किया गया है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में मृत्यु के उपरान्त की स्थिति का वर्णन–

१२– [१] ब्राह्मण ग्रन्थ वेद-परक व्याख्या का विनियोजित तारतम्य है। उनमें यज्ञ की प्रक्रिया व प्रयोजन वर्णित है। पर वेद प्रतिपादित, स्वर्ग, मोक्ष,

नरक इत्यादि का सिद्धान्त अक्षुण्ण रखा गया है। परन्तु यह बात जुड़ गई है कि स्वर्गादि लोक स्थान विशेष है-गति विशेष या मानव जन्म की सुखतरादि स्थिति नहीं है।

ऋग्वेदीय ऐतरेय ब्राह्मण का निम्न स्थल दृष्टव्य है।

[I] देवावै यज्ञेन श्रमेण तपसाहुतिभि: स्वर्गम् लोकमायान् ॥३/४२॥

देव जन यज्ञ से, श्रम से, तप से और आहुतियां देकर स्वर्ग लोक को प्राप्त हुए हैं। एक स्थल पर इस स्वर्ग लोक की दूरी भी बताई गई है।

सहस्राश्वाने वा इतः स्वर्गो लोकः ॥२/१७॥

एक तेज घोड़ा हजार दिन में जितना चलता है, उतना ही यहां से स्वर्ग लोक दूर है।

[II]यजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण में भी ऋक की तीनों मूलधारणाएं घोषित हैंकतमे रुद्रा इति देशमे पुरुषे प्राणा आत्मौकादशस्ते।

यदास्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यध रोदयन्ति ॥ (१/६/३/७)

यहाँ रुद्र गिनायें हैं। वे हैं दश प्राण तथा ११वीं आत्मा। रुद्र इन्हें उसी लिए कहते हैं क्योंकि मर्त्य शरीर से निकलने पर यह रुलाते हैं। यहां शरीर को मृत्यु अर्थात मरणशील कहा है। जिसमें से स्वतंत्र अस्तित्व वाली आत्मा मरते समय निकल जाती हैं।

स्वर्ग सम्बन्धी बात निम्न श्लोक से प्रकट होती है।

'ये हि जनाः पुण्यकृतः स्वर्गलोकंयन्ति।' (६/५/४/३)

तात्पर्य यह है कि पुण्यकर्मी जन ही स्वर्ग को जाते हैं। स्वर्ग का समर्थन एक और स्थल पर है। श्लोक न०१०-४-३-१०। स्वर्ग सुख कर मानव जीवन को ही कहा गया है।

तेव ऽवमेतद्विदुः। ये वैतत्कर्म कुर्वते मृत्वा पुनः सम्भवन्ति ते सम्भवन्त एवामृतव-मसि सम्भवन्त्यय य ऽ एवं न विदुर्भे वैतेत्कर्म न कुर्वते मृत्वा पुनः सम्भवन्ति त ऽएतस्यैवान्नं पुनः पुनर्भवन्ति॥ (१०-४३-१०)

(वे जो इसको ऐसा जानते हैं, अथवा वे जो यह कर्म करते हैं, मर कर फिर उत्पन्न होते है, वे उत्पन्न होते हुए भी जीवन मुक्तों के रुप में उत्पन्न होते हैं) जहां से सीधे मुक्त हो जाते हैं(जो ऐसा नहीं जानते, और जो यह काम

नहीं करते, मर कर फिर साधारण रूप में ही उत्पन्न होते हैं। वे बार-बार मृत्यु का अन्न बनते हैं। अर्थात पुनर्जन्म के चक्कर में पड़े रहते हैं।)

यहां स्वर्ग सुखकर मानव जीवन को ही कहा है।

मुक्ति का संकेत–

परन्तु शतपथकार यज्ञ से मुक्ति की प्राप्ति पर भी मत देते हैं:–

एक कथानक के अनुसार मित्रविन्दा नामक यज्ञ गौतम राहूगण से विदेहराज, जनक के पास चला गया। उसने वेद वेदांग में उसे ढूंढा। उसे फिर याज्ञवलक्य में पाया। राजा जनक ने एक सहस्र मुद्रा आचार्य को इस उपलक्ष्य में दी। उस मित्रविन्दा की प्रशंसा यों की गई है :–

विदन्ते मित्र राष्ट्रमस्य भवत्यप पुनर्मृत्युं जयति सर्वमायुरेति य एवं विद्वानेतयेष्टया यज्ञते यो वै मदैवं वेद॥ (११-४-३-२०)

(प्राप्त करता है मित्र को साम्राज्य उसी का होता है। वह बार-बार की मौत को जीत लेता है। पूर्ण आयु को प्राप्त करता हुआ इस सृष्टि में यज्ञ करता हैं। अथवा जो ऐसा जानता है।)

यहां भी बार-बार की मृत्यु उसे जीत लेने की शक्यता की सम्भावना और साधन बताये हैं।

इसी प्रकार ११-५-६-९ में वषटकार के नष्ट न होने देने पर बल देते हुए इसका फल बार बार की मौत से छूट जाना बताया है।

वषटकाराणामच्छम्बदकारायति ह वै पुनर्मृत्युमुच्यते गच्छति ब्रह्मणः सात्माता।

दोबारा पुनर्मृत्यु से छूटने को ब्रह्म के समीप जाना कहा है।

सयत्सायमस्तमिते केऽआहुतो जुहोति। तदैताभ्यां गूर्वाभयां पद्मयामेतस्मिन्मृत्यौप्रति तिष्ठत्यथ। यत्प्रातरनुदिते द्वेऽआहुतौ जुहोति तदैताभ्यांपराभ्यां पद्मत्रामेतस्मिनमृते प्रतिष्ठति स ऐनमेष उद्यन्नेवादायोदेति तदेतं मृत्युमतिमुच्येत सैषाग्निहोत्रैं मृ. त्योरति मुक्तिरति हवै पुनर्मृत्युमुच्यते य ऐवमेतामग्निहोत्रे मृत्योरति मुक्ति वेद। (२ : ३ ३ : ९)

यह जब सायं को सूर्यास्त होने पर दो आहुति देता है, तो इन पिछले पाद से उस मृत्यु पर ठहरता हैं, जब प्रातः सूर्योदय से पूर्व दो आहुति देता है, तो इन पिछले पाद से उस मृत्यु पर ठहरता है। वह (सूर्य) इस (अग्नि होत्री) को ऊपर लेता हुआ चढ़ता हैं। ऐसे वह मौत से छूट जाता है। यहाँ अग्नि होत्र में मृत्यु से अतिमुत्ति है। वह बार बार की मौत से छूटता है। जो इस अग्नि होत्र में मत्यु से अतिमुक्त हो जाता है।

बार बार जन्म व मृत्यु होती है पर प्रातः सायं अग्नि होत्र कर्ता को सूर्य ऊपर (संभवतः अपने लोक) में प्रश्रय देकर इस जन्म मरण से मुक्त कर देता है।

सामवेदीय ताण्ड्य ब्राह्मण का मत :-

चतुश्चत्वारिंशदाश्वीनानि सरस्वत्या विनशनात् फलक्षः।
प्रास्रवणास्तावदितः स्वर्गो लोकः सरस्वतीसम्मितेनध्वना स्वर्गलोकं यन्ति
[११-२५-१०-१६]

चौवालीस आश्वीन सरस्वती के विनशग से फलक्ष का स्थान है, उतना ही यहां से स्वर्ग लोक है।

[ताण्ड्य का प्रचार क्षेत्र नर्मदा का उत्तर भाग था। सो नर्मदा से हिमालय प्रदेश की दूरी ४४ आश्वीन ही है। हिमालय ही पुराने आर्यों का स्वर्ग लोक था। वहीं इन्द्र नाम के सहस्रों राजाओं पे राज किया हैं।]

यहां स्वर्ग को स्थान वाचक माना गया है।

(VI) तैत्तिरीय ब्राह्मण में—

एष [आदित्य] स्वर्गोलोकः ११३-८-१०-३

वह सूर्य ही स्वर्गलोक है। वेद की संगति लगाने से यह यमलोक ही ठहरता है। यह स्वर्ग लोक मृत्यु के उपरान्त हो प्राप्त हो सकता है। परन्तु ताण्ड्य वर्णित हिमालयस्थ स्वर्ग लोक पुरुषार्थी को सदा प्राप्त है। युधिष्ठिरादि पाण्डव आदि वहीं शरीर त्याग करने गये थे।

१३- उपनिषदों में जीवात्मा का वर्णन

उपनिषदों के अध्ययन से एक बात स्पष्ट होती है कि वेदों में तो परदे के उस पार क्या है—का प्रचुर वर्णन था। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी वही कुछ विस्तार से बताया गया है। परन्तु उपनिषदों में परदे के इस पार का हाल है। कि शरीरस्थ आत्मा क्या है, यहां पर कैसे आया? कहां पर स्थित हैं और क्या अर्जित करता है कैसे विभिन्न योनियों में जाता है? यह ऋषियों का अनुभूत वर्णन है। जो उनके अध्यातम विशिष्टजन होने के कारण जनता ने यो ही मान लिया-भावना से, श्रद्धा से।

उपनिषदों में जीव के अस्तित्व, अमरता और पुण्य संचय के निम्न स्थलों का अनुशीलन करके वैदिक साधारण प्रतिज्ञा का समर्थन होता है।

उपनिषदों में वर्जित मरणोपरान्त स्थिति

[i] बृहदारण्यक

[०१] तं विद्याकर्ममणी समन्वरभेते पूर्व प्रज्ञा च [४/४/२]

[मरने के बाद जीवात्मा के साथ विद्या और कर्म जाते हैं ! एक प्रचलित श्लोक में यही भाव है :—

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे नारि गुहद्वारि ॥
सखा श्मशाने देहश्चितायाम् परलोक मार्गे धर्मानुगौगच्छति जीव एषः॥

यहाँ धर्म से तात्पर्य जीव द्वारा अर्जित विद्या और कर्म से ही है ।

[०२] वृहदारण्यक उपनिषद (४/३-३) के अनुसार भी मरे पीछे आत्मा इसी प्रकार केवल लोकों अर्थात् वायु आदित्य, चन्द्र और ब्रह्मलोक में वापस पुनः जन्म लेता है । जैसे कि जोक एक पौधे से दूसरे पर कूद जाती है ।

[०३]एकी भवति न पश्यतीत्याहुरेकी भवति न जिघ्रतीत्याहुरेकी भवति न रसयत इत्याहुरेकी भवति न वदतीत्याहुरेकी भवति न शृणोतोत्याहुरेकी भवति न विजानातीत्याहुस्तस्य हैतस्य हृदयस्यांग्रप्रद्योतते तेन प्रद्योतैनेष आत्मा निष्क्रामति चक्षुष्टो वा मूर्ध्नों वाअन्येभ्यो वा शरीरदेशे-यस्तमुत्क्रामन्तं प्राणो ऽनुक्रामिति [बृहदा० ४/४/२]

अर्थात जिस समय मनुष्य की मृत्यु का समय होता है, तब शरीरस्थ सब इन्द्रियां क्षीणप्राय हो जाती हैं और वे अपना कार्य छोड़कर सूक्ष्म शरीर में प्रवेश होकर चली जाती हैं । जैसे सुवर्णाकार सोना लेकर नवीनतर आभूषण बना देता है, वैसे ही यह जीवात्मा इस शरीर को छोड़कर नवीन शरीर की रचना करती है अर्थात् नवीन शरीर को प्राप्त करता है, उन शरीरों में कर्मानुसार पितर, गन्धर्व, दैव प्राजापत्य, ब्राह्म अथवा दूसरे प्राणियों के शरीर प्राप्त होते है, यह भाव ४/४/४/ वाले श्लोक में है ।

[०४] पुनः ६-२-१५-२६ में आत्मा की गतियां दो प्रकार को बताई हैं ।

[१] ज्ञानी पुरुष की आतमा जो पहले प्रकाश की ओर जाती है, फिर वहां से क्रमशः दिवस, शुक्लपक्ष, उत्तरायण, देवलोक,आदित्यलोक, विद्युतलोक होती हुई ब्रह्मलोक को जाती है ।

[२]कर्मयोगी पुरुष की आत्मा-वह पहले धूम्र को जाती है । फिर वहाँ से क्रमशः रात्रि कृष्णपक्ष, दक्षिणायन, पितरलोक होती हुई चन्द्रलोक को जाती है । वहां पर कुछ दिन रहकर पृथ्वी पर लौट आती है । ७ वीं कण्डिका ही में

कहा है कि पितृलोक कर्म से प्राप्त होता है तथा देव लोक विद्या से। कर्म के लिए अविद्या शब्द शास्त्रानुमोदित है।

कई स्थलों पर यह कहा गया है कि मरते समय जो विशद इच्छा मनुष्य के मानस में होती हैं वे संकल्प सूक्ष्म शरीर बनकर आत्मा को उधर ही ले जाते हैं जहां उन इच्छाओं का प्रस्फुटितकरण हो। पर यह बात समोचीन नहीं लगती। पहली बात तो यह है कि मरते समय जो ऐहिक कामनाएं हैं, मनुष्य उन्हें अपने पुत्र या पुत्रिका से उत्पन्न पुत्र के सुपुर्द कर जाता है। वह शान्तिपूर्वक तभी दुनिया से प्रस्थान करेगा जब इस बारे में आश्वस्त हो जावे कि उसके ऋणों में जो कुछ भी चुकाया नहीं जा सका है, वह उसके उत्तराधिकारी चुकावेंगे।

प्रथम प्रकार के उत्कष त्मक ऋण

वृहदारण्यक०– [अध्याय १ ब्राह्मण ५] अथ त्रयो वाव लोका मनुष्य-लोकः ......प्रसन्ति ॥ कन्डिका १६

लोक तीन ही है, मनुष्य, पितृ एवं देव लोक। इसमें मनुष्य लोक पुत्र के द्वारा ही जीता जाता है। [सोयं मनुष्यलोकः पुत्रौणैव जययो जान्येन।] अन्य के द्वारा नहीं। पितृलोक कर्म से और देव लाक विद्या से जीता जाता हैं। लोकों में देव लोक ही श्रेष्ठ है।

अर्थात सम्प्रत्तिर्यदा प्रैष्यन्मन्यतेऽथ पुत्रमाह त्वं यज्ञस्त्वं लोक इति स प्रत्याहाहं ब्रह्मगाह लोक यज्ञोऽहं इति।.........आविशान्ति ॥ कण्डिका १७ जब पिता यह समझें कि मैं मरने वाला हूँ, तो वह पुत्र से कहता हैं–"तू ब्रह्म् है, तू यज्ञ है, तू लोक है। पुत्र उत्तर देता है कि हां मैं ब्रह्म हूँ, यज्ञ हूँ, एवं लोक हूं।

जो कुछ भी स्वाध्याय है वह ब्रह्म् से अभिप्रेत है। जो परोपकार एवं अनुष्ठान हैं वे यज्ञ हैं और जो लोक प्रसिद्धि के कार्य हैं, वे लोक हैं। पिता पुत्र को यह भार सौंपता है कि जो अवशिष्ट अध्ययन, सद्शास्त्र विषयक शेष रहा हैं, धर्मशाला, साहित्व सृजन आदि का कार्य बीच में छूट रहा हो तथा लोक में परिवार के नाम को उज्जवल करने के अर्द्धारम्भ कार्य रह गये हैं, पिता उन्हें दायभाग के उत्तराधिकारी को सौंपता है कि इन्हें मेरे उपरान्त अब तुम सम्पूर्ण करना। पुत्र प्रतिज्ञा करता हैं कि मैं यह उत्तरदायित्व लेता हूं।

इस प्रकार जाने वाला वह पिता इस लोक से जाता है पर वह अपने प्राणों के सहित पुत्र में व्याप्त हो जाता है । [स पुत्रैणेवास्मिलोके प्रतिष्ठति] यदि कि प्रमाद से उस पिता के द्वारा कोई कर्त्तव्य अपूर्ण रह जाता है, तो उसे मुक्त कर देता है] [स यद्यनेन किंचिदक्ष्णया कृतं भवति तस्मादेन सर्वं-स्मात्यपुत्रो मुंचति, तस्मात्पुत्रो नाम ।

अथेतस्मिनेत देवा: प्राणा अमृता आविशन्ति । [तभी उस पुत्र में पिता के अमृत प्राण प्रवेश करते हैं ।] उस पिता को मरा हुआ नहीं समझना चाहिए । यही बात ऐतरेय उपनिषद में भी है ।

सो ऽस्यायमितर आत्मा पुण्येभ्य: कर्मभ्य: प्रतिधीयते । [ऐ०उ० ४-४]

सन्तान को सन्तान भी इसीलिए कहते हैं कि वह पिता को संस्कृति और थाती का तानाबाना उसके बाद भी फैलाये रहती है ।

अन्य ऐंहिक ऋण—

तैत्तिरायारण्यक के द्वितीय प्रपाठक के अनुवाद ४ में उन ऋणों का उल्लेख है जो धनादि के रुप में लिए गये हों और मनुष्य उन्हें बिना चुकाये हो चला जा रहा हो ।

यददीष्यन्नृणमहं बभूवादित्सन्वा संजग जनेभ्य:। अविनर्मा तस्मादिन्द्रश्च संविदानौ प्रमुच्यताम ।

पुत्रादि के रक्षण व्यवहार के करने में असमर्थ होते हुए मैं जिस ऋण को प्राप्त हुआ हूं और जिसे इच्छा या अनिच्छापूर्वक चुका नहीं पाया हूं, हे अग्निदेव उस पाप से मुझे मुक्त करो । स्पष्ट हैं कि यज्ञ की जिम्मेदारी डालते समय इन ऋणों के अभुगतान जन्य पाप का निराकरण भी पुत्रादि के सुपुर्द है ।

ऐतरेय उपनिषद—

[०१] शतं मा पुर आयसीरक्षन्नध: श्येनो जवसा निरदीयमिति ।
गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच ।। [ऐतरेय० ४/५]

इस उद्धरण में वामदेव ऋषि कहते हैं कि मैंने सैकड़ों जन्म मरण के [लोहशालाका के समान दृढ़] बन्धनों को श्येन- (बाज) पक्षी की तरह

तोड़ा हैं। इससे स्पष्ट है कि विभिन्न जन्मों में जीवात्मा जाता आता रहता है। वह शरीर के साथ नष्ट नहीं होता।

[०३] **प्रश्नोपनिषद–**

जीवात्मा कर्मानुसार योनियों में जाता है।

[०१] अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापम्,
उभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ॥ [प्रश्नोप० ३ प्रश्न ७]

जीवात्मा मरने के पश्चात् शरीर त्याग के बाद पुण्य कर्मों के अनुसार मोक्ष में तथा पापकर्मो के अनुसार निकृष्ट योनि में जाता है और पाप पुण्य सममात्रा में होने पर मनुष्य योनि में जन्म लेता है।

[०२] यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः।
महात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति ॥ [प्रश्न० ३/१०]

अर्थात् मृत्यु के समय जीव की जैसी वासनायें होती हैं, अथवा संस्कार होते हैं, उनके अनुसार ही जीव शरीरान्तर में प्राणादि के (सूक्ष्म शरीर के) साथ जाता है। और क्योंकि मरते समय इन्द्रियों की शक्ति क्षीण हो जाती है, अतः जीवात्मा प्राणादि वायु के आश्रय से ही कर्मानुसार योनि में जाता है।

[०३] एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता
विज्ञानात्मा पुरुषः ॥ स परेक्षरे आत्मनि संप्रतिष्ठते ।
[प्रश्नो० चतुर्थ प्रश्न ९]

यह जीवात्मा शरीरस्थ देखना, छूना, सुनना, सूंघना, चखना, विचार करना, जानना आदि समस्त क्रियाओं का कर्ता है, क्योंकि इसके शरीर से पृथक् होने से शरीर में कोई चेष्टा नहीं होती है। जीवात्मा को जानने के ये बाह्यलिंग हैं और यह जीवात्मा मोक्ष में परमात्मा के आश्रय में रहता है।

छन्दोग्य उपनिषद्

[१०]य आत्माऽपहता पात्मा विजरो वि मृत्यर्बिशोको बिजिघत्सोऽपिपासः मत्य कामः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः ॥ छा ८-७-३)

आत्मा पापरहित वृद्धावस्थादि से रहित, अमर, भूख प्यास से रहित, सत्य संकल्प व कामना वाला है। वही ज्ञातव्य है।

[०] वृक्षों में जीवा–
छान्दोम्यनिषद : अध्याय- ८, खन्ड-।।

अस्य सौम्य महतो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्या ज्जीवनस्रवेद यो मध्येऽभ्याहन्या जीवन सवेत सरेत सएव जीवनात्माऽनु प्रभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति ।।

(उछालक जी सत्यकेतु को समाझाते है :–

(सौभ्य इस गूलर वत् महान् वृक्ष के मूल कुठार आदि से आघात करें तो जीता हुआ आघात स्थान से रस में रिसावे, मध्य मे तथा अग्र भाग से भी रस रिसावें वह यह वृक्ष जीवात्मा से पूरा प्रभावित है। सोम रस को पीता हुआ, मोदमान फूला फला रहता है।]

ऊपर आत्मा से प्रभावित शब्द वृक्षों के हेतु प्रयुक्त है। यहां सार्वजनिक वेतना से तात्पर्य है। चेतना तो पत्थर में भी है। जगदीश चन्द्र बसु ने प्रयोग करके सिद्ध किया हैं कि नियत परिमाण का पत्थर काल के साथ बढ़ता है। परन्तु वृक्ष में कर्त्तुम, अकर्त्तुम तथा अन्यथाकर्त्तुम की प्रयत्न शक्ति न होने तथा ज्ञानार्जन विहीन होने से उसमें जीवात्मा नहीं हैं। इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुख ज्ञानान्यात्मनो लिंगम । आत्माके चिह्न हैं सुख दुख इच्छा, द्वेष प्रयत्नवान होना तथा ज्ञानार्जन । इन गुणों से रहित आत्मावान् नहीं हो सकता।

[०३] छान्दोग्य उपनिषद में जनश्रुति को रेक्य मुनि ने इस प्रक्रिया का तारतम्य यों समझाया हैं :-

जब मृत्यु का समय आता है, तब सब इन्द्रियों को वृत्ति वाणी में लय हो जाती है वाणी की वृत्ति मन में, और मन की वृत्ति प्राण में परिवर्तित हो जाती है। जागृत अवस्था में पांच कर्मेन्द्रियां मन की इच्छाओं पर नाचती हैं, परन्तु मृत्यु के समय मन में भी प्राण चैतन्य के वश में चला जाता हैं। तब प्राण ही जीवन स्थिनि के अनुरूप नये निर्माण में जुट जाते हैं। यह निर्माण चाहे अच्छा हो या बुरा निर्णय चेतना के शरीर छोड़ते समय हो जाता है। जिन्होंने इस जन्म में अपने को विकसित किया होता है वे अनेक गुणों और संस्कारों में युक्त सुन्दर जीवन पाते हैं। पर जिन्हें इन्द्रियों के प्रति लालसा जागृत बनी रहती हैं, वे उन इच्छाओं की पूर्ति के लिए कोई शरीर धारण करते हैं। जब तक सृष्टि का प्रत्येक जीव पूणता प्राप्त नहीं कर लेता, है यह क्रम जारी रहता है।

[५] मुण्डकोपनिषद्

जीवात्मा का स्वरूप

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पंचधा संविवेश ।
प्राणेचित्तं सर्वमोतं प्रजानांयस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ॥
(मु० ३-१-९)

अर्थात् यह जीवात्मा अणु, सूक्ष्म, परिच्छिन्न, एक देशी है। इसमें प्राण पांच प्रकार से (प्राण अपान उदान समान व्यान भेद) से प्रविष्ट हैं। प्राणों से ओतप्रोत है। जिसके शुद्ध होने पर जीवात्मा परमात्मा को जानने में समर्थ हो जाता है।

जीवात्मा का सूक्ष्मशरीर मोक्ष में नही रहता :-

गताः कलाः पंचदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परे ऽव्यये सर्व एकी भवन्ति ॥
[मु० ३/२/७]

अर्थात देवाः=पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्माणि=५ कर्मेन्द्रियां, विज्ञानमय= बुद्धि, ये सब मोक्ष में प्रतिदेवतासु =अपने अपने कारण में लीन हो जाते हैं। १५ कलाऐं जिनका वर्णन प्रश्नोनिषद् में किया है वे सब भीं कारण में लीन हो जाती हैं।

[६] माण्डूक्योपनिषद ॥ [यत्र सुप्तो व कंचन ... प्राज्ञस्तृतीयपादः]॥५॥

अर्थात जिस दशा में जीव न तो किसी वस्तु की कामना करता हैं, न कोई स्वप्न देखता है, उस गाढ़ निद्रा की दशा को सुषुप्ति कहते हैं। इस दशा में जीवात्मा अपने स्वरूप का ही ज्ञान वाला होने ने प्रज्ञानधन, किसी तरह की दुखानुभूति न करने से आनन्दभुक और दूसरे द्वारों के निरुद्ध होने से चेतोमुख=ज्ञानमात्र द्वार वाला कहलाता है।

[७] श्वेताश्वरोपनिषद् -

जीवात्मा का परिमाण-

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः सह विज्ञेय स चानन्त्याय कल्पते ॥ [श्वेताश्वशोरोतपनिद ५/९]

अर्थात बाल के अग्र भाग को सौ भागों में विभक्त किया जावे और फिर उस शतांश के सौ भाग किये जाये, तब उसके एक भाग के समान परिमाण वाला जीवात्मा होता है। अर्थात बाल के अग्र भाग के दस हजारवें भाग के बराबर जीवात्मा होता है और यह जीवात्मा ही मोक्ष सुख को प्राप्त होता है।

जीवात्मा का पुल्लिगादि कोई लिग नहीं होता–

नेव स्त्री न पुमानेष न चेवायं नपुंसकः।

यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन सयुज्यते [श्वेताश्वरोप० ५/१०|

अर्थात जीवात्मा का स्त्रीलिंग, पुल्लिग, नपुंसकलिंग नहीं होता। जिसे जिस शरीर को [पुरुष, स्त्री, पशु पक्षी, कींटादि के शरीर को] जीवात्मा ग्रहण करता है, उस उससे ही संयुक्त हो जाता है।

[७] गीता में जीव की अमरता का प्रतिपादन–

य एन वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं
भूत्वा भविता वा न भूयः
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२॥
वासांसि जीणानि यथा बिहाय
नवानि गृहणाति नरोपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानि देहि ॥३॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैन क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥४॥

[जो इस आत्मा को मारने वाला तथा जो इसको मरा समझता हैं, वे दोनों ही नहीं जानते है, क्योंकि यह आत्मा न मरता है, और न ही मारा जाता है।

यह आत्मा किसी काल में भी नहीं जन्मता है और न मरता है अर्थात् यह आत्मा हो करके फिर न होने वाला है, क्योंकि अजन्मा, नित्य, शाश्वत् और पुरातन है। शरीर नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता है।

जैसे पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को त्याग कर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।

इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, इसको आग जला नहीं सकती, जल गला नहीं सकता और वायु भी इसे सुखा नहीं सकती है।

इन श्लोकों में आत्मा के अजर अमर होने की बात कृष्ण द्वारा अर्जुन को युद्धरत करा के मोह छुड़ाने के प्रकरण में कही गयी हैं।

गीता[श्लोक १८,२३,२५]में भी लगभग यही मत प्रस्तुत किया गया हैं। कि पितृ लोक से लौटने वाली आत्माएं दो मास वनस्पति में रहती हैं और १० मास किसी माता के गर्भ में [यदि मानव चोला ही मिलना हैं तो]। सम्भवतः इसी विश्वास में पौराणिक लोग सम्बन्धी की मृत्यु के एक वर्ष बाद वर्षी मनाते है क्योंकि पितर अब तो अन्यत्र पैदा ही होने वाला है। उसकी एक बार खातिर और कर दी जावे।

यास्काचार्य के निरुक्त में वर्णित नाना जन्म—

[१] मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः।
नानायोनि सहस्राणि मयोषितानि यानि च ॥
आहारा विविधा भुक्ताः पीताः नानाविधास्तनाः ।
मातरो विविधा दृष्टाः पितर सुहृदस्तथाः ॥२॥

आवांङ्मुखः पीडय मानो जन्तुश्चैव समन्वितः॥ निरुक्त १४/६ ॥

अर्थ— "मैंने अनेक बार जन्म मरण को प्राप्त होकर नाना प्रकार के हजारों गर्भाशयों का सेवन किया। [आहारवि०] अनेक प्रकार के भोजन किये, अनेक माताओं के स्तनों का दुग्ध पिया और अनेक माता पिता और सुहृदों को देखा ॥२॥ [आवाङ्मुखः[मैंने गर्भ में नीचे मुख, ऊपर पग

इत्यादि नाना प्रकार की पीड़ाओं से युक्त होकर अनेक जन्म धारण किये।

दर्शन शास्त्रों में आत्मा की स्थिति–

[०१] न्याय व वैशेषिक दर्शन में मृत्यु और कर्मफल जनितपुनर्जन्म इन शास्त्रों की मान्यता है कि इस जीवन में जो यह दीखता है कि कर्मानुसार फल नहीं मिल रहा उसका कारण आत्मा के संचित धर्माधर्म ही है। नैयायिक इस व्यवस्था को यह समझाने के लिए भी आवश्यक समझते हैं कि क्यों शास्त्रानुमोदित कर्म किये जावें ? उदाहरणत: यज्ञ जिसका फल स्वर्ग कहा है, यद्यपि यज्ञ क्रिया समाप्त किये बहुत समय बीत चुका है, वात्स्यायन ने इसमे उदाहरण दिया है कि बीज नपन के बहुत समय बाद वृक्ष उगकर फल देता है। (तत: प्रवृत्ति संस्कार········फलम निस्पादयति) न्याय सूत्र भाष्य ४-१-४७) उसी प्रकार किया कर्म कालान्तर में फलित होता है। परन्तु वैशेषिक कार इतना और जोड़ देते है कि यज्ञादि का सुख रूप फल आत्मा में तभी से स्थित हो जाता है और उसी की संज्ञा धर्म है। धर्म आत्मा का गुण है। (न्याय सूत्र भाष्य ४-१३२) इसलिए आत्माओ के सुख दुख में समानता नही है। अतएव दारा धन सुत आदि कर्म फल न होकर इनको संगति से मिलने वाला सुख ही कर्मफल का रूप है।

परन्तु कर्मफल की जयन्त ने अपनी न्याय मंजरी में एक और व्याख्या दी है। कर्म चाहे निषिद्ध हो, चाहे, विहित, जब वह समवेग से किया जाता हैं तो उसके दो फल होते हैं। एक प्रसन्नता रूप फल तो उसी जीवन में मिलता है। परन्तु निषिद कर्मो का एक और फल प्राय परलोक में मिलता हैं जो कष्टकर होता है। उसकी संज्ञा नरक है। विहित कर्मों में से भी कुछ का फल तुरन्त मिलता है जैसे करीरी यज्ञ से वर्षा, कुछ का इस जीवन में ही थोड़े समय बाद फल मिलता है जैसे पुत्रेंष्टि यज्ञ से पुत्र प्राप्ति। परन्तु ज्योतिष्टोम यज्ञ का फल अगले जीवन में ही मिलता है जैसे कि दुष्क्रतों का फल अगले जीवन में नरक रूप मिलता है।

सृष्टि रचना का कारण भी कर्म हो—

इसी प्रकार सृष्टि रचना और विध्वंस के मूल में भी कृत कर्म ही है, जिन्हें कहीं कहीं अदृष्ट को संज्ञा दी गई है। इसमें प्रलय का कारण तो जगत के अणुओं की परस्पराकर्षण शक्ति का कम होना ही है परन्तु तदुपरान्त तो सृष्टि को रचना पुन: होती है ताकि कृत शुभ कर्मो का फल

प्राप्त हो सके और उनके कृत कर्म का हनन होसके। न्याय मंजरी[पृ० २/६३] में जयन्त तो यहां तक कहते हैं कि ईश्वर भी ऐसो सृष्टि की रचना नहीं कर सकता कि जिसमें कृत धर्म और अधर्म के फल भोगने को उपलब्ध और उद्यत आत्माओं के भोग विधान की व्यवस्था नहीं हो। [ईश्वरीय नानेकत्मावृलि......निर्मातुम अर्हति] अतः ईश्वर की ज्ञानमय तप क्रिया इस प्रकार होती है कि आत्माओं को कृत कर्म का फल मिल सके।

न्याय सूत्र [१/१/१] एवं वैशैषिक [६/२/१४] में यह मत प्रकट किया है कि इच्छा द्वैषादि द्वैषों के कारण ही कर्मतथा कर्म उद्वैग उत्पन्न होता हैं और कृत धर्म से धर्माधर्म संग्रहित होता है और धर्माधर्म के अनुकूल ही स्वर्ग का सुख अथवा नरक का दुख मिलता है। कणाद के वैशेषिक सूत्र [६/२/१५] में भी यही कहा गया हैं कि आत्मा के विभिन्न प्रकार के शरीरों के संयोग वियोग का कारण यह धर्माधर्म हीं है और तदनुसार ही यह आत्मा हर नये शरीर में बुद्धि, इन्द्रिय और इन्द्रियों के विषयों से सम्पर्क करके भोगता है तथा इस नये जन्म में भी उसी प्रकार नया धर्म अर्जित होता है और वह उससे अगले जन्मों का कारण बनता रहता है। वैशैषिक दर्शन [६/१/५] में यह बलपूर्वक कहा गया है कि स्वयं के किये पाप पुण्य का ही फल मिलता है। अन्यों के किये नहीं। हां भाष्यकार उपास्कार के अनुसार इसका एक व्यतिरेक अवश्य हैं और वह है पितृयज्ञ जिसमें पुत्र के किये कर्म का फल पिता को मिलता है।

धर्म के दो प्रकार—

परन्तु वैशैषिक दर्शन [१/१/२] में धर्म की परिभाषा में कहा गया हैकि धर्म वह है जिसमें अभ्युदय और निश्रेयस दोनों सिद्ध हों। आगे [१/१/४] में कहा है कि निश्रेयस का विशेष फल तो छः प्रकार के विद्या के ज्ञान का फल है और यह ज्ञान विशिष्ट प्रकार के धर्म [कृत धर्म का फल है] और अभ्युदय [६/२/१-२] के अनुसार साधारण तथा वैदिक क्रियाकलाप का फल है। जिनका फल उसी जीवन में मिलना आवश्यक नहीं है। प्रशस्तपाद ने इन दो प्रकार के कर्मों के लिए प्रवृति लक्षण तथा निवृति लक्षण धर्म प्रयोग किये हैं। विद्या [ज्ञान] की प्राप्ति के बाद, अविधा दूर हो जाती है और उससे दोष [इच्छादि] दूर हो जाते है। उसके धर्माधर्म कृत्य जो बंधन का

कारण है, समूहीकृत नहीं होते । उसके विशुद्ध धर्मात्मक कार्य निवृति परक है। बस पूर्व संचित धर्माधर्म इस अथवा कुछेक और जन्म में भुगत कर वह शरीर बन्धन प्रक्रिया से मुक्त हो जाता है जैसे कि जलती समिधा पूर्ण रूप से जल चुकी हो। नैयायिकों का प्रेत्य भाव पुनरुत्पत्ति प्रेत्य भावः) न्याय दर्शन के इस सूत्र [१/१/१९] में कहा है कि मनुष्य के एक जन्म के किये कार्य दूसरे जन्म का कारण बनते हैं और पुनर्जन्म शब्द प्रयुक्त किया गया है। पुनर्जन्म आत्मा का होता है, भौतिक शरीर का नहीं। जब आत्मा, शरीर, बुद्धि और इन्द्रियां एकत्रित होती हैं, वही पुनर्जन्म है । और मृत्यु इसका विलोम है और ऐसा अनादि काल से होता आया है। तथा यह प्रत्येक के संचित धर्माधर्म का फल है। जब कर्माशय[Residual] कर्म का क्षय हो जाता है, तभी मृत्यु हो जाती है । इसमें दूसरा कारण यह भी है कि कर्माशय फल भुगतवाने को तैयार हो जाता है।

न्याय सूत्र [३/२/७०]में कहा भी है विपाक सम्वेदनात् पुनर्जन्म इसीलिए भिन्न भिन्न व्यक्तियों की मृत्यु भिन्न प्रकार से होती है । अन्यथा सबकी मृत्यु एक ही प्रकार से होती। सूत्र३/१/३२–३४ में यह भी कहा गया है कि कर्माशय के अनुसार ही इन्द्रियां मिलती हैं, हां बुद्धि अनादि अनन्त है। जो आत्मा के साथ हमेशा रहती है । एक और दृष्टिकोण न्याय और वैशेषिक के एक भाष्य न्यांय मंजरी के अनुसार आत्मा को व्यापक मानना है अतः मृत्यु समय आत्मा एक शरीर को छोड़ता है और दूसरें को ग्रहण करता सा लगता है। क्योंकि इसका दूसरे शरीर में स्थित बुद्धि से नया सम्पर्क होता है । वास्तव में आवागमन इस बुद्धि का ही होता है।

(सर्वत्र विद्यमानस्यात्मानः कः संसारार्थः)

अतः बुद्धि चली जाने पर आत्मा निष्प्रयत्न हो जाता है और यही मृत्यु है। दूसरे शरीर में आत्मा सर्वव्यापकता से पहले ही होता है, धर्माधर्म युक्त बुद्धि के पहुँचते ही पुनर्जन्म सा होने लगता है और जीवन प्रारम्भ हो जाता है। इसी बात को प्रशस्तपाद ने आगे बढ़ाया है । वे कहते हैं कि बुद्धि अतिवाहक शरीर के माध्यम से एक शरीर को छोड़कर दूसरे को जाती है।यहतभी बुद्धि का अपसर्पण होताहैऔर मृत शरीर कोछोड़कर चली जाती है।

फिर दूसरे शरीर में वह प्रवेश कर के पुनर्जन्म सा लगता है। इसे अपसर्पण कहते हैं।

स्वर्ग और नरक

भाष्यकार प्रशस्तपाद का मत है कि स्वर्ग और नरक नामक स्थान विशेष है जहां जाकर आतमा नये शरीर से जुड़ता है ताकि उसमें फलाफल भुगत सके। परन्तु न्याय वैशेषिक इन्हें सुख और दुखमय जीवन मात्र ही मानते हैं। प्रशस्तपाद ने स्वर्गम् नरकं वा गत्वा" वाक्य प्रयुक्त किया है। अर्थात् ब्रह्म, इन्द्र प्रजापति और पितृलोक में तथा अधर्माधिक्यं से प्रेत एवं पशु योनि में जन्म मिलता है। वात्स्यायन भी अपने भाष्य में स्थान वाचक ही स्वर्ग और नरक को मानते है। और मरने के तुरन्त बाद यह प्राप्त होते है।

पतितेऽस्मिन् शरीरेउत्तरम् निष्पाद्यते। (न्याय वात्स्यायन भाष्य ३/२/५०)

उनके अनुसार स्वर्ग एक है, परन्तु नरक अनेक हैं। परन्तु बाद के भाष्य कार इन्हें स्थान विशेष न मानकर सुख दुख मय जीवन ही मानते हैं।

मीमांसा दर्शन में जैमिनि ऋषि द्वारा जीवात्म-विचार

जीवात्मा कर्मों का फल स्वयं भोगता है।

(१) शास्त्रफलं प्रयोक्तरि तल्लक्षणत्वात् तस्मात्स्वयं प्रयोगे स्यात्॥
(मीमांसा ३/७/१८)

अर्थात शास्त्रोक्त अग्निहोत्रादि कर्मों का फल उसी को मिलता है, जो प्रयोक्ता अग्निहोत्रादि कर्मो का अनुष्ठान करता है। क्योंकि शास्त्रकार कर्ता को ही भोक्ता कहते हैं।

(२) फलस्य कर्मनिष्पत्तेस्तेषां लोकवत् परिमाणतः फलविशेषः स्यात्
(मीमांसा १/२/१७)

अर्थात् जीवों को जो भी सुख दुख रूप फल मिलता है, वह जीवों के कर्मो से प्राप्त होता है।

(३) अन्यार्थे नाभिसम्बन्धः (मीमांसा ६/२/८)

अन्य जीवात्मा के किये कर्मों का फल अन्य जीवात्मा नहीं प्राप्त कर सकता ।
(४) फलकामो निमित्तिमिति चेत् (मी० ६/२/६)

यदि कोई ऐसी आशंका करे कि दूसरे के किये फल की कामना करके किये गये कर्म फल का दूसरे को होता है, क्योंकि वह उनके निमित्त से किया गया है । आशंका का समाधान मीमांसा में इस प्रकार किया गया हैं ।

ननित्यत्वात् ।। (मीमांसा ६/२/१०)

अर्थात् परमात्मा का कर्मफल देने का नियम नित्य है, टलने वाला नहीं है ।

कर्म तथेति चेत् [मी० ६/२/११[

जैसे लौक व्यवहार से देखा जाता है कि एक पुरुष धन संग्रह करके दूसरे को दे देता हैजोउसका भोग करता है इसी प्रकार दूसरे के किये कर्मों का फल दूसरे को मिल जाना चाहिए । इसका उत्तर देते हुए जैमिनि मुनि लिखते हैं।

न समवायात् [मी० ६/२/१२]

दूसरे के किये कर्मों का फल दूसरे को प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि कर्म करने वाले जीवात्मा के साथ ही कर्मफल का सम्बन्ध होता है और लोक का धन का दृष्टान्त भी ठीक नहीं है । क्योंकि कोई भी सुख या दुःखरूप भोग कर्मों के बिना नहीं हो सकता। यदि दूसरे से अर्जित धन दूसरे को मिल जाता है तो वह सुख का कारण नहीं हो सकता । वह बिना भोगे भी नष्ट हो सकता है। रोग विशेष होकर नष्ट होना, चौरादि से चुरा लेना या अन्य किसी प्रकार से ऐसा धन समाप्त हो जाता है । क्योंकि कर्ता को कर्मफल मिलता है, इस पक्ष को न मानने से कृतहानि तथा अकृताभ्यागम नामक दोष आते हैं।

और जैसे पुण्य का फल दूसरे को मिल सकता है, वैसे ही पाप का फल भी दूसरे को मिलना चाहिए । किन्तु कोई ऐसा नहीं मानता और ऐसा मानने पर परमेश्वर की न्यायानुकूल कर्मफल व्यवस्था दोषपूण हो जायेगी। अतः कर्ता ही फल को भोगता है, दूसरा नहीं ।

जीवात्मा कर्म करने में स्वतन्त्र हैं—

प्रयोग पुरुषश्रुतैर्यथाकामी प्रयोगे स्यात् ॥ [मी० ६/२/३]

प्रयोगे=कर्तव्यकर्म करने में पुरुष जीवात्मा की कर्ता रूप में श्रुति पाये जाने से कर्मों के करने में पुरुष यथाकामो=इच्छानुसार कर्म करने वाला होने में स्वतंत्र हैं।

प्रारब्ध कर्म जीवात्मा की स्वतन्त्रता में बाधक नहीं होते—

कुछ मनुष्यों का ऐसा विचार है कि परमेश्वर जीवों को कर्मानुसार मनुष्यादि योनियों में भेजता है और उन्हीं कर्मों के अनुसार उनकी आयु आदि भोग भी निश्चित कर देता है। अतः मनुष्यादि योनियों में जीव तदनुसार कर्म करते हैं और वर्तमान जीवन में किये कर्मों का फल इस जीवन में नहीं मिलता। परन्तु अनेक कर्म ऐसे होते हैं जिनका फल तुरन्त या कालान्तर में जीवनकाल में ही मिल जाता है। अतः हर कर्म के दो फल हैं। तुरन्त प्राप्य तथा अगले जन्म में प्राप्य। इस विषय में मीमांस्य दर्शन में लिखा है कि जिन कर्मों के फलस्वरुप मनुष्य योनि प्राप्त होती हैं, वे कर्म मनुष्य की कर्म करने का स्वतंत्रता में बाधक नहीं होते अर्थात जीवात्मा शुभाशुभ कर्म करने में स्वतंत्र ही है। इस विषय में जैमिनि मुनि लिखते हैं—

प्रक्रमात्तु नियम्येता ऽऽरम्भस्य क्रियानिमित्तवात् [मी० ६/२/१३]

अर्थात् मनुष्यों को प्रारब्ध कर्म परतंत्र इसलिए नहीं बनाते, क्योंकि वे भोग देने के हेतु होते हैं। क्रियमाण कर्मो के न तो हेतु होते और न ही करने में बाधक होत हैं।

नियमो वातन्निमित्तत्वाद कत्तुदस्तत्कारणं सायत् ॥ (मी० ६/२/१५)

अर्थात् जीवों को भोग प्रारब्ध कर्मों के अनुसार मिलता है। और जीव कर्मो को स्वतन्त्रता से करता है, ऐसा नियम=व्यवस्था है। क्रियमाण कर्म प्रारब्ध कर्मों के भोगने में निमित्त=साधन हो जाते है। अतः प्रारब्ध कर्मों का भोग क्रियमाण कर्मों में बाधक नहीं होता।

पुनर्जन्म के पक्ष में योगदर्शन में युक्तियां—

[१] योग दर्शन में पातंजल का दिया तर्क—

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रुढोऽभिर्निवेशः [१/२/९]

हर प्राणी की यह इच्छा देखने में आती है कि मैं मरु नहीं। यह मृत्यु का भय कृमि से लेकर विद्वान मनुष्यों तक सभी को होता है। इससे सिद्ध होता है कि मृत्यु भय का हर प्राणी अनुभव कर चुका है। और इस लिए आत्मा अमर है।

[०५] एतद्देशीय आप्त मत—

(क) मरने के उपरान्त क्या होता है, इस पर एतद्देशीय आप्त मत प्रस्तुत करते हुए दयानन्द सरस्वती का मत उदधृत करते हैं—

जो मनुष्य पूर्वजन्म में धर्माचरण करता है उस धर्माचरण के फल से अनेक उत्तम शरीरां को धारण करता है,और अधर्मात्मा मनुष्य नीच शरीर को प्राप्त होता है। जो पूर्वजन्म में किये गये पाप पुण्य के फलों को भोग करने के स्वभाव युक्त जीवात्मा हैं, वह पूर्व शरीर को छोड़ के वायु के साथ रहता हैं। पुनः जल औषधि या प्राण आदि में प्रवेश करके वीर्य में प्रवेश करता है। तदन्तर योनि अर्थात गर्भाशय में ही स्थिर होकर पुनः जन्म लेता हैं। जो जीव अनुदित वाणी बोलता है, और धर्म में स्थिर रहता है वह मनुष्य योनि में उत्तम शरीर धारण करके सुखो को भोगता है। और जो अधर्माचरण करता है वह अनेक नीचे शरीर अर्थात कीट पतंगा पशु आदि के शरीर को धारण करके अनेक दुखों को भोगता है।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पुनर्जन्म प्रकरण में [अथर्व ५/१/१२ की व्याख्या]

स्वामी दयानन्द अपने "सत्यार्थ प्रकाश" में पृष्ठ १५५ व १५६ पर इस प्रकार लिखते है–

[अ]इस लिए पूर्वजन्म के पुण्य पाप के अनुसार वर्तमान जन्म और वर्तमान तथा पूर्व जन्म के कर्मानुसार से भविष्यत् जन्म होते हैं।"

[आ] और जो पूर्वजन्म को न मानोगे तो परमेश्वर पक्षपाती हो जाता है,

क्योंकि बिन पाप के दारिद्र्यादि दुख और बिना पूर्व संचित पुण्य के राज्य धनाढ्यता और निर्बुद्धिता उसने क्यों दी। और पूर्व जन्म के पाप पुण्य के अनुसार दुख सुख देने से परमेश्वर न्यायकारी यथावत् रहता है।

(ख) निर्भय स्वागत करो मृत्यु का, मृत्यु एक है, विश्राम स्थल।
जीव जहां से फिर चलता है, धारण कर नव जीवन संबल ।।
मृत्यु एक सरिता है जिसमें, श्रम से कातर जीव नहाकर।
फिर नूतन धारण करता है, कायारूपी नवस्त्र हाकर ।।
[पं० रामनरेश त्रिपाठी]

[ग] **बौद्ध धारणा**—

बौद्ध मान्यता है कि आत्मायें अनादि हैं वे बनाई नहीं जातीं परन्तु उनका दर्शन हरेक वस्तु को अस्थिर, अवास्तविक तथा जीवन को दुखमय और पापमय मानना है। आत्मा को सांसारिक बन्धन से मुक्त होना है और इन बन्धनों से मुक्ति तक जन्म पुनर्जन्म कर्मानुसार होते ही रहते हैं। बन्धन मुक्त होने पर निर्वाण की प्राप्ति होती है। अर्थात उसके अस्तित्व का नाश [एनहिलेशन] हो जाता हैं।

[०६] भारतेत्तैर धर्मों में पुनर्जन्म सम्बन्धी मान्यता—

[क] **यहूदी धर्म** : में आत्मा के पुनर्जन्म के सिद्धान्त को Gil Gul Neshanoth नाम से बखाना है। उसका वर्णन कभाला [Kabhala] दर्शन में है। यह अद्वैतसिद्धान्त को जीव सम्बन्धो मान्यताओं से मिलता जुलता है।

[ख] **ईसाई धर्म** : प्रारम्भिक ईसाईयों में सैन्ट जीरोम [Jerome] ने इसे स्वीकार किया है। परन्तु यह दर्शन कुछ चुने हुए सुपात्रों को ही बताया जाता था। Origenes ने स्वीकार किया कि बाईबिल में वर्णित कुछ परम्परायें पुनर्जन्म का सिद्धान्त मानने से ही समझ में आकर बुद्धि गम्य होती हैं। उदाहरणतः जन्म पाने से पहले जेकब और ईसव के संघर्ष की कथा जर्मियां का जन्म से पूर्व ही विशेष कार्य हेतु चुन लिया जाना। ईसाईयों के मानीहन्स [Manichaeans]सम्प्रदाय ने तो सदा पुनर्जन्म का सिद्धान्त निष्ठापूर्वक माना है। इसके अतिरिक्त इस धर्म के साईमेनिष्ट,वैसीलियन,वैलेन्टाईन प्रभृतिफिर्के

पुनर्जन्म मानने थे । छठी शताब्दी में जस्टीशियन ने चर्च काउन्सिल के निर्णयानुसार राजाज्ञा प्रसारित की थी कि पुनर्जन्म की मान्यता अवैध करार दीं जाती है। यदि ऐसा न करते तो ईसाई धर्म की पापों को क्षमा प्राप्त कराने वाली मान्यता क्योंकर टिकती । यों बाईबिल के मत्ती रचित सुसमाचार संकलन के पर्व। आयत १० से १३ तक में योहिना बपतिस्मा देने वाले को पूर्वजन्म का एलियाह नवी बताकर उसका परिचय कराया गया हैं, जो स्पष्ट पुनर्जन्म की मान्यता से ही सम्भव है।

परन्तु तस्वीर का दूसरा पहलू भी है । आधुनिक ईसाई पुनर्जन्म के सिद्धान्त के प्रतिकूल हैं। डलास T_x –7377 U.S.A. के बौक्स-40 से प्रकाशित Last Days of Ministries नामक पत्रिका के जून–जुलाई 1983 अंक के पृष्ठ 11 में निम्न शीर्षक का एक लेख छपा है :–

Three lies of Hinduism :–

1– The lie of Time–

Hinduism teaches that there was no begining to the universe and that there will be no end. All is an unending series of cycles and even the gods die and are reborn. Since the world is going nowhere but in a circle, there is no such thing as progress Therefore do not try to improve anything, because all is futility.

2– The lie of Reincarnation :

This says that we all are reborn over and over, You may be a dog but if you are a good dog, you might work up to be a man. But if you are a men and don't do so well you may come back as a goat. It is all a cycle and you can always do better later.

3– The lie of Karma

This says your place in life is dictated by what you did in your past life. Don't try to improve your lot. It will be against the will of the gods. And don't helf the suffering you will interfere with their "Right" to pay for past sins.

Under ɿhis system Innia is one vast purgatory in which milllons of peop'e be'ieve they are living out rewards and punishment for life they never lived. They are literaly living a cosmic lie, could Satan have devised a more perfect systam for dausing misery.
परन्तु पुनर्जन्म न मानने वाले ईसाई देशों में भी गरीबी और दुख होता है।

इस कुप्रचार से आबाल-वृद्धों को बचाने के लिए ही इस शोध की आवश्यकता है। हमारे सिद्धान्त को गलत रूप से अधूरा ही प्रस्तुत करके उसकी खिल्ली उड़ाई है तथा उपहास किया है। सिद्धान्त का कोई वैचारिक खण्डन नहीं किया गया है।

परन्तु इसकी प्रतिक्रिया प्रारम्भ में हो चुकी है। यूरोप में Spiritualist Church हर नगर में स्थापित हुए हैं जो आत्मा की अमरता मानते हैं। वे प्लाम चिट्ठ्, मीडियम और वालेरवायेन्स से दिवंगत आत्माओं को बुला कर उनसे प्रश्न करते हैं तथा आत्माओं के एक योनि से दूसरे में जाने पर विश्वास करते हैं।

प्रसिद्ध लेखक H. H. Testu ने पत्रिका Two Works के मई 1985 के अंक में एक लेख लिखा हैं, जिसके कुछ अंश यहां उदघृत हैं :-

The story of the resurrection has been belittled. But like most spritualists, I have saen the snme thing happen today. The dead do return. They do sometimes take the form they used in life. The resurrection is no' fable.

We survive death. This has now been proven. We are respon-sible for every act we do and we have to face restribution The Knowledge that death is not the end, must colour over lives. You are not a body with a sprit. You are temporabily. occupying a body for this life.

There is another world. when your body dics, you will go there It is different. You can no more appreciate it now than a caterpillar cau understand what it is like to change into a butterfly, or a tadpole into a frog.

The kuowledge is there. It has been suppressed.

जिन्दावस्ता—

पारसियों की धर्म पुस्तक में एक रूपक बांधा गया है कि मरणोपरान्त एक शुभकर्मी व्यक्ति को उस लोक में एक सुन्दर कुमारी से सामना होता है जिसका तन अत्यन्त सुन्दर व आकर्षक है और जो १५ वर्ष का है। उससे आकृष्ट होकर वह व्यक्ति उसका परिचयादि पूछता है, और वह सुन्दरी जो उसकी अपनी ही अन्तरात्मा थी, उत्तर देती है कि 'ऐ सुविचारी, सुउच्चारी एवं सुकर्मी युवक ! मैं तेरी अन्तरात्मा हूँ। संसार में भी तुझे तेरी विशाल हृदयता, सुख सम्पदा के कारण सब तुझे प्यार करते थे और वही प्यार संगृहीत होकर मैं प्रकट हुई हूँ । जब तू किसी को मूर्ति पूजा करते हुए या गरीब को तिरस्कृत करते या अनुपयुक्त करते देखेगा, तब तुझे गाथा का गान, पवित्र जल की पूजा आदि करनी चाहिए । मैं सुन्दर थी, पर तेरी इन पवित्र कार्यों से सून्दरतर होती रहूँगी । इसीलिए मानव समुदाय पूजा करते हैं।

विश्वासी धार्मिक व्यक्ति की आत्मा जो पहला पग उठाती है वह चिन्तन स्वर्ग, द्वितीय पग सुशब्द स्वर्ग, तीसरा पग सुकर्म स्वर्ग तथा चतुर्थ पग अनन्त प्रकाश वाला स्वर्ग है।

[यह संगृहीत कर्म से स्वर्ग की सोपान की निश्चित्तता का सिद्धान्त है।]
(Quoted and Translated from Max Mullers Gifford Lectures.)

[घ] हुदु दर्शन—

ब्रिटिश द्वीपों में ईसाई धर्म फैलने के पूर्व यही धर्म-दर्शन प्रचलित था। हुदु का शाब्दिक अर्थ पंडित पुरोहित है एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटानिका भाग ७ पृष्ठ ७०६-७० तथा एनसाईक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड इथिक्स भाग ५ पृष्ठ ८२-८४ के अनुसार इस दर्शन को दो मुख्य मान्यताएं थीं :- [१] यज्ञाचार [२] जीव की अमरता सम्भवतः भारतीय द्रबिडों ने ब्रिटेन में जाकर इन वैदिक मान्यताओं का प्रचार किया हो।

[ङ] कुरान में पुनर्जन्म [तनासुख]

इस्लाम और कुरआन को मानने वाले पुनर्जन्म [तनासुख] को नहीं मानते। उनका मत है कि प्रत्येक व्यक्ति एक बार जन्म लेता है, एक बार मर कर कब्र में दफन होकर कयामत [प्रलय] के दिन की प्रतीक्षा करता है प्रलय के दिन उसका कर्मानुसार हिसाब–किताब होता है कि किसको स्वर्ग मिले, किसको नरक। किन्तु यदि कोई व्यक्ति उस समय मोहम्मद साहब से क्षमा मांग लेगा, तो उनकी सिफारिश पर उसे क्षमा कर स्वर्ग में ही भेजा जायेगा स्वर्ग में परियां, हुरें मिलेंगी, मय के जाम मिलेंगे, फल फूल मेवा आदि मिलेगा। मुस्लिम बन्धु पुनर्जन्म को नहीं मानते किन्तु कुरान में पुनर्जन्म का स्पष्ट वर्णन है।

नहनु खलकनाकूं ! फली लातु सहिकन। अफर ऐतुं मातु मूनून, अ अन्तुं तखलूकून हू अमनह् नुल खालिकून, नह् न कद्दर्ना बैन कुमल मौत। वमा नहनु बिमस्वकीन, अला अन तुब द दिल अयसालकूं व नुन शियकुं फी माला तालि मून। वाकिया ५७ से ६१

अर्थ–हमने तुम्हें पैदा किया, फिर तुम क्यों सच नहीं मानते। फिर क्या तुमने देखा जो वीर्य टपकाते हो, उसे आकर तुम देते हो या हम हैं आकर देने वाले, हमने तुम्हारे बीच मरने की रीति ठहराई और हमारे बस से बाहर नहीं कि हम तुम्हारा आकार बदल दें और तुम्हें ऐसे किसी रुप में खड़ा करे जिसे तुम जानते तक नहीं।

इस आयत में ईश्वर के चमत्कार को प्रकट किया गया है। यह बताया गया है कि मां के गर्भ में भ्रूण का निर्माण ईश्वर करता है, मनुष्य नहीं, ओर यह भी बताया गया हैं परमेश्वर एक ही बार नहीं बना सकता है बल्कि कई बार बना कर अलग–अलग शरीरों में भी पैदा कर सकता है।

कैफ तक फिरुन बिल्लाहि व कुन्तुं अम्रावतन फू अहयाकूं सुम्म युमि तुकुं सुम्भ युह ईकुम इलैहि तुर्जऊन [बकर २८]

अर्थ—तुम अल्लाह के साथ कुफ्र की नीति कैसे अपनाते हो जब कि तुम निर्जीव थे, उसने तुम्हें जीवित किया। फिर वही तुम्हेंमारता है। फिर वही जीवित करेगा। फिर उसी की ओर तुम लौट जाओगे।

वह अल्लाह पहलो बार पैदा करता है, फिर बार–बार पैदा करता है। कुरआन [२९–१९] क्या यह भी असत्य है यह तो स्पष्ट है पुनर्जन्म का संकेत है और देखिये—

फ काल यहुमल्लाह मूतू । सम्मह याहूँ । इन्नल्लाह लजु फजालिन अलन्नासि व ला।किन्न अक्सरन्नासि ला यश कुरुन। [बकर–२४३]

अल्लाह ने कहा मर जाओ, फिर उसने उन्हें जीवित किया। निसन्देह अल्लाह लोगों के लिए बड़ा ही अनुग्रह वाला है । परन्तु अधिकतर लोग कृतज्ञता नहीं दिखाते।

सुम्म व अस्नाकूंनि बादि मौतिकुं अल्लकुं तश कुरुन। [बकर–५६]

फिर तुम्हारे बेजाने हो जाने के पश्चात् हमने तुम्हें जिला उठाया ताकि तुम कृतज्ञता दिखाओ।

निम्न स्थल पुनर्जन्म के द्योतक हैं :-

१– सूरत मायिदा आत-६०

और जिन पर खुदा ने कोप किया और जिनको उनमें से सुअर और बन्दर बना दिया।

२– सूरत बकर आयत–६५

बस हमने उनसे कहा कि तुम अधम बन्दर बन जाओ।

३– सूरत अनयाम आयत–९६

बेशक ईश्वर ही दाने और गुठली को फाड़कर उनसे वृक्ष आदि उगाता है। वही जीवन को मौत से निकालता हैं और मौत को जीवन से। यही तो खुदा है। फिर तुम कहां बहके फिरने हो।

४– सूरत रु० ३० रु० ४ आयत–१३

अल्लाह वह है जिसने पैदा किया तुमको, फिर रिज्क दिया तुमको फिर मारेगा और फिर जिलावेगा।

नोट :–कीसानिया, हाशमिया, कलात–यह ३ मुस्लिम फिर्के अब भी पुनर्जन्म को मानते हैं।

[०७] यूरोपीय दर्शनकारों की धारणाएं–

आरफिक सम्प्रदाय वालों का विश्वास था कि मृत्यु के बाद या तो शाश्वत आनन्द की स्थिति प्राप्त होती हे जो कि हर एक के कर्मानुसार होती है। उनकी मान्यता थी कि जीवन मरण का चक्र सदा ही चलता रहता है।

जब तक कि मनुष्य तप त्याग और पवित्र जीवन की पूर्णता प्राप्त न कर ले; तब तक वह इस चक्र से छूट नहीं सकता है। आत्मा इस शरीर से पृथक तो है, पर इसका वास्तविक स्पष्टीकरण शरीर रहित अवस्था ही में वे मानते थे। और ओ बी ई. [आउट आफ बाडी एक्सपिरियन्स] शब्द उन्हीं ने चलाया। यह विचार भारतीय दृष्टिकोण के अति निकट है, यद्यपि दोनों देशों में तब कोई सम्पर्क प्रतीत यहीं होता।

(बी) कालान्तर में छठी शताब्दी ईसा पूर्व आते आते हम ग्रीक दर्शनकार पाइथगोरस द्वारा भी पुनर्जन्म के सिद्धान्त को प्रतिपादित पाते हैं। उसके विचार इस प्रकार थे।

I) आत्मा अमर है और वह भिन्न भिन्न प्रकार की चेतन योनियों में बदलती रहती है।

II) जो कुछ उत्पन्न होता है, बार बार एक चक्र के रूप में नष्टोत्पन्न प्रक्रिया में से गुजरता है। कोई नई वस्तु पैदा नहीं होती है। हर उत्पन्न वस्तु को अतएव अस्थायी और नाजुक समझना चाहिए।

(सी) ग्रीस में ही पांचवी शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य में दर्शनकार इम्पीलोसिल हुआ, जो चमत्कार भी दिखाया करता था। उसकी मान्यतायें थी कि निश्चय से कुछ आत्मायें ऐसी हैं जिन्होंने कई जन्मों में निरन्तर कोई पाप नहीं किया और वे ईश्वर के सानिध्य को प्राप्त हुई। और बाद में वे ही मसीहा, कवि, वैद्य या राजा होकर प्रकट हुई और वहां वे सम्माननीय, दुखों से रहित तथा अकष्टकर जीवन जों।

सुकरात ने जिसे ३९९ ईसा पूर्व में दंड दिया गया था, अपने मुकदमें के दौरान अदालत में भी कहा था कि जो लोग मृत्यु से बुराई समझते हैं वे गलती पर हैं। मृत्यु या तो एक स्वप्न रहित निद्रा की स्थिति है जो कि स्पष्टतया सुखद ही है और या वह स्थिति है जिसमें आत्मा शरीर से निकल कर दूसरे संसार में चली जाती है कि द्विविधा के समय वह ध्यान मग्न होकर बैठ जाता था और पूर्वगामी व्यक्तियों से सम्मति लिया करता था। सुकरात का एक उद्धरण देना समीचीन होगा।

If death had only deen the end of all the wicked world would have had a good bargain, for they would have been happily quit, not only of thair bodies, but of their own evil, together their souls, But now, in the much os as soul is manifastly immortal, there is on release or salvation from ovil, except the attainmen of the highest virtue and wisdom, —(Socrates)

यदि मृत्यु ही इस सारे तमाशे की समाप्ति होती तो यह ता क्रूर व पापियों के लिए सस्ता सौदा होता कि यहां से न केवल शान्तिपूर्वक चले गये वरन् अपने पापों की भी समाप्ति कर जाते। परन्तु चूंकि आत्मा स्पष्ट रूप से अमर है, अतः पाप से इस प्रकार मुक्ति या पलायन सम्भव नहीं है, सिवाय इसके कि पुण्य और बुद्धिमत्ता से तो कुछ प्राप्तव्य भी है। [सुकरात]

[ई] सुकरात का ही एक शिष्य प्लेटो था। प्लेटो का मत निम्न उद्धरण से स्पष्ट होता है :–

It is only the mortal part of the us dies, when each returns to earth. The pure soul herself ineribie depart to inrible world to the imortal and the rational, where she dwells in bless in company with the gods, released from the errors and follies of men, then fears their unruly hasswns and all the evils of humanity.

[PLATO]

हमारे व्यक्तित्व का पार्थिव अंश ही मरता है अर्थात् मिट्टी में मिल जाता है। शुद्ध आत्मा तो, जो कि दिखाई नहीं देती है, अदृश्य लोक को चली जाती है, जो कि स्वर्गीय और अमर हैं और जहां कि वह देवों के साथ आनन्द में मग्न हो जाती है और जहाँ कि मनुष्योचित त्रुटियों, मूर्खतायें, भय, अमोव कामनायें तथा अन्य पाप नहीं होते हैं। [प्लेटो]

सुकरात तथा प्लेटो का समकालीन अरिसटोटल पांचवी तथा चौथी शताब्दी ईसा पूर्व हुए। वे भी इन्ही सिद्धान्तों को मानते थे। अरस्तु ने तो 'औन द सोल' आत्मा के विषय पर एक पुस्तक लिखी थी। उसमें उसने मत स्थापित किया था कि चेतन शरीर में आत्मा तो उसके शाश्वत पदार्थ है उसने आत्मा को मस्तिष्क में पृथक् बताया। मस्तिष्क को आत्मा में धसा दिया जाता है। आत्मा अमर है।

[एफ] पोसीडनियस ने ईसा पूर्व की दूसरी शताब्दी में यही सब पक्ष ग्रहण किया कि मृत्यु उपरान्त आत्मा वायुमण्डल में घूमती रहती है और उनमें जो क्रूर कर्मी होती हैं, वे पृथ्वी के इर्द-गिर्द रहती हैं और पुनः पुनः जन्म लेती है जो पुण्य कर्मी होती हैं वे ऊपर के क्षेत्र में चली जातो हैं।

[जी] ईसा की प्रथम शताब्दी में स्टोईमिज्म सम्प्रदाय के प्रस्तोता जेन एवं इपोक्युरस ने एक स्थल पर स्टोईक व्यक्ति की पहचान विषयक प्रश्न के उत्तर में कहा है :-

'मुझे ऐसा एक व्यक्ति दिखाओ जो कि बिमार हो या बीमार मर रहा और उस समय प्रसन्न मुद्रा में हो जो कि दुर्भाग्य का अनुभव न कर रहा हो जो क्रोध, ईर्ष्या व द्वेष से परे न होना चाहे। ऐसा एक व्यक्ति दिखाओ जो अपने मानवीय जीवन को दैवीय में बदलना चाहता हो और जिसने प्रभु मिलन ही जीवन का उद्देश्य बनाया हो।

[एव] ईसा की तीसरी शताब्दी में प्लोटिनियल ने भी लिखा है कि एक नियत समय आता है जब आत्मा किसो सुपात्र शरीर में प्रवेश करती है और तब उसे पूर्व जन्म की सब बातें याद रहती हैं, जिसमें उसका पार्थिव वस्तुओं और विचारों से सम्पर्क हुआ था। शरीररहित अवस्था में आनन्दानुभूति होती है। स्मृति तो एक जीवन भर हो रहती है पर जीव का वास्तविक जीवन तो अजर अमर सदा रहने वाला है। अतः ज्यों ज्यों आत्मा उस अमर जीवन की ओर आकर्षित होती है त्यों त्यों वह पार्थिव सम्पर्की मित्र-बान्धवादि को भूल सी जाती है। आत्मा न तो पार्थिव है न ही पार्थिव शरीर है-पर इनका सार रूप हैं तथा कभी नष्ट न होने वाली है।

[आई] सिसरो—

जब मैं यह विचार करता हूँ कि हमारा मस्तिष्क कितना विशाल है, जिसमें अथाह भूत भरा पड़ा है तथा उसमें भविष्य विषयक अनेकानेक योजनायें और संकल्प भरे पड़े हैं जिनसे कला विज्ञान तथा आविष्कारों का सदैव उद्भव होता रहा है······तो मुझे दृढ़ विश्वास हो जाता है कि प्रकृति एवं इस सामग्री का स्रोत स्थल नाशवान नहीं है, अमर हैं।

[जे] प्रो० जे० ई० लैसिना ने जर्मनी देश में जीव की अमरता इस प्रकार प्रतिपादित की कि आत्मा एक साधारण अस्तित्व है जिसके अनेक प्रकटीकरण हो सकते हैं। परन्तु चूंकि वह निश्चिन्त अस्तित्व [Finit being] हैं अतः समयाक्रम में वह एक के बाद एक रूप प्राप्त करता जायेगा और तब इन क्रमानुसार रूपों में कोई नियम तथा प्रकारान्तर क्षमता होनी चाहिए। यह नियमन और क्षमता कर्मेन्द्रियां ही हैं। इस समय पांच कर्मेन्द्रियां हैं। परन्तु कालान्तर में अधिक भी हो सकती हैं और चूंकि प्रकृति कभी छलांग नहीं लगाती है, अतः यह अद्यतन अवस्था में धीरे-धीरे आई होगी। सो यह भी स्वयंसिद्ध है कि यह उद्भव सब कर्मेन्द्रियों वाली योनियों में होकर भी हुआ है और चूंकि प्रकृति के खजाने में अनेक वस्तुऐं और शक्तियां हैं जो कि इस युग को पांच कर्मेन्द्रियों द्वारा उपलब्ध नहीं है, अतः यह निष्कर्ष निकालना समीचीन होगा कि भविष्य में ऐसी योनि सम्भव हैं जिसमें पांच से अधिक इन्द्रियां हों यह देव योनियां हो सकती हैं।

[From chembess Encyclopedia]

[के] सथली—

मेरा यह जीवन्त तथा पुष्ट विश्वास है कि चेतना मरणोपरान्त निरन्तर बनी रहती है और यह सम्भाव्य है कि यह चेतना छोटीं योनियों में भी चली जाती है, जिनमें होकर कि हम मनुष्य योनि में आये हैं। [पृष्ठ--४५]

[एल] इमरसन

यह संसार का गुप्त सिद्धान्त है कि सारी बस्तुओं का अंश बना रहता है। [SUBSIST करता है]। उनका नाश नहीं होता। वे केवल एक

स्थिति से हमारी दृष्टि से रिटायर (ओझल) हो जाती है और फिर वापस (रिटर्न) हो जाती है ।

हम स्वभावतया कई अनुभवों पर जीवित है ये अनुभव प्रकट में अपना मूल्य नहीं बताते पर जन्म जन्मान्तर में हम उनमें रहकर या तो उन्हें पचा जाते हैं या उन्हें समाप्त कर पाते हैं। (पृष्ठ–१४५)

(द रिलीजन आफ साईन्स–शिकागो
विज्ञान का धर्म–पुस्तक से)

बृहत् के विकास में हमारा जावन लम्बा रूप परिवर्तन की स्थिति है। और आत्मा भूतकाल की गौरवपूर्ण स्थिति है । और विकाश क्रम में यह पीढ़ी दर पीढ़ी जन्मों में उच्चततर होतो जावेगी। का यह नैरन्तर्य अनुभवों से सिद्ध किया जा सकता है । यदि यह नैरन्तर्य न होता तो विकास का सिद्धान्त सिद्ध ही नहीं हाता विकास सम्भवतः इसी लिए है कि हमांरे पूर्वजों की आतमा इसमें आती रहो है और जाती रहेगी।

मनुष्य की तुलना किताब से की जा सकतो है। किताब का मूल्य इसमें हैं कि उसको विषय सूची क्या है ? परमात्मा पुस्तक के संस्करण प्रकाशित करता जाता है। और जब एक प्रति नष्ट जाती है, तो पुस्तक की आत्मा नहीं मरती । उसकी पुरानी विषय सूची संशोधनों के साथ अगले संस्करण में प्रकट होती है। नई जिल्द में परिशुद्ध की हुई और सम्भवतः अधिक पृष्टों में प्रकट होती है–जन्म पुनर्जन्म में होता रहता है । (पृष्ठ ५ १४६)

(एम) **Life is state of probation**
Butlar in Analogy of Religion

The general doctrine of religion that our present life is a state of Probation for a future one, comprehends under it several particular things, distinct from each other, But the first and most

common meanihg of it seems to be that on future interest is now depending and depending upon ourselves, that we have scop and oppurtunity here, for that had and good behaviour which will reward and puuish hereafter, together with temptations to one, as well as inducment of reason to the other.

[ऐन] मृत्यु पर कवि-सम्राट शैक्सपियर के विचार भी ऐसे ही हैं—

I

Although Death walks besides us on life's Road,
A dim by stanper at the body's start
And a last judgement on men's futile works,
Other is the riddle of its ambigous face :
Death in a stair, a door a stumbling stride
The soul must take to cross from birth to birth,
A grey defeat pragnant with victory
A whip to lash us towards our deathless state.

यद्यपि जीवन पथ पर मृत्यु हमारे साथ ही चलती है मानो यात्रा के प्रारम्भ से ही वह हमारी सहयात्रिणी है और मनुष्य के कर्मों का वह मानो न्यायपूर्ण वक्तव्य है परन्तु उसका द्वि अर्थक चेहरा आसानी से समझना कठिन है।

भृत्यु एक सीढ़ी है, एक दरवाजा है। इसमें घुसना ही पड़ता है जन्म-जन्मान्तर की यात्रा पार करने के लिये। मृत्यु के समय हार हुई दीखती है, पर उस हार में जीत छिपी होती है जोकि बरबस अमरता की और ले जाती है।

Poor soul, the centre of my sinful earth,
Fool'd by these rebel powers that thee aray.
Why dost thou pine within and suffer dearth
Painting thy outward walls so costly gay ?
Why so large cost. having so short a lease,
Dost thou upon thy fading mansion spend ?

Shall worms, inheritors of this ecess,
Cost up thy charge ? Is this thy body end ?
Then, soul, live thou upon thy servent's loss,
And let that pine to aggravate thy store:
Buy terms divine in selling hours of dross :
Within be fed, without be rich no more :
So shalt thou reed on Death
That feed on men,
And Death once dead, there's no more dying then

2- The soul on eaɹth is an immortal guest :
Compelled to starve at an unreal feast :
A spark which upward tends by nature force :
A stream divertee frOm its parent source ;
A drop dissevered from the boundlese sea :
A moment, parted from eternity :
A pilgrim panting for rest to come :
An exile anxious for his native home : Hannah Mor

3- Whatsoever, that be within us that feels, thinks desires and animates, is something celestial, divinee and consequently imperishable. —[Aristotle]

4- I am fully cynvinced thatt he soul is indestructibl and that its activity will continue through enternity It is like the sun which to our eyes seems to set at night but it has in reality only gone to diffuse its light elsewhere. —[Goetthe]

5- It is the soul itself which sees and hears and not these parts which are as it were but windaws tothe soul. —[Cicero]

6– Our birth is but a sleep and a forgetting.
The soul that rises within us over life's star
Hath had elsewhere its setilng
And Cometh from a far
Not in entire forgetfulness
And not in utter nakedness
But trailing clouds of glory de we come
From God who is our home. —[Wordsworth]

7– It is divinits that stirs within us. tt is heaven itself that points out an hereafter, and intimates eternity to man. —[Addison]

8– There is, I know not how in the minds of men. a certain presage, as it were, of e future existence and this partakes in deepest root, and is most discoverable in the greatest geniuses and most exalted souls.

—[Cicero]

9– If there were no future life, our souls would not thirst for it. —[Rcther]

10– Without a beleif in personal immortality religion is like an archresting on one pillar or like a bridge edding in an abyss, —[Max Muller]

11– It is true, it is certain, man though dead retains part of himsefl, the immortal mind remains. —[Homer[

12– I died as plant and became animal,
I died as animal and I was a men,
Why should I fear when was
Life lean by dying ?
Yet once more I shall die as man to soar.

With angles blest, but even from engelhood
I must pass on ; all except God does perish.
—[John Laird on This mind Cosmology]

13- Had I no other proof of he immortality of the soul than the oppression of just and the triumph of the wicked in this world, this alone would prevent my havihg the least doubt of it ; so shocking a discord admist a general harmony of things would make me naturally to look for a cause ; I should say to myself we do not cease to exist with this life; everything reassumes its order after death. —[Rousseau]

14– Where are Shakespeare's imaginations, Bacon's learning, Galileo's dream ? Where is the sweet fancy of Siddey, the airy spirit of fletcher and Milton's thought severe ? Methinks such things not die add dissipate, when a hair can live for centuries and a brick of Egypt will last three thousand years. I am content to believe that the mind of man survives, somehow or other his clay. ...[Barry Cornwall]

15–Can it be? Matter immortal ? And shall spirit die? above the nobler shall less nobler rise ? Shall man alone, for whom all else revives, no resurrection know ? Shall man alone, imperial man, be sown in barren ground privileged than grainon whice he feeds ?
—[Young]

16– Our souls are deathless add ever ; when they have left their former s eat, they live in new abodes and dwell in the bodies that have received them.
—[Ovid]

17. ! hold that when a man dies
His soul returns again to earth ;
Arrayed in some new flesh disguise
Another mother gives him birth
With sturdier limbs and brighter brain
The old soul takes the road again. —[John Masefield]

18. Death but supplies the oil for the inextinguishable lamp of life. —[Coleridge]

19. Death brings us again to our friends They are waiting for us and we shall not be lone. They have gone before us and are like the angles to heaven. They stand upon the borders to the grave to welcome us with the countenance of affection, which they wore on earth, yet more lovely, more radient, more spiritual —[Longfellow]

20. Death is the beginning of another life

I can not avoid the thought I was dead before I was born, and that at my earthly death I shall return to my previous state of existence. —) Tolstoy]

21. Living is death ; dying is life: On this side of the grave we are exlies,on that citizens; on this side orphans' on that children on this side captives, on that freemen ; oe this sided isguised, unknown, on that disclosedand proclaimed, as the sons of God. —[H. W. Beacher]

ऐतिह्य : अन्य देशों के पुनर्जन्म सम्बन्धी विश्वास ।

१. मिश्र देश के विश्वास—

(१) पुराने मिश्रवासियों का विश्वास था कि पृथ्वी पर से शुद्ध देवगण और आत्मायें (Spirits) पृथ्वा निवासी भूत प्रेतों के विद्रोह के कारण पृथ्वी से चली गई । परन्तु भूत प्रेतों की शुद्धि हेतु देवों ने पार्थिव शरीरयुक्त मानव की रचना की और पार्थिव शरीरधारियों तथा इन राक्षसवत् भूतात्माओं के संयोजन से हमारी मनुष्य जाति निसृत हुई है । इसी मूल धारणा में मिश्रवासियों के रीति-रिवाज और रहन- सहन ढाले गये हैं । मृत्यु के उपरान्त ओसीसिदेव के महल में फैसले के दिन आत्माओं में यहीं जांचा जाता है कि राक्षसीय भूतात्मायें यदि शुद्ध हो पाई है या नहीं,

यदि परिशुद्धता दृष्टिगोचर नहीं होती तो इन आत्माओं को शुद्धिकरण हेतु पुनः संसार में वापिस कर दिया जाता है। और इस वापसी पर पूर्व जन्म के कमानुसार उन्हें मनुष्य, पशु या पौधों में जन्म दिया जाता है। और जिनमें परिशुद्धता दृष्ट होती है उन्हें देवों के विभिन्न लोकों के रास्ते सर्वोच्च स्थान पर भेजा जाता हैं जहां "फतह" तथा "नाथ" नामक देव प्रमुखों का निवास स्थान है।

इसकी तुलना हिन्दुओं के अद्वैत पन्थ की मान्यता से की जा सकती है, जिसके अनुसार मायावश या लीला हेतु परमात्मा का एक अंश आत्मा बन जाता हैं। माया की विस्मृति तक वह जन्म जन्मान्तर में घूमता रहता हैं और जब उसे अपने ईश्वरांश होने की सुध आती है तब वह पहिले जीवनमुक्त और मरणोपरान्त पूर्णमुक्त होकर उसी परमआत्मा में विलीन हो जाता हैं, जहां से कि उसका आदि उद्भव था।

(२) मिश्र की मान्यता को एक और प्रकार से भी समझाया गया है।
मान्यतायें हैं कि मानव शरीर से पृथक ही उसकी आत्मा होती है जो शरीर नाश के उपरान्त भी बनी रहती है। इस आत्मा के दो भाग होते हैं :- का तथा बा। का तो मानो अदृश्य ईश्वर मय सत्ता है, और मरने के बाद उस मनुष्य की मूर्ति में जा निवास करती हैं, यह मूर्ति या चित्र उसकी कब्र में स्थापित कर दिया जाता है। और उस का के उपयोग हेतु कब्र में उसकी पसन्द का भोजन, मनोरंजन व खेल का सानान, फर्नीचर, पढ़ने की सामग्री और यहां तक कि तेल व साबुन भी रख दिया जाता है।

जो बा भाग है वह स्वर्ग की ओर जाता है। कब्रों पर मानव मुखी पक्षी उड़ते दिखाई गये हैं, वे इस बा के स्वर्गारोहण का संकेत करते हैं। बा कभी-कभी स्वर्ग से आकर का से भेंट करने आता है ताकि उसके साथ उन व्यजनों का उपभोग करे।

[पत्रिका Two world के फरवरी ८५ अंक में प्रकाशित M. H. Testn who invented the immortal soul से अनुदित प्रकाशन स्थान 20–Earlham London (WC 2 H 9 LW)

(B) आधुनिक :

मिश्र देशवासियों का विश्वास था कि मृत व्यक्ति की आत्मा ओसिरिस

नामक देव द्वारा फैसले के दिन (Day of Judgement के निर्णय के बाद पृथ्वी पर पुन: वापिस आकर अपने पूर्वजन्म में अर्जित व्यवहारों के अनुकूल शरीर में पुन: जन्म लेगी। और इसो मान्यता के कारण वे शानदार कब्रों में मृत व्यक्ति के शरीर को संभालकर तथा शृंगार करके रख देते थे कि वह आत्मा उसी शरीर की ओर आकर्षित हो। यह ईसा से चतुर्थ शताब्दी पूर्व तक प्रमुख रूप से होता रहा है। द्ष्टव्य है कि मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच एक अन्तराल माना ही है।

अमेरिकन इण्डियन लोग परमशक्ति को एक तथा सारे जीवन का स्रोत मानते थे। तथा आत्मा को चिर तथा अनन्त मानते थे। उनका आदि देव सूर्य था, तथा वे अपने आदि राजा को सूर्य से उत्पन्न मानते थे। (देखें एन-साईक्लोपीडिया अमेरिकाना भाग। [पृष्ट ४३-४४]

यह दोनों विचार भारतीय वैदिक दर्शन जैसे ही हैं क्योंकि यहां भी प्रथम राजा मनु को सूर्य-पुत्र माना है। और सृष्टि की उत्पत्ति सूर्य से है। [सूर्यात्मा जगतस्थुषश्च]

मेडागास्कर में यह विश्वास इस प्रकार प्रगट है कि मरणासन्न व्यक्ति की झोंपड़ीं में एक छेद कर देते हैं ताकि आत्मा उसमें से होकर ऊपर जाने का प्रयत्न करे और वे उसे पकड़ने का अभिनय करते हैं और उसे दूसरे मरणासन्न व्यक्ति के शरीर में फूंक देते है। अर्थात एक शरीर में कई आत्माएें रह सकती हैं। यह परकाया प्रवेश किसी नैतिक या अन्य कार्य--कारण सम्बन्ध से अनुबन्धित न होकर यों ही होता रहता है। अत: वे मृत्यु के प्रति उदासीन से रहते हैं। और तभी West Indies प्रान्त में लोग प्राय: फांसी लगा लेते हैं। इस विश्वास में कि उनको आत्मा अन्य देश प्रदेश में चली जाकर सुख-पूर्वक रह सकेगी।

जर्मनी :-तथा उससे सटे ब्रिटेन में एक दन्तकथा प्रचलित है कि आत्मा स्वर्ग में सुरक्षित स्थान में प्रवेश के पहिले थोड़े समय के लिये अन्य रूप धारण करतीहै किम्वा पार्थिव वस्तुओं में रुकीं रहती है। यह फूल पौधे या किसी पक्षी के शरीर में रुकी रहती है ओर यदि सोते सोते मृत्यु होती है तो सांप या चूहा के

शरीर में जा ठहरती है। परन्तु तोते के शरीप में जा ठहरने की बहुत सी कथाएं वहां प्रचलित हैं तथा कब्रों पर तोते के चित्रांकित पाये गये हैं। एक दन्तकथा यों है कि डाकू मादेज ने जब एक सेव के वृक्ष के नीचे स्वयं द्वारा कत्ल किये सम्भ्रान्तों के नाम स्वीकार किये तो हरबार एक सेव तोता बनकर उड़ा। क्योंकि मादेज ने अपने पिता का वध करना स्वीकार नहीं किया। पर जब अन्त में वह वध भी स्वीकार कर लिया तो अन्तिम सेव भी एक भूरे तौते में बदला और तोता उड़ गया।

मैक्सिको—वे यह मान्यता रखते हैं कि आत्मा का स्रोत दैवीय होने से संसार मे कलुषित होकर फिर शुद्ध होने हेतु जन्म पुनर्जन्म ग्रहण करता है। देव द्वय ओमे टली (Ometeuetli) तथा औनेसुहाटल (Omecihautl) स्वर्ग में मिलकर आत्मा की रचना करते हैं। दुनियां में जन्म लेकर यह आत्मा या तो स्वर्ग वापिसी हेतु प्रयत्न करेगी या नरक हेतु बीच में लटकी रहेगी। उच्चतम स्थान सूर्यलोक में हुइटजिलोपौटश्ली देव के साथ रहने का है जहां सुख-सुविधाएं उपलब्ध हैं। परन्तु यह परम पद तो धर्मयुद्ध में मरे योद्धाओं को मिलता है, या उन्हें जो जेल में मरते हों या जो स्त्रियां प्रसूतावस्था में मर जाती हों, उन्हें मिलता है। जो क्रूर पुरुष नहीं हैं उन्हें मध्यम स्थिति मिलती है। जहां साधारण सुख ही प्राप्त होते हैं। क्रूर पुरुष तृतीय अधोलोक को जाते हैं। परन्तु मध्यलोक वालों को उनकी इच्छानुसार पृथ्वीलोक भी भेजकर परम पद को प्राप्त करने का एक चान्स और दिया जा सकता है। द्रटु लोगों का विश्वास इनकी मृत्यु उपरान्त कुछ ठहर कर पुनर्जन्म प्राप्त होने में आस्था थी। उनकी धार्मिक रीति रिवाजों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पुनर्जन्म आत्मा के शुद्धिकरण द्वारा अनन्त जीवन प्राप्ति के प्रयासों हेतु माना गया था।

अफ्रीका—महाद्वीप की आदिवासी जातियों में यह विश्वास हैं कि एक चोला छोड़ने के तुरन्त बाद एक दूसरा मालिक तेजी से तलाश करती है और यदि आवश्यकता पड़ी तो पशु के शरीर में ही प्रवेश कर जाती है। कुछ नीग्रो प्रभृति जातियां यह मानती हैं कि आत्मा मरणोपरन्त अपने निकटतम पूर्व जन्म के सम्बन्धी या उसी के समान हैसियत वाले शरीर में घुमती है, और इसलिये वे अपने मृत पारिवारिक जनों की कब्र अपने घरों के निकट ही

बनाते हैं ताकि आत्मा को दूसरा मालिक तलाश करने में कष्ट न हो और यदि तुरन्त कोई गर्भ उपलब्ध न हो तो वहां प्रतीक्षा करती रहे और इस हेतु वे कब्र पर दूध, शराब तथा अन्य खाद्य पदार्थ चढ़ाते रहते हैं। और वे उपयुक्त समय पर कब्र में छेद कर देते हैं ताकि आत्मा उसमें से आसानी से निकल आवे।

उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका–की जन जातियों में इतनी और परम्परा प्रचलित है कि वे किसी पशु या विजित व्यक्ति की बलि देते हैं और उसका खून कब्र के उन छेदों में डालते हैं ताकि प्रतीक्षा में मग्न कब्र में दबी आत्मा बहां बनी रहे। माटम्बा क्षेत्र में तो विधवाएं अपने मृत प्रति की आत्मा से भयातुर होकर लाश को पानी में फेंक देती हैं कि कहीं उनकी आत्मा उन्हीं से आकर जकड़ जावे।

उत्तरी अमेरिका का अलगोनकवुन (Algonquin) प्रान्त–में यह मान्यता है कि विशेष रूप से बीमार होकर मरे छोटे बच्चों की आत्मा पुनर्जन्म ग्रहण करती ही है। अतः वे उन्हें निकटस्थ मार्ग पर तुरन्त दफना देते हैं ताकि उनकी आत्मा इस मार्ग से निकलती माताओं में प्रवेश करके वहीं पुनः जन्म ले।
(Brebeuf in Rel, des, Jes densla Novelle France 1635 P. 130)

ग्रीनलैंड—में यह मान्यता है कि वृद्धजनों अथवा दयालु व्यक्तियों की आत्मायें शरीर त्याग कर बच्चों के शरीर में प्रवेश करती हैं। और इसीलिये बच्चों की आकृति अपने मां बाप जैसी होती है।

अमेरिका के धुर उत्तरी भाग में बसे कोलोशेज लोगों में यह भी मान्यता है कि माता स्वप्न में यह देख लेती है कि किस खानदानी बुजुर्ग की आत्मा आने वाली हैं और तद्रुप ही बच्चे की आकृति होगी।
(Bastian "Psychoiogy" Page–28)

लापलैंड—में लेपा लोगों की भी यही मान्यता है कि स्वप्न में माता को बता दिया जाता है कि वह होने वाले पुत्र का नाम क्या रखे। यह स्वप्नादेश

उसी मृत बुजुर्ग की आत्मा देती हैं जो उसके गर्भ में आ विराजने वाला है।
(Klemm "Culturgeschiche" Vol. III Page-77)

न्यूजीलैंड—में पुरोहित नवजात शिशु के जन्म पर उसके मृत पितरों के नाम उच्चारण करता जाता है और जिस नामोच्चारण पर बच्चा खांसता या रोने लगता है, माना जाता है कि बच्चे ने वही नाम अपने लिये चुना है। ठीक इसका उल्टा रूस की किरमिश जाति में होता है कि बच्चों को हिला-डुला कर रुलाते हैं और जिन बुजुर्ग के नामोच्चारण पर वह चुप हो जाये, वही नाम उसका रखते हैं। माना जाता है कि वही आत्मा उसमें आ गई है।

इण्डोनेयिा का बाली द्वीप—वैसे तो बाली देश में सभी के अन्त्येष्टि संस्कार कुछ न कुछ धूमधाम से ही मनाये जाते हैं किन्तु कोई राजा अथवा राजघराने का व्यक्ति मर जाता है तो उसके संस्कार साल भर चलते हैं।

शवयात्रा वाले दिन हर व्यक्ति राजमहल की ओर आता है। पहले एक कोने में पूर्ण साजसज्जा और विधि विधान के साथ शव रखा जाता है। महल के बाहर चार पहियों पर बना कर एक बहुत बड़ा टावर बनाते हैं। और ग्यारह मंजिलों तक का होता है। टावर के साथ बांसों का एक बड़ा जीना था जिस पर से होकर शव श्मशाम यात्रा के लिए टावर पर रखे जाते हैं। टावर के नीचे वाले खण्ड में अनेक पिण्डों से युक्त फल-फूल, चावल, गोश्त आदि नाना प्रकार की वस्तुएं रखते हैं। पास ही कागज या दफ्ती आदि की बनी दो बड़ी काली चमकीली गायें रखते हैं।

पहले सुंदर और सजी संवरी नारियां तथा कुछ पुरुष अनेक प्रकार के वस्त्र अलंकार आदि लेकर निकलते हैं और इन वस्तुओं को धीरे-धीरे टावर की ऊपरी मंजिलों में पहुंचाते हैं। ये स्त्री-पुरुष अपने साथ छत्र और काले झंडे भी रखते हैं। ब्राह्मण मंत्रोच्चारण करते हैं, इसके पश्चात् स्त्रियां नाना प्रकार के खाद्य पदार्थ स्वर्ण और रजत पात्रों में तथा गद्दा बिछौना लेकर आती हैं।

इसके पश्चात क्रमशः कपड़े के बने दो काले नाग होते हैं जो बीच से कटे होते हैं। नाग को पुरोहित काटता है। नाग के पीछे एक बालक सिंहासन पर

बैठता है। उसके हाथों में पवित्र जल भरा कलश होता है। यह पवित्र जल पुरोहित बड़े विधि विधान पूर्वक लाते हैं।

इन नारियों के पीछे शव सफेद वस्त्र से ढके हुए लाए जाते हैं और वे टावर पर ऊपर पहुंचा दिये जाते हैं। गाजे-बाजे के साथ शवयात्रा होती है। अन्त में उक्त कागजी गायों के शरीर में रखकर शवों को जला दिया जाता है।

आर्किटिक क्षेत्र—के ऐस्किमो लोगों में यात्रा करते समय एक यात्रो ने देखा कि एक विधवा जो कि केवल चिड़ियों के मांस पर निर्वाह करती थी पर Walrus पक्षी का मांस नहीं खाती थी क्योंकि उसके पति आनोकोक ने मरते कह दिया था कि वह मर कर उसी पक्षी की योनि में जन्म लेगा।

(Haye's Arotic Boat Journey P. 198)

ब्राजील—में बकान्नास जाति के लोग कहते है कि वीर पुरुषों को आत्मायें मर कर सुन्दर पक्षी बनती हैं जो कि फलाहार ही करती हैं, परन्तु cowards व्यक्तियों की आत्मायें सर्प योनि में जाती हैं।

(Martius "Ethnog : America" Vol. I P. 602)

बलगेरिया—में विश्वास है कि पड़ोसी देश के निवासी तुर्क जिसने सुअर का मांस नहीं खाया हो, वह मर कर जंगली रीछ वनता है।

(St. Clair & Brophy : Bulgaria P. 57 & C)

यहां पर शब्द आप्त और एतिह्य एवं अनुमोदित साधारण प्रतिज्ञा समाप्त करते हैं। दूसरे खण्ड में इन तीनों मान्यताओं को प्रत्यक्ष तथा तर्क से सिद्ध करेंगे—

१. कि आत्मा अनश्वर है और शरीर से पृथक् है।
२. कि और लोक होते हैं जिनमें जीवों का आगमन होता है।
३. कि यह आवागमन कर्म फल के विशाल नियम से परिवेष्टित है।

तीन विभिन्न प्रकार की मरणोत्तर स्थितियों का विवरण ऋग्वेद १०/६३ में भी आता हैं।

१. येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिवर्हाः।
उक्थशुष्मान वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्यां अनुम ा स्वस्तये ॥३॥

वे जिनको मधुमत् पय: माता और अदिति अद्रिवर्हा : पिता सिंचन प्रक्रिया से। [पिन्वते] उत्पन्न करते हैं और अतएव जो उक्थशुष्मान (उन्नतशील) वृषभरान [धर्मजीवी], स्वप्नस: [शुभकर्मी] होते हैं।

२, ३ नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा

बृहद् देवासो अमृतत्व मानुष:
ज्योतरिथा अहिमाया अनागसो
दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥४॥

जौ अनिमिषिन्त: [सदा] नृचक्षस: [नेतृत्व करते हुए], अर्हणा [पूज्य] देवास:(देव)हैं वे वृहत् अमृतत्व को (आनशु:)प्राप्त करते हैं। यह संभवत: तथा कथित मुक्त अवस्था है। वे जो ज्योतीरथा: (ज्योति मार्ग के पथिक) अहिमाया: (अहिंसक) तथा अनागस: (पापरहित) हैं वे स्वस्ति के लिये दिव: (दिव्य) वर्ष्माणं (स्थान) पर वसते (जा बसते हैं) यह शायद तथा कथित स्वर्ग या यमालय, यम सदन है। आगे चौथी ऋचा (सम्राजो...... ... दिविक्षयम........ स्वस्तये) तथा पांचवी को व: स्तोमं राधति......तुविजाता स्वस्तये में बताया हैं कि यज्ञादि इष्ट कर्म करने वाले इन क्रम १ तथा क्रम ३ वाली स्थिति को प्राप्त करते हैं। इनमें यदृच्छा भोग पदार्थ प्राप्त होते हैं। इच्छा होते ही भोग प्राप्त हो जाने की स्थापना की पुष्टि में हम एक पश्चिमी विचारक का तर्क प्रस्तुत करते हैं।

What the other world is like ?

It is reasonable to assume the presence of order wherever we go in universe. This implies thnt a thread of continuity runs through the whole system, sustaining and unifying its contituent parts. Order and continuity are therefore the fundamental principles of the universe.

Invoking the principle of continuity, we are justified in supposing that the two worlds form a single continuous realm of cxperience. Since in this world, we describe a known object with compassion to a pre–existing idea in our mind, all knowledge about anything is subjective. Therefore, in next world too the knowledge should be subjective. World is our idea therefore when we want to create something an idea comes in onr mind and with external energy being impigned by it an object is created So in other world anything should be capable of creation by marely having an idea. The soul, then can create, whatever it likes and can enjoy it. The other world is purely subjective.

(W. Hunter Machintoss–in Two world fortnightly January 1985 issue)

अगले तीन अध्यायों में हम तीन साधारण प्रतिज्ञाओं पर विचार करेंगे।

अध्याय २

जीव की अमरता के सिद्धान्त की पुष्टि

२०१- मृत्यु पर विजय प्राप्त करना [भौतिक प्रक्रियाओं से अमर बने रहना।

मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के दो मार्ग कहे गये हैं। एक तो आध्यात्मिक जो युग युग से कहा गया है और शब्द-विपर्यय लगता है क्योंकि वह अमरता मरणोपरान्त मिलेगी। पर प्रत्यक्षदर्शी वैज्ञानिकों ने शरीर की कोषिकाओं के क्षय को रोककर तथा Elixir of Lif॰ [संजीवन बूटी] तलाश करके अनन्तकाल तक इप शरीर को बनाये रखने के उपक्र,म किये हैं। ओषधि विज्ञान ने मानव जीवन को निश्चित ही बढ़ाया है, अतः बढ़ने की इस प्रवृत्ति को आगे बढ़ाने के यत्न किया जाना स्वाभाविक ही है।

अरनैस्ट बेकर ने फ्रैंड, जंग, कीकरगार्ड औटोरैन्फ, टिलिच तथा विलियम जेम्स प्रभृति ख्यातनामा दार्शनिकों का मत अपनी पुस्तक Denial of Death [मृत्यु की अपरिहयंता] में उदधृत किया है। वह कहता है कि हर मनुष्य की महत्वाकांक्षा पहिले तो Hero बनने की होती है और जब इसमें सफल नहीं होता, तो नेता बनने की होती है। मनुष्य में मृत्यु का डर व्याप्त रहता है। वर्ना वह अमर हो सकता है।

अरनेस्ट बेकर ने फ्रैंड, जय, कीकरगाई, औटोरेन्फ, टिलिच तथा विलियम जेम्स प्रभृति ख्यातनामा दार्शनिकों का मत अपनी पुस्तक Denial or Death मृत्यु की अपरिहायंता में उदधृत किया है। वह कहता है कि हर मनुष्य की महत्वाकांक्षा पहिले तो Hero बनने की होता है। मनुष्य में मृत्यु का डर व्याप्त रहता है। अन्यथा वह अमर हो सकता है।

ए. डब्लू. मोमेरी ने अपनी पुस्तक Immortaity (अमरता) में एक चित्र खींचा है कि मानों मनुष्य अमर होता, तो पृथ्वी पर पैर रखने को जगह नहीं बचती और न उनके लायक खाद्य पदार्थ होते। हर २५ वर्ष बाद आदमी की सन्तानों की संख्या दुगुनी हो जाती और शरीरों के गट्ठर

पृथ्वी को ढक लेते। निश्चय ही सृष्टि–कर्ता का सृष्टि रचना में यह प्रयोजन नहीं हो सकता। और तब हम निश्चय कहते कि आदम ने पाप करके जो मृत्यु का आवाहन किया, वह उसकी मनुष्य जाति पर परम अनुकम्पा थी।

जेम्स फ्रेजर ने लिखा हैं कि प्रारम्भ से ही मानव ने मृत्यु को अप्राकृतिक या शैतान का श्राप माना है। अतः उससे बचने के धार्मिक, सास्कृतिक तथा औषधीय प्रयत्न किये गये हैं। और दीर्घ जीवन हो क्या जिसमें जवानी न हो। जवान बने रहने के प्रयत्नों को जानना भो दिलचस्प होगा।

१. चीन में द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में खानदान का सम्राट हानटी मृत्यु और बुढ़ापे से बचने के लिये एक ऊंचे पर्वत पर चढ़ा जहां से अमर आत्माओं का द्वीप दिखाई देवे। वहां उसने बहुत से पूजा व अभिचार किये, परन्तु कुछ भी उपलब्ध न हुआ और वह दिवंगत हो गया। मरते, समय उसने कहा कि मुझे बेईमान जादूगरों ने खिलौना सा बनाकर धोखा दिया। कहीं कोई अमर व्यक्ति नहीं है।

२. सिल्वर स्टोन ने लिखा है कि पुरा काल में सीरिया के लोग रक्त–पान और रक्त में स्नान करते थे और रोमन लोग युद्ध क्षेत्र में वे तलवार से बहाये खून को पी जाते थे। कई शताब्दियों के बाद भी विश्वास बना है कि शरीर में बाह्य पक्त सुई द्वारा पहुंचाने से गया यौवन वापिस आ जाता हैं। सन् १४९२ में पोप इन्नासेन्ट VII से तीन युवकों का खून अपनी नसों में भरवाया ताकि मृत्यु से बच सके,परन्तु उसके फलस्वरूप वह तो मृत्यु को तुरन्त प्राप्त हुआ।

३. एक भाव बहुत से जल स्रोतों में स्नान करने से सदा यौवन बनाये रखने का भी रहा है। सोलहवीं शताब्दी में स्पेन का नाविक पौन्से डो लिओन फ्लोरिडा के हजारों चश्मों में इसी हेतु स्नान किया, पर कुछ फल नहीं निकला।

४, उन्नीसवीं शताब्दी में नाथानील हाथ्रोन ने एक कहानो इस विषय में लिखो। नायक एक डाक्टर एक यौवन के फव्वारे से एक लोटा जल प्राप्त करता है और अपने मित्र तीन बृद्ध तथा एक बृद्धा को पिलाता हैं।

वे पुनः यौवन प्राप्त करके काम से उद्विग्न हो उठते हैं। तीनों पुरुष चौथी नवयौवना के हेतु एक दूसरे का वध करने को उद्यत हो जाते हैं। परन्तु उस जल का प्रभाव बहुत काल तक नहीं रहता और वे अपनी कुर्सी पर लुढ़क कर गिर जाते हैं।

५. उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में ७० वर्षीय प्रोफेसर ब्राउन ने कुत्ते और सुअर का लिंग का रस निचोड़ कर अपने शरीर में सूई से प्रविष्ट किया और फ्रांस की साइन्स सोसाइटी के सामने घोषणा की कि अब वह सयौवन हो गया है। बस उपस्थित वृद्ध जनो में बिजली सी लहर दौड़ गई। परन्तु उनकी परिषद ने कहा कि प्रोफेसर मिर्गी के प्रभाव में बोलता लगता है और सठिया गया है। वैसे परीक्षण किसी और पुरुष में वे ही लक्षण उपलब्ध नहीं करा सके। पांच वर्ष बाद प्रोफेसर एक दौरे के बाद मर गया।

६. एक रूसी वैज्ञानिक सर्जवोरोलोफ ने फ्रान्स में विज्ञापन देकर दो मनुष्यों के लिंग प्राप्त करने का प्रयास किया ओर काई प्रस्ताव न पाकर चिम्पैंजो और बन्दरों से वे शरीरावयव प्राप्त करके कुछ परीक्षण किया और यौवन पुनः प्राप्त करने का दावा किया। अनेकों आशावान वृद्धजन ५००० डालर की फीस देते हुए भी अंग लगवाने आये। परन्तु किसी को भी यौवन वापिस नहीं आया। स्वयं उसको भी नहीं।

यौवन को वापिस न दिला सकने पर वैज्ञानिकों ने कहा कि हम चिर-जीवन को प्राप्त कराने में शायद सफल हो जावें। सन् १९६७ में आगस्टस किन्जैल ने दावा किया कि हम ऐसी औषधियां खोज लेंगे कि सिवाय दुर्घटना के और किसी कारण से मृत्यु न हो। आथर क्लार्क ने कहा कि सन् २१०० तक हम जीवन के साधन खोज ही लेगे। यही बात सी. डब्यू. एटिन्गर ने कही। सन् १९६८ में रूसी वैज्ञानिक वासिली कुपरेविच ने कहा कि मृत्यु तो मनुष्य की प्रकृति के ही विरुद्ध है। मनुष्य मरता इसलिये है कि वह अन्य पशु पक्षियों को मरते देखता रहा है और इस बात पर विश्वास करने लगता है कि उसे मरना ही चाहिये। यही बात विलियम कारलोस ने कही थी उसे मण्ड किग हैले ने जो रोयल सोसाइटी का फैलो था,

सन् १९७० में कहा था कि जीव-विज्ञान के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि बुढ़ापा और मृत्यु अवश्यम्भावी नहीं हैं। अमेरिका में मृत्युयें क्रमश: कैन्सर हृदय रोग, मधुमेह तथा दुर्घटना के कारण उत्तरोत्तर कम क्रम में होती है। और कैन्सर पर तो विजय बहुत निकट हैं। परन्तु वहां मानसिक रोगियों की अब संख्या बढ़ने लगी है।मानसिक ह्रास केलिये तो व स्तविक कम्प्यूटर बनाने लगे हैं, जिनका जीवन काल अनन्त होगा। तथा पूर्णतया सन्तुष्ट जीवन अमर हो सकेगा, ऐसा कुछ भी मनोवैज्ञानिक मानते हैं। परन्तु वास्तव में इच्छायें पूर्णतया कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकतीं। एक इच्छा दूसरी को जन्म देती हैं। सब इच्छायें तृप्त होने पर मृत्यु की भी स्वाभाविक इच्छा हो सकती है ऐसा रूसी मनोवैज्ञानिक इलिया मेटचनिकोव ने अध्ययन से सिद्ध किया है। अत: यह चिन्तन भी अमरता प्रदान नहीं करता।

स्पष्ट है कि यदि औषध विज्ञान या मनौवैज्ञानिक की पद्धति अमर रहने के फारमूले ढूंढ भी लें, तो प्रकृति के शस्त्रागार में अनेक तीर भरे हैं, जिनका उपयोग होगा।

२.०२ मृत्यु पर वियोग जन्य दुख—

मरते समय व्यक्ति की स्थिति बृहदारण्यक उपनिषद [४-४-२] में वर्णित है। आंख, कान, नाक जिह्वा आदि गोलकों की अध्यक्ष जो पृथक् पृथक् इन्द्रियां हैं, वे काम करना बन्द कर देती हैं। वे सूक्ष्म शरीर में लय हो जाती हैं। तब आप न कुछ बोल सकते हैं, न देख सकने हैं और न सुन सकते हैं, यद्यपि जीवन की चेतना बनी रही होती है। हां प्राण रुक रुक कर काम करते रहते हैं। और तब हृदय के ऊपरी छोर में प्रकाश होता है। और तब सम्पूर्ण जीवन की रील बुद्धि की स्मृति में क्रमश: आती है।

बृहदा० ४-३-३४ शांकर भाष्य में पाछे कहा था कि अन्तिम प्रयारण के समय सब इन्द्रितां इकट्ठी हो जाती हैं तथा साथ जाने को ठीक उसी प्रकार जैमे पुलिस व मजिस्ट्रेट आदि विदा होते हुए राजा की को विदाई देते समय साथहो लेते हैं। और तब शरीर को किसी एक गीलक में होकर आत्मा निकल जाता है।

स्पष्ट है कि बाह्य सम्पर्क जन्य कोई दुख, वियोगादि प्रताड़ना आत्मा को नही होती। परन्तु जीवन में जो कुछ किया कराया है उसका विहंगम स्मरण अवश्य कराया जाता है। वह तो अनुभूत सुख–दुखों का रिपीटीशन मात्र है। शायद इसी से अगले जन्म की सम्भावित योनि बनती है। और इसका भान चलते समय आत्मा को हो जाता है। इस पर अगले अध्याय में विचार करेंगे।

जीवन का आकस्मिक अन्त ही मृत्यु हैं। यह सुख और सम्भावनाओं का दुखद अन्त प्रतीत होता है मृत्यु अचानक ही मानवीय आशाओं के मधुर पुष्पों का विनाश कर देती है। मृत्यु के द्वारा व्यक्ति पेड़ से पके खरबूजे को की तरह अपने सारे प्रिय सम्बन्धियों से विलग हो जाता है। मृत की मुस्कान अप्रतिम प्रेम, स्नेहिल भावनायें, प्रखर ज्ञान और गुण–दोषों की विभिन्न स्मृतियों के कारण उसका व्यक्तित्व हम लोगों के मानस पटल पर अंकित रहता है।

मृत्यु भयावह है। जब अपनी स्नायुओं में लोग आनन्द के स्पन्दनों का अनुभव करते रहते हैं, उसी समय उनके कानों में सुदूर से बजती मत्यु को घन्टी भी सुनाई देती रहती है। उनके अन्तर्मन में यह ज्ञान निरन्तर बना रहता है कि ये सुखद स्थितियां, प्रेममय मिलन, आश्चर्यजनक उपलब्धियां एक न एक दिन अवश्य समाप्त हो जायेंगी। हरेक के अन्तर्मन की गहराई मे मृत्यु का भय बना पहता है तथा उनको यह प्रतीत होता रहता है कि एक न एक दिन वे मृत्यु का ग्रास अवश्य बनेंगे।

कभी–कभी शारीरिक दुर्बलता, ज्योतिक्षीणता, अंगो में कम्पन्न, इन्द्रियों की निर्बलता, स्मृतिहीनता और अन्ततः हृदय गति बन्द होने के रूप में मृत्यु का पूर्वाभास प्रलक्षित होता है।

क्या मृत्यु इतनी भयावह है ? पर अगर आदमी अमर होने लगे, कभी मत्यु का शिकार नहीं बने तो क्या आप अधिक प्रसन्न होंगे। क्योंकि तब सम्बन्धियों के साथ अनन्त काल तक जीवित रहने में कितना आनन्द है। वास्तव में अपने सम्बन्धियों से पूर्णतः सम्बद्ध नहीं है। कम लोग अपने

प्रियजनों के साथ शान्ति और सुख से जीवन यापन करते हैं। केवल यपने लोगों के साथ रहकर आप उनके वास्तविक संपर्क में नहीं रह सकते। आप उनके साथ वर्षों रहकर भी उन्हें नही जान सकते हैं और न वे आपको जान पाते हैं। स्नेहिल सम्बन्ध या मैत्री जो भावना के आधार पर आश्रित हैं, अधिक दिनों तक नहीं टिक सकती।

संसार के विषय में यह अपरिपक्व धारणा है कि आप अपने लोगों द्वारा बहुत प्यार किये जाते हैं, गलत और भ्रान्तिजन्य है। जीवन में जब आपको भौतिक, मनोवैज्ञानिक, शारीरिक या मानसिक समस्याओं का वास्तवित साक्षात्कार होता है तब लोग केवल सहानुभूतिपूर्ण–बातें भर करते हैं न कि आपकी वास्तविक सहायता।

अपने किसी प्रिय सम्बन्धी की मृत्यु के पश्चात लोग उसके सद्‌गुणों के ही विषय में सोचते है। मृत व्यक्ति से वे सभी अपना घनिष्ठ सम्बन्ध साबित करने में संलग्न हो जाते हैं। किन्तु जब वही जीवित रहता है तो बड़ी कठिनाई से उसकी सेवा करते हैं तथा मृत्यु के समीप आए असहाय वृद्ध से बातें करने का कोई कष्ट उठाते हैं। ऐसे लोगों के वियोग पर कष्ट क्यों महसूस करें। मानव एक दूसरे से जीवितावस्था में भी संयुक्त [सम्बन्ध] नहीं रहता तो कैसे कहा जाय कि मानवीय सम्बन्धों का विच्छेद करने के लिए उत्तरदायी केवल नृत्यु ही है

२.०२ जीव प्राकृतिक पदार्थों से नहीं बना है—

इसे सिद्ध करने हेतु जीवन की उत्पत्ति और उसके विकास की प्रक्रिया पर विचार करना आवश्यक है।

जीवन का प्रारम्भ इस पृथ्वी पर कैसे हुआ, यह प्रश्न मानव समुदाय के लिए वर्षों से कौतूहल और जिज्ञासा का रहा है। पहले इसे लोग भगवान की लीला मानकर संतोग कर लेते हैं, परन्तु अब मनुष्य इस प्रकार के समाधानों से संतुष्ट नहीं है। यों तो डार्विन ने जीव के विकास का सिद्धान्त प्रस्तुत किया, जिसके अनुसार पृथ्वी पर सर्वप्रथम अवतरित जीव केवल एक कोशिका[Cell]मात्र से बने थे। ये जीव ही कालान्तर में, विकास करते गये।

फलस्वरूप आज बहुकोशीय और जटिल प्रणाली वाले जीव इस पृथ्वी पर हैं। लेकिन मुख्य प्रश्न यह है कि एक कोशीय जीव का ही विकास कहां से हुआ।

इस प्रश्न का उत्तर आज अनेक देशों की प्रयोगशालाओं में खोजा जा रहा है। अभी तक पूरी तरह से यह हल भीनहीं हो पाया है। क्या यह सम्भव है कि वैज्ञानिक निर्जीव से सजीव वस्तु की उत्पत्ति करने में तथा इच्छानुसार जीव पैदा करने में सफल हो जायेंगे। अभी तक तो प्रकृति में सजीव से ही जीब प्रगट हुए हैं।

संक्षेप में कोशिका [Cell] के रसायन को जान लेना अपेक्षित हें। कोशिका में मूल रूप से अमीनों अम्ल [Amino Acid] तथा न्यूक्लिक एसिड [Nuclic Acid] वर्तमान रहते हैं। अमीनों अम्ल [Amino Acid] मुख्यत: कोशिका की संरचना और पोषण में योगदान देते हैं। जबकि न्यूक्लिक अम्ल कोशिका की विशेषता को संरक्षित रखता है और कोशिका विभाजन [Cell Division] में सांचे के रूप में कार्य करता है ताकि ठीक उसी प्रकार की दूसरी कोशिका तैयार हो न्यूक्लिक अम्ल ही। प्रोटीन की रचना को भी नियंत्रित करती है। अमीनो अम्ल ही मिलकर प्रोटीन बनाते हैं।

चन्द्रमा से लाई धूल लगभग ५ अरब वर्ष पुरानी आंकी गयो है। अस्तु सृष्टि पांच अरबवर्षपु रानी समझी जाती है।जीव का प्रगटीकरण इस पृथ्वी पर करीब दो अरव वर्ष पहले हुआ है। जैसा कि भारत में आर्यों के संकल्प मंत्र से स्पष्ट हैं। तीन अरब बर्षों तक पृथ्वी जोवविहीन रही, ऐसा समझा लाता है। पृथ्वी जब बन रही थी उस समय विभिन्न तत्व उसमें मौजूद थे जो अत्यधिक गर्म अवस्था में थे। पृथ्वी के ठंडे होने की प्रक्रिया में इन तत्वों के संयोग से मीथेन, अमोनिया जैमी गैसें बनी। गुरुत्वाकर्षण के कारण ये गैसें वायूमंडल के बाहर नहीं आ सकीं। ऐसा समझा जाता है कि उस समय उल्कापात भी काफी मात्रा में होते थे तथा बिजली की कड़क भी हमेशा होती रहती थी। इन शक्तियों के कारण गैसें परस्पर टकराकर जटिल यौगिकों में बदल गयीं। ये यौगिक ही अमीनों एसिड थे। डा० ए० एल० मिलर ने अपने परीक्षणों में उपर्युक्त बातों को भी सिद्ध किया है।

अमीनों अम्ल अपने भार के कारण वायुमंडल से प्रक्षेपिव होकर वर्षा के साथ पृथ्वी की सतह पर आ गये। दो बर्षों के बीच जब ताप क्रम काफी बढ़ जाया करता था तो ये अमीनो अम्ल मिलकर एक लम्बे, भारी यौगिक में बदल गये जिन्हें [Protesnoids] कहा गया है। ये [Proteinoids] प्रोटीन से मिलते जुलते अणु हैं। इसी प्रकार नाईट्रोजन, कार्बन और शक्कर के अणुओं ने मिलकर न्यूक्लिक अम्ल का निर्माण किया। ऐसा अपनी प्रयोगशाला में जे० ओरो नामक वैज्ञानिक ने दिखाया है। इस प्रकार लम्बी कड़ी के रूप में वर्तमान प्रोटीन और न्यूक्लिक अम्ल के अणु समुद्र में वर्तमान रहे होंगे। अपने स्थायित्व के लिये ये सूक्ष्म कण जिन्हें कोसरणे कहा गया है [ओपारिन 1924] का निर्माण किया होगा। इसका निर्माण भी प्रयोगशाला में ओपारिन [रूसी वैज्ञानिक जो ५० वर्षों से जीव के विकास पर कार्य कर रहे हैं ने दिखाया है। ये कोवरसेट ही आदि कोशिका के रुप में पृथ्वी पर निर्मित हुए होंगे तथा वायुमंडल और समुद्र में उपस्थित यौगिकों से ऊर्जा प्राप्त कर इन्होंने अपना भरण पोषण किया होगा तथा इसी प्रकार का जीवन आरम्भ हुआ होगा। इसी को हमारे शास्त्रों में अमैथुनी सृष्टि कहा है। परन्तु उक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि कोशिका का शरीर तो भौतिक पार्थिव वस्तुओं से निर्मित हुआ, पर वह चलने फिरने योग्य हुआ जब उसमें किसी और शक्ति ने प्रवेश किया। यह शक्ति ही आतमा या जीव थी जो पहिले से मौजूद होनी अनिवार्य है।

२. दूसरी प्रपत्ति एकः—जीव दूसरे जीव को जन्म नहीं देता—

मनुष्य के शरीर में जिन भौतिक पदार्थों का उपयोग हुआ है, वे यों हैं:—

आक्सीजन	६५ प्रतिशत
कारबन	१८ ,,
हाइड्रोजन	१० ,,
नाइट्रोजन	१.५ ,,
कैलशियम	१.० ,,
फासफोरस	१.० ,,

स्वर्ण, चांदी]
तथा अन्य]
तत्त्द] १.५

वैज्ञानिकों ने इन तत्वों का मूल्य हंसी मंसी में मात्र २७ रुपये आंका हैं। परन्तु इनमें से जो तत्त्व उपरोक्त कोशिका का निर्माण कपते हैं और ये ही जन्म के बाद शरीर का प्रबन्ध करते हैं । वे ही शरीर–रथ का संचालन करते हैं।

जिस प्रकार एक कुशल प्रशासन में मुख्य प्रशासक होता है जिसके अन्तर्गत कई विभागों में कई अधिकारी होते हैं उसी प्रकार इस शरीर रूपी शासन की मुख्य शास्तिका कोशिका ही तो है जो बड़े से बड़े और छोटे से छोटे अंग को सुचारु रुप से चलाती है। इसकी इतनी बड़ी प्रमुखता के विषय में जान लेना हमारे लिए आवश्यक है।

कोशिका का परिचय जीव-वैज्ञानिकों को यों तो कई वर्षों से है फिर भी पिछले दशक में जटिल वैज्ञानिक यन्त्रों ने कोशा की अपरिमित कार्यक्षमता का पता लगाया है जिससे अब यह कहना कुछ अतिशयोक्ति नहीं है कि कोशा सचमुच जीवन की इकाई ही नहीं वरन् उसकी शासिको भी है। एक सुगठित और सुचालित शासन व्यवस्था में जिस प्रकार उसके विभिन्न अंग होते हैं उसी प्रकार कोशा जैसी सूक्ष्म कोशिका के भी सूक्ष्मातिसूक्ष्मतम अंग हैं जो जीवन के अलग अलग महत्वपूर्ण कार्य तथा पक्षों के लिए उत्तरदायी हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि बाहर से देखने वाली जितनी भी जीवन क्रियाएं है उन सभी का सम्पादन कोशा अपने सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभागों द्वारा सम्पादित करती है यद्यपि यह सम्पादन बहुत ही जटिल प्रक्रियाओं द्वारा होता है फिर भी कोशा के विभिन्न अंगो की प्रारम्भिक जानकारी उसकी अपरिमित कार्यक्षमता का परिचय दे सकती है।

कोशा एक प्रकार के आवरण [Plasma Men brane] की बाहरी दीवार से घिरा रहता है जो अत्यन्त ही लचीली परन्तु दृढ़ आवरण का कार्य करती है। सीमा रक्षकों की तरह यह कोशिका द्वारा किये गये सभी आदान प्रदान

पर नियंत्रण रखती है। बापरी भित्ति के अन्दर प्रोटोप्लौजम [Protoplasm] का जटिल समूह होता है। इसके मुख्य सदस्य Mitocondria, Lysosomes, Neucleus, Endo Plasime Reticulum. Cheroplat, Crolgibody इत्यादि हैं।

Mytocondria एक महत्वपूर्ण इंजन का कार्य करता है जो ईंधन रूपी खाद्य पदार्थों को शक्ति के विभिन्न रूपों में बदलता है जैसे ताप, प्रकाश, यांत्रिक शक्ति आदि। इसका अन्दाज केवल इसी से लगा सकते है कि जीवों द्वारा उत्पन्न की उयी ध्वनि, प्रकाश, [भगंजोगनी] ताप, [शारीरिक ताप] ये सभी ऊर्जा [शक्ति] के विभिन्न रूप हैं जिनकी उत्पत्ति केवल खाद्य पदार्थों से ही होती है। इन खाद्य पदार्थों को शक्ति में रूपान्तरित करने का जटिल कार्य अन्ततः Mytocondria ही तो करता है।

दूसरा अवयव है Andoplasmic Reticulum तथा Ribosomes Andoplasmic Reticulum कोशा के भीतर तक फैला हुआ एक सुलझा हुआ जाल है जो कि अलग-अलग खण्डों में विभाजित है जिसका कार्य परिवहन और महत्वपूर्ण रसायनो का संचय है। लेकिन इन सबसे ऊपर इसका कार्य कोशा मैं उपस्थित विभिन्न योगिकों को जोड़कर प्रोटीन जैसे महत्वपूर्ण जटिल रासायनिक पदार्थ की रचना करना है। यह बताने कीं आवश्यकता है कि मोटे तौर पर प्रोटीन ही जीवन का रासायनिक आधार है। इसी प्रकार शरीर के भीतरी भागों द्वारा होने वाले निष्कर्षण [Secretion[किये जाने वाले जटिल रसायनों का संचय और उनके संकेन्द्रण का कार्य golgi comlex जैसे महत्त्वपूर्ण अंग ही करते हैं।

Nucleus तो कोशा का प्रधान कार्यालय ही कहा जा सकता हैं। जिसमें उपस्थित [Chromozomes] प्रकृति की अत्यन्त ही निराली कार्य प्रणाली की एक महत्वपूर्ण कड़ी ही हैं। यह सम्पूर्ण जीव संसार की विभिन्न जातियों की परम्परागत विशेषता उनकी कई पीढ़ियों तक सुरक्षित रखती है, यह सर्वविदित है।

Chromozome में ही रासायनिक भाषा D.N.A. के रूप में हर शरीर की परम्परागत विशेषता की सूचनाएं सुरक्षित रहती हैं जिनके आधार पर

नये शरीर का निर्माण होता है। इसीलिए हर नवांगंतुक जीव अपने माता पिता के लक्षणों का एक प्रारूप होता है। इससे सिद्ध होता है कि जीव दूसरे जीव को जन्म नहीं देता है। पारिवारिक गुणों का पुनः प्रगटीकरण भौतिक कारणों से हैं।

३. तीसरी प्रपत्ति=निर्जीव प्रकृति से जीव का निर्माण असम्भव–

भौतिक वादी एवं मार्क्स दोनों की यह घोषणा है कि जीव की स्वतंत्र सत्ता नहीं है। जीव नाम की कोई वस्तु नहीं है। जीव को प्रकृति के तत्व ही बनाते हैं। परन्तु वैज्ञानिक आज तक एक भी जीव बना नहीं पाये हैं। १९७० तक वैज्ञानिक प्रगति की स्थिति यह है कि दयानन्द कोलेज लाहौर के एक विद्यार्थी डा० हरगोविन्द खुराना जो अमेरिका में बसे हैं, उन्हें नोबुल पुरस्कार भी है। उन्होंने उस वायरस को पृथक कर लिया है और प्राकृतिक पदार्थों से बना लिया है, जिससे कि बच्चे के विरासत वाले तत्व बनते हैं और जीवन क्रम पर शासन करता है। विसकोन्सन यूनीवर्सिटी अमेरिका में यह परीक्षण हुये हैं। स्वयं डा० खुराना ने इतना ही कहा कि उनकी खोज के अनुसार शायद यह सम्भव हो जावे कि बुद्धि–जीव खिलाड़ी या सिपाही भावना वाले व्यक्ति पैदा किये जा सकें। वायरस का नाम हाईऔक्सीराई बौऊकिलिक ऐसिड है। संक्षिप्त नाम DNA. इसकी वनावट में जिस क्रम से तत्व जुड़े हैं, उस क्रम द्वारा यह निश्चित होता है कि बच्चा किस लिंग का होगा तथा उसमें क्या गुण होंगे। उन तत्वो को न्युकलेटाइड कहते है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इन DNA को शायद बना सकेंगे। डा० खुराना ने DNA मौलीक्यूल के एक रूप मान ७७ न्युअलेठाइड ढांचे को बनाया है। मनुष्य निर्मात्री कोशिका (Cell) में लगभग १ अरब ऐसे न्युकलेटाहड के जोड़े होते हैं। अस्तु जीव का बन सकने की बात अभी बहुत–२ परे की बात है। परन्तु इस प्रक्रिया से वैदिक सिद्धान्त की हानि नहीं होती। हमारे शास्त्रों में स्पष्ट कहा है कि प्रथम मानवी सृष्टि अमैथुनी होती है। तैत्रिरीयोपनिषद् के एक श्लोक के अनुसार सृष्टि रचना का क्रम यों है :—

तस्गाद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः
(उससे आकाश हुआ) । आकाशवायुः (आकाश से वायु हुई) ।

वायोरग्नि (वायु से अग्नि)।
अग्नेराप: (अग्ने से जल) । अदभ्य: पृथिवी
[जल से पृथिवी] पृथिव्या ओषधय:
[पृथिवी में ओषधि] ओषधिभ्योन्नम
[ओषधि से अन्न हुआ ।] अन्नाद्रत:
[अन्न से वीर्य] रेतस: पुरुष:
[वीर्य से पुरुष प्रगट हुआ । स वा एपुरुषोन्नरसमय:
[अन्न रस से उत्पन्न वह पुरुष यही है ।।

[ब्रह्मानन्द वल्ली]

स्थिति यह है कि गर्भ का और शरीर का निर्माण तो प्राकृतिक पदार्थों से ही होता है। परन्तु गर्भ में ७ वें मास में जीव अन्यत्र से आकर प्रवेश करता है और तब गर्भ में हिलने डुलने लगता है। जीव को बना वनाया शरीर मिलता हैं। वह अपने शरीर को बनाता नहीं। जेसे किरायेदार बने बनाये मकान में आकर रहता है । गीताकार की उपमों यों है कि जीव पुराने वस्त्रों को उतार कर [अर्थात शरीरों को छोड़कर] नये वस्त्रों [नये शरीरों] को पहिन लेता है। इन वस्त्रों को वह स्वयं नहीं बनाता है। आज तक इच्छानुसार एक भी जीव वैज्ञानिकों ने नहीं बनाया हैं, न ही बनना सम्भव है। मनुष्य के वीर्य में स्थित कोटिश: कीड़ों में से कोई एक कीड़ा स्त्री के गर्भ में प्रवेश कर वहां गर्भ के शरीर का निर्माण करता है। जब शरीर भोजन-सार के उपकरण से बन जाता है तब अध्यक्ष जीव आकर स्वय उसमें रहने लगता है। हर जीव के साथ सूक्ष्म तथा कारण शरोर साथ-साथ आते हैं। [पुस्तक जीवात्मा कृति पं० गगा प्रसाद उपाध्याय] पृष्ठ- १०२

जीवन की निरन्तरता पर शरीर विज्ञान के आधार प निष्कर्ष–

वैज्ञानिक पाल वीस [Pall Weiss] ने कहा है कि प्रकृति में जो उत्तराधिकार रूप गुण मिलने का सिद्धान्त है, वह ही जोवन की निरन्तरता को सिद्ध करने हेतु पर्याप्त है, दर्शन शास्त्र की बात अलग रखते हुए भी।

उनमें जो रासायनिक प्रक्रिया सीधी लाईन में होती है, उससे उनमें चेतना का सिद्धान्त ही निकलता सम्पूर्ण है। हम यह भी जानते हैं कि परिवर्तन कैसे हुआ, पर वस्तु में जो विभाग हैं, उनमें यह प्रक्रिया कैसे हुई हम नहीं जानते।

१. पहले हम मस्तिष्क में हुए परिवर्तनों पर विचार करते हैं। हमारे शरीर में ८० प्रतिशत तो पानी है और जो शेष २०% बचता हैं, उसमें १०^{10} सूक्ष्माणू हैं [macromolecules] और दिमाग अकेले में १०^{10} कोष [cells] हैं अतः उसमें १०^{20} सूक्ष्माणु हुये। मस्तिष्क की हर नाड़ी [Nerve] लगभग १०^{4} दूसरी नाड़ियों से जुड़ी है। इन नाड़ियों के अपने कार्य हैं परन्तु वे नष्ट होती रहती हैं तथा उनकी जगह नई नाड़ियें बनती रहती हैं। यह कार्य १०^{4} बार एक जीवन में सम्पन्न होता है। अर्थात हर सैल एक जीवन में १०^{14} सूक्ष्माणुओं के सम्पर्क में आती है।

मस्तिष्क प्रतिदिन १०^{3} सैल खो बैठता है। और इस प्रकार एक जीवन में उनकी संख्या १०^{7} तक घटती है। तो भी मस्तिष्क की निरंतरता कायम रहती है। यह इन सैलों के ऊपर किसी भी प्रशासक की सत्ता को सिद्ध करती है। क्योंकि मस्तिष्क [Brain] में वर्षों पुरानी जो घटना है जो अपने से सम्बद्ध है, अपने अनुभव के रूप में याद रहती है।

२. परीक्षणों ने यह भी सिद्ध किया है कि शरीर रचना में ,चाहे वह Fungus [फफूंदी] हो या कीड़े या मनुष्य, प्रोटोप्लाज्म जिसे जीवन का प्रारम्भक माना है, मिनरल अचेतन जड़ पदार्थो में रासायनिक क्रिया से बदल जाता है और नष्ट होता रहता है, परन्तु इसे नष्ट होने की शनैः शनैः क्रिया में ही उसका शरीर में सतत बना रहना सम्भाव्य है। हमारे शरीर की कोषिकाएं [cells] प्रतिक्षण मर रही हैं। मनुष्यों में तो ७ वर्ष में सारी कोषिकाएं बदल चुकी होती हैं। परन्तु तो भी जीवित हैं और तब भी इस नये मायाकल्पित शरीर को अपना शरीर ही कहते रहते है। इस अन्तर्निहित चेतना को ही जीवन तत्त्व या जीवात्मा कहते हैं।

३ विकासवाद का सिद्धान्त मनुष्य के उद्‌भव के बारे में यह मानता है कि हम एक सैल से ही प्रारम्भ हुये हैं, जिसे अमीबा कहते हैं और यह अमीबा

कभी नष्ट नहीं होता है। तभी तो हम सब सदा अमर बने रहना चाहते हैं। यही जीवन की निरन्तरता का स्रोत है और अनन्त तथा कालातीत है।

४. जीवन सदा से ही उत्पन्न होता हैं जड़ से नहीं। जीवन इसलिये भी अनन्त है अन्यथा पीछे जाते जाते अनवस्था दोष उत्पन्न हो जायेगा। जब तक यह जीवन तत्त्व शरीर में रहता है कौशिकायें तथा अग प्रत्यंग कार्य करते हैं। फिर यह तत्व चोला बदल देता है। जिसे छोड़ देता है वह मृत और जिसे अपना लेता है वह उद्‌भव [जन्म] कहाता है। जीवन व मरण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मृत्यु के समय पहिले कर्मेन्द्रियों के कार्य बन्द करने से मृत्यु होती है, फिर प्राण चेतना निकल जाती है। तभी मृत्यु पूरी होती है। भौतिक, मानसिक, बौद्धिक शक्तियों का आत्म तत्व द्वारा संगठन होने से क्षमता Potential बढ़ती है और सब मिलकर कार्य करते हैं। तभी मनुष्य का व्यक्तित्व बनता और कायम रहता है। ऊंची क्षमता धीरे–धीरे डिसचार्ज होती हैं। निकास पूर्णता की ओर होता है। साथ साथ विकास अपूर्णता की ओर होता हैं। अर्थात जीवन से मृत्यु की और निकास है। तथा मृत्यु से पुनर्जीवन हेतु विकास हैं। यही विद्युत[Potential]का सिद्धान्त हैं। Discharge एव Charge और इसका कर्ता अन्तर्निहित जीवन तत्त्व आत्मा ही हैं।

४. जीव क्या नहीं है ?

अ. उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि यह शरीर जीव नहीं है। मृत्यु उपरान्त जो लाश है, उसमें सारे प्राकृतिक पदार्थ जो ऊपर गिनाये हैं, मौजूद हैं। परन्तु उसमें गति और ज्ञान नहीं है। उसमे जीव नहीं हैं। अस्तु यह शरीर, या मांस जीव नहीं हैं।

ब. जब व्यक्ति सो जाता है तो कर्मेन्द्रियां और बुद्धि काम करते अतः बुद्धि भी जीव नहीं है। कमन्द्रियाँ जीब नहीं हैं

स. गहरी नींद में ज्ञानेन्द्रियाँ भी कार्य नहीं करतीं क्योंकि स्वप्न नहीं होते, अतः ज्ञानेन्द्रियां भी नहीं हैं।

द. प्राणायाम में प्राणों को रोक देते हैं, परन्तु मनुष्य जीवित रहता है, अतः प्राण भी जोव नहीं हैं।

य– शरीर से नस–नाड़ियां मष्तिस्क केन्द्र में समाचार ले जाती हैं। वहां भूरे और काले रंग की थैलियें हैं, उनमें तदनुसार तरंग उठती हैं। उस से विचार तरंग मस्तिष्क में पहुंचती हैं। वहां विचार प्राप्त करने के उपरान्त अन्य इन्द्रियों को आज्ञा दी जाती है। आंख जब यह विचार मस्तिष्क को भेजता है कि कोई लाठी से वार कर रहा है तो हाथों को आज्ञा होती है कि सर पर पहुंचो। अस्तु मस्तिष्क का केन्द्र भी आत्मा नहीं है क्योंकि उसका भी संयोजक चाहिए।

र– निर्जीव पदार्थों के मिलन से उत्पन्न विशेष गुण भी जीव नहीं है। जो गुण प्रारम्भ में नहीं है वह मिलने पर भी नहीं आ सकता। फिर लाश में वे सब प्राकृतिक पदार्थ उसी अनुपात में हैं। अस्तु मिलन के फलस्वरूप विशेष गुण भी जीव नहीं हैं।

ल– बुद्धि भी आत्मा नहीं है क्योंकि बुद्धिहीन पागल लोग भी जीवित हैं। पर वास्तव में जीव अवश्य है। अन्यथा बावों को कौन याद रखता है। सोचने पर समस्या का समाधान कहां से आता हैं। विभिन्न इन्द्रियों द्वारा भेजे सन्देशों का समन्वय कौन करता है? दोनों आखों से देखे दृश्यों से एक ही भान कैसे होता है?

आत्मा निम्नलिखित भावात्मक गुण भी नहीं है :

१– भावोद्रेक (Impulses) –यह तो कार्य करने की प्रवृत्तियां हैं। बार बार के भावोद्रेक से स्वभाव (Habit) बनता है। जब स्वभाव से भावोद्रेक पुष्टतर होता है तो उन्हें कामनायें (Passions) कहते हैं। जब भावोद्रेक चेतनायुक्त होते हैं तब उन्हें इच्छा कहते हैं। जब भावोद्रेक जनचेतना से परिपूर्ण होता हैं तभी उसकी संज्ञा इच्छा (Will) भावोद्रेक जनचेतना से परिपूर्ण हो जाती है। भावोद्रक एवं चैतन्य युक्त विचारों से ही आत्मा का चरित्र घोषित होता है। मनुष्य द्वारा कृत कर्म इन्हीं भावोद्रेकों से निश्चित होते हैं। वे आत्मा पर एकत्व की छाप डालते हैं, पर आत्मा नहीं हैं।

२– रुझान Disposition—उत्तराधिकार में मिला स्वभाव ही रुझानों का निर्माण करता है। इन्हीं से शरीर की विभिन्न इन्द्रियों का कार्यक्रम

निर्धारित होता है यहां तक कि एक जीवन की आयु निश्चित हो जाती है। इसे Temperament भी कहते हैं। पर यह आत्मा नहीं है।

३– विचार श्रृंखला–विचार तो वस्तुपरक है तथा उनकी Feelings अनुभूति से उत्पन्न होते हैं। शुभ विचार हमारे अस्तित्व के श्रेष्ठतम भाग हैं, मानों हसमें प्रभु ही शुभ विचारों के रूप में अवतरित हुआ हो। पर विचार भी आत्मा नहीं है।

४– क्षणिक अनुभूति Sensation—विचारों या वस्तुओं से उत्पन्न ज्ञान लहरियों की टक्कर से क्षणिक अनुभूति पैदा होती हैं। ये विभिन्न क्षणिक अनुभूतियां धीरे-२ सार्थक हो जाती है और तब अनुभूति की संज्ञा चेतनता हो जाती है। हर क्षणिक अनुभूति उसी तरह की दूसरी क्षणिक अनुभूति की याद दिलाती हैं और तब प्राणी विचारवान बन जाता है। पर यह विचार-वत्ता ही आत्मा नहीं है।

५– अनुभूति Feeling से बुद्धि का जन्म होता है। पर बुद्धि समुदाय ही आत्मा नहीं हैं।

६– सोचा हुआ Thought विचारों की परस्पर टक्कर से निकला निर्णय ही सोचा हुआ Thought है। मस्तिष्क में जा विचार संकलित हो जाते हैं। वे नये विचारों को जन्म देते हैं। इनसे भविष्य के विचारों का आकलन किया जा सकता है। पर ये विचारवत्ता ही आत्मा नहीं है।

७– कारणत्व Reason ठीक–ठीक सोचने का नाम ही कारणत्व है। पर वह भो आत्मा नहीं है।

८– निश्चय–लगातार कार्य कारण की मानसिक ऊहापोह से निकले निष्कर्षों को ही निश्चय कहते हैं। कालान्तर में वे उस व्यक्ति की Gospal Truth हो जाते हैं। वे मानवीय इच्छा भी कहे जा सकते हैं। पर वे आत्मा नहीं हैं।

९– अहंकार-उपरोक्त सारी क्रियाये जो करके उनके कर्ता होने का अहंकार जो करता है, वह भी आत्मा न होकर उपरोक्त की भांति आत्मा का गुण व क्रिया है। सांख्यकार ने प्रकृति में विपर्यय होने पर महत के बाद अहंकार का

जन्म माना है और उसे प्रकृति जन्म बताया है। आत्मा तो उस अहंकार का भी अधिष्ठाता है। इसकी पुष्टि से डाक्टर पाल के रस का मत उद्धरित करना समीचीन होगा।

Egotism is that attitude of a man in which headless of his soul he takes up his present make–up (body) as his true seli. Nature does not want egotism. We have to give up the idea, that our real self (Soul) belongs to ourselves. Our soul is not down own, but mankind's and mankind in its turn is not its own, the soul of mankind is from God, it develops in God. and all its inspirations and yarninga are to God. (From the Book religion of Science.)

यहां आत्मा का मालिक विश्वात्मा को तथा विश्वात्मा का उद्भव (विकास) परमात्मा में माना है। यह तो विवादास्पद हैं पर अहंकार को आत्मा से पृथक् किया ही है।

यों भी हमें जीवन अपनी इच्छा से नहीं मिला है। न ही मृत्यु की तिथि हमारी इच्छानुसार हैं। यहां तक कि दिल का कार्य, रक्त का संचलन तथा तथा श्वास निश्वास भी किसी और के द्वारा नियोजित है। प्रतीत होता है कि यह सारा कार्य महान अज्ञात शक्ति द्वारा संचालित है।

५: शरीर में जीव के कार्य—

१– शास्त्रों में आत्मा को शरीर रथ का सारथी कहा हैं। मस्तिष्क केन्द्र से सफेद रंग के कोमल तन्तु निकलते हैं। ये तन्तु (नाड़ियां) पट्ठों पर जाकर जमाप्त होते हैं। पट्ठे ही कार्य करते हैं। इस प्रकार सारथी का हाथ यह मस्तिष्क केन्द्र है। तंतु उसली बागे हैं। पट्ठे और स्नायु घोड़े हैं जिन्हें यह हांकता है। इस शरीर का जीव अध्यक्ष है। इसके चले जाने पर यह भूत घोषित कर दिया जाता है।

२. वह सांस के विश्वास का कार्य करता है। सांस द्वारा शरीरस्थ मल जलाये जाते हैं। इस जलन से शरीर मे शक्ति का प्रजनन होता है। आत्मा ही सांस को गति देता है। धोंकनी के दबाने में श्रम करना होता

है। वायु का उसमें लौट कर आना श्रम के होता है।

३. आंखों का झपकना–मानों किसी चतुर पुतली वाले के हाथ पुतलियों को नचाया जा रहा हो। यह चतुर नचाने वाला आत्मा हो है। पलक के भीतरी भाग को स्पर्श करने पर फड़फड़ाहट भीतरी स्वामी की आज्ञा ने होती है।

४. आत्मा शरीर के क्षति ग्रस्त अवयवों की मरम्मत करता है। घाव पूरे करता है। दवाई तो उस प्रक्रिया में सहायता भर करतो है। यहो Biochemical इलाज पद्धति का मूल–सूत्र है।

५. ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों में सम्पर्क आत्मा ही बनाये रखता है।

भोजन देख कर मुंह में पानी आ जाता है।
आक्रमण होते देख हाथ ऊपर उठ जाते है।
महान दुख के समय बाल बड़े हो जाते हैं।
क्रोध के समय भोंहें तन जाती हैं।

६. स्मृतियौं के भण्डार को संजोकर आत्मा ही रखता है मानो कम्प्यूटर अर्जित ज्ञान और तज्जनित संस्कार भी उसी में रिजर्व जमा पड़ रहते हैं। मन में एक समय में एक ही विचार रहता है, अस्तु अनेकानेक विचार नहीं इकट्ठे रहने चाहिये।

७. जीव प्रजनन करके ऐसे शरीर बनाता है, जिसमें आकर दूसरा जोव निवास करे और उसका संगठन व समाज बढ़े।

जीवात्मा के चिन्ह

इच्छाद्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानान्यात्मा लिगमिति ।।

वैशेषिक दर्शन ३/२/४ ।।

इच्छा द्वेष प्रयत्न	} कर्तृत्व
सुख दुःख	] भोक्तत्व
ज्ञान	] ज्ञातृत्व

अस्तु शरीर में जिसके कारण ज्ञान प्राप्त करने, कर्म करने की लालसा और फल भोगने की आकांक्षा है, वही जीव है।

देह में जीवात्मा कहाँ है ?

मानव के देह के जिस प्रदेश में आत्मा की स्थिति है, यह प्रदेश हमारे शास्त्रों में "हृदय" बताया गया है देह में ऐसे दो स्थान हैं जहाँ के अंग को "हृदय" पद से कहा जाता है। अति प्रसिद्ध रूप में यह पद देह के रक्त प्रक्षेपक अंग के लिए प्रयुक्त होता है। पर यह रक्त का प्रक्षेप करने वाला "हृदय" आत्मा का निवास स्थान प्रतीत नही होता। रक्त प्रक्षेप की क्रिया शरीर में आत्मा के अस्तित्व को निश्चायक अवश्य है। समस्त शरीर में जाल को तरह बिछे हुए ज्ञान तन्तुओं का केन्द्र मस्तिष्क में है इसके अनुसार आत्मा का आवास नही माना चाहिए। वहीं से यह ज्ञान तन्तुओं के द्वारा सम्पूर्ण शरीर पर निमन्त्रण रखता हे।

एक स्थान पर बैठ कर आत्मा समस्त शरीर पर किस प्रकार नियन्त्रण करता है, और किस प्रकार चैतन्य से उसे प्रकाशित रखता है, यह बात गीता के श्लोक के द्वारा वहुत सुन्दर रीति से वर्णित है। श्लोक यह है : —

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्न लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारतः॥

जैसे एक सूर्य सम्पूर्ण लोक की प्रकाशित करता है, वैसी क्षेत्री आत्मा सम्पूर्ण देह को प्रकाशित करता है। पर भौतिक ज्ञानतन्तु केन्द्र आत्मा को वही कार्य देता है, जो सूर्य की रश्मिताँ। अर्थववेद में भी ऐसा ही उल्लेख है :—

अष्ट चक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥
तस्मिन् हिरण्ये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठते।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः।
प्रभ्राजमानाम् हरिणीं यशसा सर्परीवृत्ताम्॥
पुरं हरिण्ययीं ब्रह्मा विदेशापराजिताम्॥

—अथर्व० (१०/१२/३१-३३)

इसको स्वर्ग और ज्योतिषावृत्त बताया हैं। अगले मंत्र में कहा है कि, गिरण्यक कोष के मध्यवर्ती त्र्यद त्रिप्रतिष्ठित स्थान में आत्मा का निवास है। 'हिरण्यय' पद का अर्थ होगा—हिरण्य अर्थात सुवर्ण की प्रचुरता या अधिकता से बना पदार्थ। मस्तिष्क में एक ऐसा अवयव हैं, जो हल्के पीले वर्ण वाले पदार्थ के आधिक्य से बना है। आधुनिक शरीरशास्त्र में इसका नाम 'आज्ञावन्द' है। हठयोग में इसे आज्ञाचक्र भी कहा जाता हैं।

'आज्ञाकन्द' नामक दो ग्रन्थियां हैं, जिनमें धूसर अर्थात हल्के पोले रंग की वस्तु का आधिक्य हैं। वे ग्रन्थियां 'ब्रह्मगुहा' के दोनों ओर विद्यमान रहतो हैं। यह आज्ञाकन्द ही हिरण्मयकोश हैं। उनकी आकृति मनुष्य के अंगूठे के अग्रपर्व के समान होती हैं। जब इन दोनों को आमने—सामने मिलाकर बैठाया जाय, यो इनके मध्य में थोड़ा अवकाश रहता हैं। इसका नाम 'ब्रह्मगुहा' है इसमें एक प्रकार का गाढ़ा सा स्निग्ध तरल भरा रहता है। यही आत्मा का निवास हैं। दोनों आज्ञाकन्दों के मध्य का यह अवकाश त्रिकोण सा प्रतीत होता हैं। इसलिये इसका एक विशेषण त्र्यर दिया गया है।

वेद के इस वर्णन के पूर्ण अनुरुप वर्णन छान्दोग्य उपनिषद् [१८/१/२] में हुआ हैं। वहां है 'अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीक वेश्म दहरोऽस्मिन्तनाराकाशः तस्मिनू यदन्तः तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासित व्यम्'। अब जो इस ब्रह्मपुर में छोटा सा [दहर] कलाकृति का घर है, उसके अल्प [दहरः] अवकाश है। इसके अन्दर जो रहता हैं, उसको समझना व जानना चाहिये। अतः इस ब्रह्मपुर मैं 'छोटा सा घर' हिरण्यकोष की ओर संकेत है। इसमें अल्प अवकाश है। जिसमें गाढ़ा स्निग्ध तरल भरा हरता हैं। इसके अन्दर जो रहता हैं, उसे जानना चाहिये।

स्वर्ग—हिरण्मय कोश शरीर के उर्ध्व भाग में उपस्थित है, इस आधार पर यह स्वर्ग कहा गया है।

ज्योतिषावृत्त को ज्योति से आवृत कहा है। इसकी रचनां पीताभ पदार्थों से हुई है। अतः इसके लिये यह विशेषण सर्वथा उपक्युत हैं।

इस आधार हर निष्कर्ष हैं कि इसी स्थान पर आत्मा रहता हैं।

७ ब्रह्म जीव नहीं बनता हैं अर्थात उसका अंश नहीं हो सकता—

[शोध में पूर्व पक्ष का उल्लेख नहीं था कि आत्मा वक्षस्थित हृत्पिण्ड में रहता है। यह पक्ष कठोपनिषद में वर्णित हैं। इस पुस्तक के प्रकाशन समय इसका खण्डन आवश्यक है। इसमें डा० खुशहाल सिंहजी, नं० ४ न्यू राजेन्द्र नगर दिल्ली–७ के अन्वेषण से सहायता ली गई है। कठोपनिषद के वह स्थल नीचे देते हैं। मेरी साधारण प्रतिज्ञा यह है कि जीव गर्भ में शरीर निर्माण करने का श्रम करते हैं। वे वक्ष स्थित हृत्पिण्ड में मेहनत करते हैं जो पुरुष वीर्य के साथ गर्भ स्थल में प्रवेश किये होते हैं। और स्वामी फलभोक्ता आकर मस्तिष्क स्थित गुहा में आ बैठ शासन करता और फल भोगता है हृदय शब्द दोनों के लिये है।

१. शतं चैका च हृदयस्य नाडयस्तासां मूर्धानमभिनि सृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वगन्या उत्क्रमणोभवन्ति ।।३।१।१६।

२. अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संन्निविष्टः।
तं स्वाच्छरीरात् प्रबृहेन्मुञ्जादि वेषीकां धैर्येण।
तं विद्याच्छुक्रममृतं, तं विद्याच्छुक्रममृतमिति।१७।

कठः बल्ली ६।१६, १७।

२. एक सौ एक हृदय की नाड़ियां हैं। उनमें से एक ऊपर को शिर को गई है। इस ऊपर जाने वाली नाड़ी से ऊपर जाता हुआ आत्मा अमृत पद को पाता है अन्य नाड़ियां मरण समय में नाना फल देने का साधन बन जाती हैं। इसी प्रकार का वर्णन प्रश्नोपनिषद में भी आता है।

।। प्रश्न० ३ श्लोक ६ ।।

३. अंगुष्ठ मात्र अन्तरात्मा पुरुष सदा मनुष्यों के हृदय में रहता हैं। उस अन्तरात्मा को विवेकी मनुष्य अपने शरीर में धैर्य से ऐसे निकाले जैसे मूंज फूले में से तिनका खींचकर निकाला जाता है। उस आत्मा को तेजोमय और अमृत जाने।

दूसरी नीचे से मलिन रक्त लाती हैं। फिर एक नाड़ी जिसके दो भाग हो गये हैं, उस मलिन रक्त को दोनों फुप्फुसों में शुद्ध होने के लिए ले जाती

है। वहां से चार नाड़ियों द्वारा वह रक्त शुद्ध हुआ रक्त हृदय में वापस आता है। फिर हृदय से एक बड़ी नाड़ी शुद्ध रक्त लेकर निकलती है। इसके दो भाग हो जाते है–एक ऊपर सिर को गई और दूसरी शरीर के शेष भागों को शुद्ध रक्त लेकर जाती है। इस प्रकार हाथ में आने जाने वाली कुल मिलाकर आठ नाड़ियां हैं, न कि १०१। जैसा कि कठोपनिषद की छठो बल्ली में लिखा है।

प्रश्न किया जा सकता हैं कि क्या कठोनिषद के कर्ता ऋषि का ज्ञान निभ्रान्त नहीं था जो हृदय में आने जाने वाली नाड़ियों की गिनती में भूल कर गये। मैं समझता हूं कि कठोपनिषद के ऋषि ने पहली तीन बल्ली लिखो हैं? जिनमें आत्मा का स्थान गुहा न कि हृदय बताया गया है। शेष तोन बल्ली किसी अन्य विद्वान की लिखी हुई प्रतीत होती है।

श्लोक इस प्रकार से कहे :—

यं इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्म संसदि।
प्रयत: श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते तदान्त्याय कल्पत इति
॥१७॥ कठ वल्ली ३ म० १६, १७॥

[जो इस परम रहस्य भेद को ब्रह्म सभा में सुनाए, वा पवित्र होकर श्राद्ध आतिथ्य अथवा त्यौहार के समय सुनाए, तब वह कथा अनन्त फल के लिए हो जाती है–तब इसका फल अनन्त हो जाता है॥१७॥

पुरानी परिपाटी के अनुसार वैवस्वत से कही गई नचिकेता को इस कथा की समाप्ति पर उपरोक्त श्लोक में इस कथा का कहने और सुनने का माहात्म्य कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि कठोपनिषद के ऋषि ने यहां पर अपने कथन को समाप्त कर दिया था। आगे जो चौथी पांचवी और छटी बल्ली किसी और विद्वान या व्यक्ति ने लिखी हैं।

कठ प्रदेश में ज्येष्ठ पुत्र को बलि देने की प्रथा थी। उसी प्रथा का उच्छेद करने के लिये बाजसनेय ने इस उपनिषद का कथानक कल्पित करके लिखा था। वह उद्देश्य यहां पर पूरा हो गया। शेषमात्र विषयान्तर है।

शोधमें पूर्व पक्षका उल्लेख नहीं था कि आत्मा बक्ष स्थित हृत्पिण्ड में रहता है। यह पक्ष कठोपनिषद में वर्णित है। इस पुस्तक के प्रकाशन समय इसका खण्डन आवश्यक है इसमें डा० खुशहाल चन्द्र जी नं० ४० न्यू राजेन्द्र नगर दिल्ली ७ के अन्वेषण से अहायता ली गई है। कठोपनिषद के वह स्थल नीचे देते है। मेरी साधारण प्रतिज्ञा यह है कि जो जीव गर्भ में शरीर निर्माण करने का श्रम करते हैं, वे वक्ष स्थित हृत्पिण्ड में मेहनत करते जो पुरुष वीर्य के गर्भ स्थल में प्रवेश किये होते है। और स्वामी फलभोक्ता जीव आकर मस्तिष्क स्थित ग्रहा में आ बैठ शासन करता व फल भोगता है। हृदय शब्द दोनों के लिये है।

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिः सृतैका ।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वगन्या उत्क्रमणोभबन्ति ।। १६ ।।
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संन्निविष्टः ।

तं स्वाच्छरीरात् प्रबृहेन्मुन्जादि वेषीकां धैर्यण ।
तं विद्याच्छुक्रममृतं, तं विद्याच्छुक्रममृतमिति ।। १७ ।।
कठः पनिषद् ६।१६,१७ ।।

एक सौ एक हृदय की नाड़ियां हैं। उनमें से एक ऊपर शिर को गई है। उस ऊपर जाने वाली नाड़ी से ऊपर जाता हुआ आत्मा अमृत पद को पाता है। अन्य नाड़ियां मरण समय में नाना फल देने का साधन बन जाता है इसी प्रकार का वर्णन प्रश्नोपनिषद ३/६ में भी आता है।।

७ अंगुष्ठ मात्र अन्तरात्मा पुरुष सदा मनुष्यों के हृदय में रहता है। उस अन्तरात्मा को विवेकी मनुष्य अपने शरीर सेधैर्य से ऐसे निकाले जैसे मुंज के पूले में से तिनका खींच कर निकाला जाता है। उस आत्मा को तेजोमय और अमृत जाने।

सिर में जो मस्तिष्क है उसके चार भाग है - बुद्धि, मन चित्त और अहंकार। यह चारों अतःकरण सिर में हैं। शरीररूपी रथ का कोचवान बुद्धि और मन रूपी लगाम जव सिर में है तो शरीर का स्वामी भी उनके पास उसी सिर में है। तभी तो बुद्धि रूपी सारथी शरीर रूपी रथ को अपने स्वामी जीव

आत्मा के आज्ञानुसार ठीक चला सकता है। यदि आत्मा रूपी स्वामी तो वक्ष स्थित हृदय में हो और बुद्धि रूपी सारथी सिर में हो, तो सारथी स्वामी की आज्ञा आवश्यकता पड़ने पर शीघ्र अति शीघ्र कैसे प्राप्त कर सकता है, जबकि उनमें आपस में सीधा सम्पर्क न हो।

उपराक्त अधिकांशों कथन को वेद मन्त्रों **से** सिद्ध किया जा सकता है, जैसे --

मूर्धानमस्य संसीव्याअथर्वा हृदयं च यत् ।
मतिष्कादूर्ध्व: प्रैरयत् पवमानोऽधि शोर्षत: ।२६।।

तद् वा अथवर्ण: शिरो देव कोश: समुब्जित: ।
तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मन: ।।२७।।

अथर्ववेद कांड १० सू०२.म०२६,२७

अर्थ: (अथर्वा) निश्चल प्रभु अर्थात प्रजापति परमात्म (अस्य) इस पुरुष के(मूर्घानिम्) मस्तिष्क कों और (हृयर्य च) हृदय को (संसीव्य)सीकर (यत्) जब (मस्तिष्काद्) मस्तिष्क से (ऊर्ध्व:) ऊपर और (अधि शीर्षत:) सिर के भी ऊपर रहते हुंए(पवाम.न:) प्राण स्वरूप परमेश्वर समस्त देहों को (प्रैपयत्) गति करने की शक्ति देते है।२६।

(वा)अथवा (अथर्वण:) **अथर्वा** अर्थात प्रजापति का बनाया हुआ (तत्) वह (शिर:) सिर ही (देव कोष:) देवकोश अर्थात इन्द्रियों का मूल आवरण या निवास स्थान (सम्-उब्जित:) बना हुआ हैं। (प्राण:)प्राण (अन्नम् अथोमन: अन्नमय सिर के भाग और मन सहित(तत् शिर:)उस सिर को चारों ओर से से रक्षा करते है। ।।२७।।

उपरोक्त दोनों वेद मन्त्र निम्नलिखित बातों में हमारे कथन का यथार्थता को सिद्ध करते है :--

(क) हृदय जिस में प्रभु का और इस कारण जीव आत्मा का वास है वह सिर में मस्तिष्क के साथ सिया हुआ है अथवा मिला हुआ है और वह वक्ष में नहीं।

(ख) इन्द्रियों के संचालक मन का केन्द्र सिर में है, जिससे सारे शरीर के ज्ञान तन्तु और गतिदायक नाड़ियां जुड़ी हुई हैं। इन्हीं के द्वारा भगवान इन्द्रियों को गति करने की शक्ति देता है।

(६) अब विचारणीय विषय यह है कि कठोपनिषद् के पहले जो तीन श्लोक ऊपर लिखे हैं, उनमें गुहा या गुफा जो शब्द आया हैं, उसका अभिप्राय क्या हैं प्राय. गुफाएं पर्वतों में बनाई जाती है और उनमें एक ही प्रवेश द्वार होता हैं किन्तु वक्ष स्थित हृदय के लिए जहां ऊपर से खुला मार्ग हैं, वहां नीचे से वक्षोदार मध्यस्थ पेशी में से खाद्य नाड़ी रक्त वहा मोटी धमनी और मोटी सिरा तथा अनेक ज्ञान तन्तु वक्ष में हृदय के अतिरिक्त दो फुसफुस (फेफड़े) भी हैं। इस कारण वक्ष को गुहा अथवा गुफा नहीं कहा जा सकता। किन्तु सिर में सब ओर कपाल (खोपड़ी) की अस्थियाँ एक दूसरे से बहुत अच्छी प्रकार से जुड़ी हुई है। नीचे एक गोल बड़ा छेद है जिसमें से सुषम्ना नाड़ी मस्तिष्क से रीढ़ की अस्थियों में आई है। रक्त को नाड़ियों के लिए एक दो छोटे छिद्र के अतिरिक्त कपाल में और कोई प्रवेक्ष द्वार नहीं। इस कपाल दुर्ग में मस्तिष्क जिसके चार अतः करण रूपी भाग हैं। वास्तव में मस्तिष्क एक गुफा में रहता है। और इसी को कठोपनिषद में गुहा कहा हैं।

७. (क) वर्तमान शरीर रचना के, पण्डितों के जिन्होंने हृदय को चीड़ फाड़कर शल्य चिकित्सा की हैं, अनुसार हृदय में दो नाड़ियां (एक ऊपर से दूसरी नीचे से) मलिन रक्त लाती है। फिर एक नाड़ी जिसके दो भाग हो गए हैं उस मलिन रक्त का दोनों फुसफुसों में शुद्ध होने के लिए ले जाती हैं। वहां से चार नाड़ियों द्वारा वह शुद्ध हुआ रक्त हृदय में वापस आता है। फिर हृदय से एक बड़ी नाड़ी शुद्ध रक्त लेकर निकलती हैं। इसके दो भागहो जाते है -- एक ऊपर सिर को गई हैं और दूसरी शरीर के शेष भागों को शुद्धरक्त ले जाती है। इस प्रकार हृदय में आने जाने वाली कुल मिलकर आठ नाड़ियां है, न कि १०१ जैसा कि कठोपनिषद् की छठी बल्ली में लिखा हैं।

प्रश्न किया जा सकता है कि क्या कठोपनिषद के कर्त्ता ऋषि का ज्ञान निर्भ्रान्त नही था, जो हृदय में आने जाने वाली नाड़ियों की गिनती में भूल कर गये। मैं समझता हूं कि कठोपनिषद् के ऋषि केवल पहली तीन बल्ली

लिखी है? जिनमें आत्मा का स्थान गुहा न कि हृदत बताया गया है। शेष तीन बल्ली किसी अन्य विद्वान् की लिखी हुई प्रतीत होती है। इन कथा के माहात्म्य के रूप में तीसरी बल्ली के अन्त में श्लोक इस प्रकार से हैं—

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्म संसदि ।
प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते तदानन्त्याय कल्पत इति
कठ बल्ली ३ म० ,१७।।

जो इस परम रहस्य-भेद को बह्म सभा में सुनाए, वा पवित्र होकर श्राद्ध आतिथ्य अथवा त्यौहार के समय सुनाए, तव यह कथा अनन्त फल के लिए हो जाती हैं - तब इसका फल अन्नत हो जाता ।।१७।।

पुरानी परिपाटी के अनुसार वैवस्वत से कही गई नचिकेता की इस कथा की समाप्तिपर उपरोक्त श्लोक में इस कथा का कहने और सुनने का माहात्म्य कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि कठोपनिषद् के ऋषि ने यहां पर अपने कथन को समाप्त कर दिया था। आगे जो चौथी पांचवी और छठो बल्ली है, वह किसो अन्य विद्वान् वा व्वक्ति ने लिखी हैं।

कठ प्रदेश में ज्येष्ठ पुत्र को बली देने को प्रथा थी । उसी प्रथा का उच्छेद करने के लिये वाजसनेय ने यह उपनिषद कथानक कल्पित करके लिखा था। उदेश्य यहां पर पूरा हो गया शेषभाग विषयान्तर है।
आधुनिक शरीर विज्ञान
के अनुसार वक्ष स्थित हृत्पिण्ड के चार भाग हैं। मलिन रक्त शरीर के सब भागों से आकर हृत्पिण्ड के ऊपर के दाएं भाग में गिरता है। वहाँ से वह दाएं ओर के नीचे के भाग में चला जाता है, जो इसे दोनों फुसफुसों में शुद्ध होने के पश्चात् वह रक्त हृदय के ऊपर के बांए भाग में आता है जो उसे उसी ओर के नीचे के भाग में भेज देता है। वहाँ से वह शरीर के सब अवयवों में भेजा जाता। हृदय के इस कार्य के अतिरिक्त उसका किसी ज्ञान अथवा कर्म इन्द्रिय के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता। यदि जीव आत्मा इस हृत्पिण्ड में रहता हो तो उपरोक्त अवस्था में वह बाहर का तथा शरीर के शेष भागों का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता और न ही वह कर्म इन्द्रीयों से कोई कार्य ले सकता है।

यदि हृत्पिण्ड के किसी रोग के कारण उसकी शल्य चिकित्सा करनी आवश्यक हो जाय तो ऐसी अवस्था में रक्त वहां नाडियों का हृत्पिण्ड से विच्छेद करके एक विद्युत् चालित यन्त्र के साथ उनका सम्बन्ध कर दिया जाता है। जब तक हृत्पिण्ड की शल्य चिकित्सा होती रहती है, यह यन्त्र हृत्पिण्ड का कार्य करता रहता है। हृत्पिण्ड की शल्य चिकित्सा के पश्चात उन रक्तवाहिनी नाडियों का यन्त्र से विच्छेद करके फिर हृत्पिण्ड से सम्बन्ध कर दिया जाता है। इस विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि जीवात्मा हृत्पिण्ड में निवास नहीं करता।

रक्त बांटने के प्रवन्ध के अतिरिक्त शरीर में एक और प्रबन्ध है जो ज्ञान तन्तुओं और गतिदायक नाड़ियों को एक ओर मस्तिष्क से और दूसरी ओर शरीर के सब अंगों और उपांगों के साथ जोड़ता है। इसको अंग्रेजी में Nervous System कहते हैं। यदि हमारे पैर में कांटा लगने से पीड़ी होती है तो पीड़ित ज्ञान तन्तु इसकी सूचना मस्तिष्क को देता है, वहां से आंख को आज्ञा मिलती है कि वह पैर को देखे कि क्या हुआ है। आंख पैर को देखकर मस्तिष्क को सूचित करती है कि कांटा लगा है। मस्तिष्क हाथ की गतिदयक नाड़ी (motor nerve) को आज्ञा देता है कि वह कांटे को निकाले। हाथ झट पैर के कांटे को निकाल देता है। इस सारे कार्य में कुछ सैंकड ही लगे होंगे। पांचों ज्ञान इन्द्रियां सिर में हैं और त्वचा ज्ञान इन्द्रिय शेष शरीर में भी है।

ज्ञान तथा कर्म इन्द्रियों के कार्य ढंग -- इसके लिए हम आंखों का दृष्टान्त लेते है। आँखों के गौलकों में एक प्रकाश के दो कैमरे (Cameras) लगे हैं। जो दृश्य या आकृति आंखों के सामने आते हैं उनका चित्र शरीर में आंखों की पिछली दीवार पर पड़ता है। उस चित्र को वहाँ ज्ञान तन्तु मस्तिष्क में ले जाते है। इस प्रकार कान में जो शब्द पड़ते हैं, मुंह से जो खाया जाता हैं उसके स्वाद को तथा नाक में गन्ध को वहाँ को ज्ञान तन्तु मस्तिष्क में पहुंचते हैं इसी प्रकार मुख पर कोई स्पर्श हो उसको भी वहां के ज्ञान तन्तु मस्तिष्क में पहुचाते है। शरीर के शेष भागो पर जो स्पर्श होता हैं वहां के ज्ञान तन्तु उसे सीधे मस्तिष्क में नहीं पहुचाते। रीढ़ की हड्डियों के बीचों बीच एक छिद्र है। उसमें एक नाड़ी है जिसको सुषुम्ना

नाड़ी कहते हैं। सिर के कपाल अथवा खोपड़ी के नीचे एक गोल बड़ा छेद हैं, जिसके द्वारा यह सुषुम्ना नाड़ी मस्तिष्क से मिलो हुई हैं और यह एक प्रकार से मस्तिष्क का ही भाग है। शरीर के शेष भाग के ज्ञान तन्तु और गति देने वाली नाड़ियां इस सुषुम्ना नाड़ी द्वारा मस्तिष्क के साथ जुड़ी हैं । शरींर कीत्वचा पर जो गर्म, ठण्डे, सुखद, दुखद स्पर्श होते है, उनका ज्ञान, यह ज्ञान तन्तु सुषुम्ना नाड़ी द्वारा हो मस्तिष्क को पहुंचाते हैं। और मस्तिष्क की आज्ञाएं कर्म इन्द्रियों हाथ, पैर, पायु उपस्थ की गति देने वाली नाड़ियों को इस सुषुम्ना नाड़ी से होकर पहुँचती हैं।

मस्तिष्क जिस भी पदार्थ का बना है वह जड़। इस कारण वह न देख सकता हैं न सुन सकता हैन स्वाद ले सकता हैं, न सूघ सकता हैं और न स्पर्श को अनुभत कर सकता हैं। देखने सुनने, स्वाद लेने और सूघने तथा स्पर्श को अनुभव करने के शक्ति उस चेतन आत्मा में हो है, जो मेरे विचार में मस्तिष्क में विद्यमान है। यदि आत्मा मस्तिष्क में विद्यमान न होकर वक्ष स्थित हृदय में हो, जैसे ऊपर कहा गया हैं कि वह जीव आत्मा ऐसी अवस्था में ज्ञान इन्द्रियों और कर्म-इन्द्रियों से कोई सम्बन्ध नही स्थापित कर सकता।

ब्रह्म जीव नहीं बनता है, अर्थात उसका अंश नहीं हो सकता — इस विषय में अवैद्तवादियों का मत जानना आश्वयक है क्योंकि वह हिन्दुओं में एतद्विषयक मान्यताओं से मेल नही खाता हैं। इस विषय में हम प्रसिद्ध अद्वैतवादी स्वनी ज्योतिर्मयानंद के विचार उनकी पुस्तक Death and Reincarnation से उद्धृत कर रहे हैं जो

6 III S. W. 74 th Avenue, Miami, Florida 33143 USA से छपी है। अद्वेतवादी आत्मा का स्ववतंत्र अस्तित्व नहीं मानते हैं। वे उसे ईश्वर का अंश मानते हैं चो उससे निकलता है और उसी में मिलने को यग्र रहता है और अतएव जीवन अश की अपने पाथेय की ओर विकासोन्मुख यात्रा मात्र हैं। उद्धरण यों है।

1) Reincarnation is not the continuity of the personality of man. It is the evolutionary rebirth of his deeper basis — the individual soud (Jiva) (Page-3).

2) The deeper basis which enables the maid to link the childhood with the youth to finh an unbroken continuity behind the apparent change, is the Individual soul. (Page -).

3) The Self (Atma) is like the oeean. the Individual soul is like a

centre appearing in the wave. The Process of reincarnation is like one wave changing into another. Ego-centre is a projection of the Individual soul in the wave. + + In the process of repeated births, the soud attaches itself to different ego-centres and through evolution, gradually moves towards the depth of the ocean.

In the profound depth of the existance ; the soul merges with the SELF and realizes its identity with all the waves. Here in the process of reincarnation terminates. (Page-9).

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि अद्वैत दर्शन में आत्मा का अस्तित्व है ही नहीं। वह अतएव अपने साथ कोई संस्कार भी नहीं ले जाता है। केवल एक अंशीय लहर दूसरे में बदल जाती है। यह आत्मा की अनादि व अनन्त की मान्यता के स्पष्ट प्रतिकूल है। और चित्त का अहंकार जिससे अंशीय लहर हर बार आके चिपटती है, जड़ पदार्थ होने से अनन्त हो नहीं सकता और एक व्यक्तित्व का अहंकार (Ego centre) सदा रहने वाला नहीं हो सकता। सो कर्मानुसार फलाफल की सब व्यवस्था समाप्त हो जाती है। हर बार नये अहंकार में चेतना अंश के शामील होने से कर्म कर्ता और फल भोक्ता एक संज्ञक ही नहीं रहते। अद्वैतवादियों के जीवात्मा में आस्था रखना बुद्धि - युक्त नहीं हैं। परन्तु यह मान्यता कि बुद्धि में परमेश्वर की परछाई का केन्द्र - विन्दु ही जीव हैं, विज्ञान सम्मत नहीं है। इस विषय में डाक्टरों का परीक्षणोक्त विवरण अपेक्षणीय था। निदान प्रसिद्ध - पत्रिका Readers Digest की दिसम्बर ८४ प्रति में ईको हेरन (Echo Heron) का एक लेख Good-Bye Colonel छपा है। इसमें ब्रेन हेमरेज (मस्तिष्क के पन्कचर हो जाने) के बाद भी

यन्त्रों और दवाइयों से रोगी को कुछ समय तक जीवित रखें जाने की कहानी है। सम्बन्धित अंश उद्धृत करते है :-

He (nick-named Colonel) had been laughing and very active only a few hours before it (Brain Haemorrhage) happened.

There had been a family dinner that day and it is amazing how quickly it happened. He woke up several times that night, called in sister who turned up but the man could utter nothing.

He was brought to Hospital in the evening.

Both his electroen cephalograms had been Flat, and Head Scanning done. He was put on Respirator. Occasional muscle twitches of the man's arms and legs were disturbing the plastic tubes twisting across his daked chest and thigh. A mist of sweat covered his balding head. The respirator carried tirs warmed air into his. lungs.

First Report in Hospital ; Heart Rate ; 150 ' Blood Pressure: 80 Palpable, Skin: wet and mattled, colour: Bluish, Drugs: Dopamine Procainamede and Udocain, Newis: pupils widele dilated, All reflex alsent No one home.

Second Report after four hours;

The nurse took his hand. It was moist and warm, Temp; 41.2 ° C (106.2 ° F). Normally man dies at 106 ° F. Purple Feet icy cold.

Third observetion on dialysis machnes

Heart Rate; 70; Blood Pressure; 74

Fourth Reading af ter 20 minutes

Temp; 94 ° F, Clammeness of skin.

He woke up several times that night

The fifth Report

The Doctor came and gave following note Head - can showed massive cerebral Haemorrhage. Go ahead and stop the drugs and

का एक लेख-- Good bye Colonel छपा है । इसमें ब्रेन हेमरेज (मस्तिष्क के पन्कचर हो जाने) के बाद भी यन्त्रों और दवाइयों से रोगी को कुछ समय तक जीवित रखें जाने की कहानी है । सम्बन्धित अंश उद्धृत करते हैं ---

He (nick-named colonel) had been laughing and very active only a few hours before it (Brain Haemorrhage) happened. There had been a family dinner that day and it is amazing how quickly it happened. He wake up several times that night, called ins sister who turned up but the man could utter nothing.

He was brought to Hopital in the evening. Both his electroencephalograms had been flat, and Head Scanning done. He was put on Respirator. Occasional muscle twitches of the man's arms and legs were disturbing the plastic tubes twisting across his naked chest and thigh. A mist of sweat covered his balding head. The Respirator carried thre warmed air into his lungs.

First Report in Hopital : Heart Rate : 150, Blood Pressure : 80 Palpable, Skin : wet and mattled, Colour :- Bluish, Drugs : Dopamine Procianamede and Udocain, Newis . pupils widely dilated, All reflex absent, No one home.

Second Report after four hours :—The Nurse took his hand. It was moist and warm. Temp. 41.2°C (106.2°F) Normally man dies at 106°F. Purple Feet icy cold.

Third observation on dilaysis machines :— Heart Rate : 70, Blood Pressure : 74,

Fouth Reading after 20 minutes :—Temp. 94°F, Clammeness of skin. He woke up several times that night.

The Fifth Report :- The Doctor came and gave following note Head-can showed massive cerebral Hamorrhage. Go ahead and stop the drugs and discontinue Respiratior as desired by members of his family,

Sixth Observation :-Blood presure-40, Heart Rate-32, The blue intravenus fluid that kept his blood pressure up and the yellow fluid that kept his heart pumping was stopped And then the monitor flashed and buzzed as a strange line, moved across the screen. No Pulse Blood Pressure zero. The Respirator was then stopped.

इससे स्पष्ट है कि मस्तिष्क ग्रन्थियों के नष्ट होने के बाद रसायनों से ब्लड प्रेशर तथा नाड़ी को चालू रखा गया क्योंकि फेफड़ों को यन्त्र से गरम हवा पहुँचायी जाती रही। अन्त मे इनके बन्द करते ही थोड़े समय बाद मृत्यु हो गई। क्योंकि तब ही आत्मा ने कूच किया। मस्तिष्क तो नाशवान है। न कहीं से आया था न कहीं जाता है।

मायावाद :—

जीव के जो चिन्ह एवं कार्य वर्णन कर आये, उनसे स्पष्ट है कि यह ब्रह्म का न तो अंश है और न ब्रह्म ही स्वयं जीवों में बदल गया है। अद्वैत-वादितों ने शताब्दियों तक यह प्रचार किया है कि परब्रह्म परमेश्वर ही लीला करने के हेतु जीव बन जाता है। और लीला करके पुनः पूर्ववत् हो जाता है। लीला करने का हेतु कोई बहुत बढ़िया कारण नहीं है। जो वस्तु वास्तव में वैसी न हो पर रूप और कोई दर्शाया जावे, उसे लीला कहते हैं। ईश्वर के लिए यह बहुरूपिया का ऐक्टिंग शोभनीय नहीं है। वह तो बिना शरीर के ही वे सब कार्य इच्छा मात्र से कर सकता है जिनके करने की उसकी योजना हो। कोई भी सुसंस्कृत पुरुष कोढ़ी, रोगी, पंगु, या अंगहीन बनना

पसन्द न करेगा। इस लीला में कोई सार नहो है। ईश्वर सिंह बनकर अपनी ही कृति हिरन को खा जावें या मनुष्य बनकर क्रूर, अनैतिक या हिंसा के कार्य करे। ईश्वर जहाँ और जैसा है, वहीं से साधुओं की रक्षा और दुष्टों का दमन कर सकता है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सूखा, अकाल, महामारी और भूकम्प तथा तूफान जैसे महा अनिष्टकारी शस्त्र उसके तूणीर में पड़े हैं।

कुछेक विचारकों ने लिखा है कि ईश्वर अकेला था। उसका मन नहीं लगता था। तब उसने कहा "एकोऽहम् बहुस्याम्"। मैं अकेला हूँ, बहुत हो जाऊँ। बस वह अनेकों जीवों में बदल गया। यह उद्देश्य भी स्तुत्य नहीं है। इश्वर के पास मन बहलाने तथा अपने को कार्यरत रखने के लिए प्रकृति बहुत काफी थी सृष्टि संचालन का इतना बड़ा कार्य था जिससे ईश्वर को फुर्सत नहीं मिल सकती। अकेला और तज्जनित निठल्लापन ईश्वर में लागू नहीं होते। यह तो जीव की इच्छा होती है कि मैं समाज में रहूँ—अतः वह परिवार प्राप्त करता है। प्रजनन के द्वारा सन्तान प्राप्त करता है। जीवों के अनेक होने से यह सब सम्भव है। वास्तव में हम अपने गुण आदतें और महत्वाकाँक्षायें ईश्वर पर लादना चाहते हैं, जो कि अनुचित है।

सर्वज्ञ और सर्व बस्तुयें जिसकी अपनी होने से हस्तामलक की भाँति जिसे प्राप्त हैं, वह अल्पज्ञ और साधन हीन बनकर दुख जाल में क्यों फँसेगा? फिर सर्वज्ञता एवं व्यापकता और दु खातीतता जिसके स्वाभाविक गुण हैं, वह गुणों से पृथक कैसे हो सकता है? उन गुणों से उसकी निवृत्ति नहीं हो सकती। ईश्वर एकदेशी कदापि नहीं हो सकता।

ईश्वर के अंश भी जीव नहीं है। पूर्ण के गुण अंश में रहते हैं, पर जीव में ईश्वर के गुण नहीं हैं। इसी प्रकार यदि अनेकानेक जीव एक ही ईश्वर के अंश हैं, तो सब मनुष्यों की विद्या-बुद्धि-बल एक जैसा होना चाहिए। एक व्यक्ति के मन में जो विचार उठें, वे तुरन्त उसी रूप में सब व्यक्तियों के मन में उठने चाहिये, जैसा कि कभी नहीं होता है। ऐसा मानने से तो व्यक्ति का व्यक्तित्व ही नष्ट हो जाता है, मानों यह एक मशीन हो जो किसी ने कार्य विशेष के लिए बनाकर रख दी हो, जिसकी न अपनी कोई क्रियाशीलता हो,

न भोग शीलता न ज्ञानशीलता। यह बात तो जीव के चिन्हों के प्रतिकूल है जो कि हम उसमें नित्य देखते हैं।

अंशाश का सम्बन्ध मानने वाले ऐसे जीव का अन्तिम लक्ष्य अपने शेष पूर्णांश में मिलना मानते हैं और उसी को मोक्ष की संज्ञा देते हैं। भला वह कैसा मोक्ष है जिसमें मेरा अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। मैं रहता ही नहीं हूँ। यह तो सर्वनाश है। फिर इस annihilation समाप्ति के बाद मोक्ष का आनन्द कौन भोगता है। भला यह भी कोई वांछनीय गंतव्य है कि जहाँ जाकर मैं सदा–सर्वदा के लिए समाप्त हो जाऊँ।

इन दार्शनिकों ने एक जीवन-मुक्त की कल्पना भी की है और उसे यों समझाया है कि जो जीव यह विश्वास और निश्चय कर लेता है, कि मैं ही ब्रह्म हूँ वह जीवन-मुक्त हो जाता है। पर ऐसा कुछ होता तो नहीं है। जीवन-यापन के लिए श्वास-प्रश्वास और भोजन-ग्रहण यथा मल-मूत्र त्याग की सब क्रियायें तो चलती रहती हैं। यह मुक्ति कैसी ? वास्तव में ऐसी समझ आ जाने पर कि मैं ब्रह्म ही हूँ, व्यक्ति में एक दम्भ आ जाता है।

अस्तु यह स्पष्ट है कि ईश्वर (ब्रह्म) के जीव बनने का न कोई कारण है, न उद्देश्य, न कोई सम्भावना है, और न कोई तर्क-पूर्ण तथ्य। यह कोरा बौद्धिक व्यायाम है।

8. Cogeto Ergo Sum (I think, therefore I am)

प्रसिद्ध विचारक डेकार्ट ने आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में बड़ी जोरदार दलील दी है। उसका कहना है कि मैं सोचता हूं, अतएव मैं हूँ, और मेंरा अस्तित्व है। जब हम अपने बारे में सोचते हैं कि क्या कभी ऐसा समय आयेगा जबकि हम अपने बारे में सोचते हैं कि क्या कभी ऐसा समय आयेगा। जबकि हम नहीं होंगे, तो अन्दर से आवाज आती है कि ऐसा हो नहीं सकता महाभारत में यक्ष-युधिष्ठिर के प्रश्नोत्तर में संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य यही बताया गया है कि हम नित्य लोगों को मरते देखते हैं, पर अपने बारे में सोचते समय यह सोच ही नही पाते कि हम भी ऐसे ही न रहेंगे। यह आश्चर्य वस्तुतः हमारे होने और सदा रहने की पुष्टि करता है।

अमर जीव पर अरविन्द के विचार :—

योगी अरविन्द की मान्यता है कि जड़ पदार्थ चैतन्य प्राप्त करने हेतु विकास के सिद्धान्तानुसार सतत प्रयत्नशील है। मनुष्य में ऊपरी योनि में, पहुँचकर महामानव बनने का जो उत्कर्ष है और महत्वाकांक्षा अभिनिहित है, वही मृत्यु का आलिंगन करती है और यदि वैज्ञानिक अमर-जीवन की औषधि निकाल लेंगे तो आत्मा "मृत्यु" हेतु कोई और मार्ग निकाल लेगी। जीवन का जो महान उद्देश्य महामानव बनना है, वह तो पूर्ण होकर ही रहेगा। एक अनन्तपूर्णता हमें अपने अनुसार ढालना चाहती है और उस पूर्णता के प्राप्त होने पर शायद मृत्यु के अत्याचार से हम बच सकें।

जड़ पदार्थ अपनी स्वतन्त्रता हेतु चेतन में बदल जाने को प्रयत्नशील है। यह कार्य धीरे-धीरे सम्पन्न भी हो रहा है, क्योंकि जड़ पदार्थ में जीवन और जीवन में प्रगट होती जा रही है। हमारे शरीर पर भी यह प्रक्रिया चालू है। परन्तु इस उद्योग में अंशतः ही सफल हो पा रहा है और मृत्यु आ झपटती है। जब यह प्रयत्न पूर्णतः सफल होगा, तभी अमरता प्राप्त हो जावेगी। और प्रयत्न तभी सफल होगा जब मानव में अति मानवीय चेतना का सृजन हो चुका होगा। इसका तात्पर्य ईश्वरीय कृपा और प्रेम के प्रकटीकरण से है।

इसी बात पर उनकी उत्तराधिकारिणी माँ ने निम्न विचार प्रकट किये हैं :—

"सृष्टि में जीवन के साथ मृत्यु सदैव जुड़ी रही है, परन्तु मानव उसमें भिन्न-भिन्न अर्थ लेता रहा है, जो प्रकृति ने उसमें प्रारम्भ ही में समाहित किया था। मनुष्य तथा उसके निकटतम पशुयोनि में मृत्यु की आवश्यकता को अपनी-अपनी चेतना के अनुरूप विशेप रूप माना है, परन्तु इस प्रकृति में स्थित अंतश्चेतना के ज्ञान में तो यह नवीनीकरण और रूप परिवर्तन की आवश्यकता मात्र मानी गई है।

सृष्टि में जड़ प्रकृति के स्वभाव के कारण ही मृत्यु अवश्यम्भावी हुई। जड़ पदार्थ के विकास में अन्तर्निहित सिद्धान्त ही यह है कि चेतना की प्रथम स्थिति से उसकी बढ़ती हुइ स्थिति में प्रवेश और विकास की इस प्रक्रिया में, वाह्य रूप का नष्ट होना आवश्यक है। ऐसा ही होता भी रहा है। संगठित व्यक्तिगत चेतना हो ठहरने का अवलम्बन मिले, इसलिये एक निश्चित स्वरूप-रूप आवश्यक था। रूप की स्थिरता ही तो मृत्यु को अवश्यम्भावी बनाती है। जड़ पदार्थ ने रूप तो धारण ही करना था। उसके बिना जीवन-शक्ति [अर्थात चेतना शक्ति] का व्यक्तिकरण और शरीर का प्रकट होना

असम्भव थे ? और उसके बिना सृष्टि में प्रथम पुरुष या योनि कैसे प्रकट होती ? परन्तु जब एक स्थिर रूप [या योनि] धारण कर ली जाती है तो एक ही रूप में बने रहने की शक्ति कम हो जाती है। यह व्यक्तिगत रूप एक विशेष शरीर बनाये रखने में शक्तिवान तो होता है परन्तु यह उन विश्व शक्तियों के अनुरूप नहीं चल पाता। वह प्रकृति के परिवर्तन से पीछे रह जाता है, मुख्य धारा से पीछे रह जाता है। यह अन्तर बढ़ता जाता है और अन्ततः यह रूप नष्ट हो जाता है। अब एक नये रूप-स्वरूप की संरचना आवश्यक है। जो युगधारा की शक्ति से सामजस्य रखे। बस मृत्यु का यही महत्व है, तथा प्रकृति में मृत्यु का यही उपयोग है।

परन्तु यदि रूप-स्वरूप शीघ्रगामी है और शरीर की कोशिकायें वृहत-चेतना के अनुरूप की जा सकती है, जो रुप-स्वरूप का नष्ट हो जाना आवश्यक नहीं है और तब मृत्यु अवश्यम्भावी नहीं होगी।

[दिनांक ५-५-२६ की एक माँ की प्रकाशित बातचीत।
अनुवाद लेखक का है]

१०- जीव अमर है—

सदा रहने [अमर होने] की यह भावना हरेक धर्म में भिन्न-भिन्न रूप से प्रकट हुई। वैदिक धर्म में उसे अनादि अनन्त कहा गया है। चूंकि आतमा का कभी निर्माण नहीं हुआ, अतः उसका कभो अन्त भी नहीं हो सकता। सैमेटिक धर्मों ने कहा कि मरने के बाद आतमा कब्र में पड़ी रहती हैं। फिर एक दिन सब आतमायें खुदा के सामने प्रस्तुत की जाती हैं और कर्म फलानुसार उन्हें सदैव के लिये दोजख या बहिश्त में भेज दिया जाता है। मूल बात मृत्यु के उपरान्त सदा बने रहने की है जिसे इन धर्मो ने मान लिया है।

परन्तु सीमित अच्छे या बुरे कर्मों का असीमित फल नहीं हो सकता। अतः सदा दोजख या सदा बहिश्त की बात न्यायानुकुल नहीं है। हमें आतमा के बार-बार जन्मने और देहोत्सर्ग करने तथा कर्म फलानुसार भिन्न योनियों में जाने की बात माननी पड़ेगी। विभिन्न जन्मों में प्रकट आतमा सदा रहने वाला अजर अमर है। जन्म जन्मान्तर के संस्कारों के बोझ से दबा जीव संसार के कर्म क्षेत्र में जूझता रहता है। यह पुनर्जन्म का विचार आशा और भय दोनों का संचार करता है। जो इस जन्म में नहीं कर सके वह अगले में सही। साथ ही यह भी विचार रहता है कि जो गलती अभी की है वह आगे न करना। जो अच्छे फल नहीं भोग पाये वे मानों एक बैंक में जमा हैं और

जिन बुरे कर्मों का फल येनकेन प्रकरेण इस जन्म में बचा गये, वे भोगने ही पड़ेंगे-ऐसा भय मनुष्य पर ब्रेक का कार्य करता है। पुनर्जन्म के दर्शन से समाज में सामंजस्य कायम रहता है।

यों भी ज्ञान की पूर्णता के लिये एक जीवन का कार्य-काल अत्यल्प है। परम्परा से संगृहीत इतिहास, भूगोल, भाषा, काव्य, गणित, विज्ञान आदि में से प्रत्येक विषय में इतना ज्ञान उपलब्ध है कि एक मानवीय जीवन में तो एक विषय भी सम्पूर्ण नहीं जाना जा सकता। अतः अल्पज्ञ से सर्वज्ञ बनने के लिये भी अनेकानेक जन्म अपेक्षित हैं।

अमर जीवन की कल्पना समाज में क्रमबद्धता जारी रखती है। यदि आत्मायें अमर न मानी जावें तो कल्याणकारी राज्य अथवा उसकी योजनाओं का कोई महत्त्व ही नहीं है। जब हम ही नहीं रहेंगे तो यह देर में फल देने वाली योजनायें हमारे लिये कोई मूल्य नहीं रखतीं। हम जानते हैं कि २० वर्ष बाद जब इस सद्य बोये वृक्ष में फल आवेंगे, नवीन चोला धारण कर हमीं उस वृक्ष के फलों को उपभोग में लावेंगे। सारे योजनाबद्ध कार्यों की यही पृष्ठभूमि हैं। यदि मृत्यु के पीछे रहने वाली वस्तु है ही नहीं और वर्तमान जीवन ही सब कुछ है, तो शासन-पद्धतियों का निर्माण, प्रचार तथा भावी मनुष्य जाति के कल्याण का प्रश्न ही निरर्थक हो जावेगा।

जन्म जन्मान्तर के जो संस्कार हैं, वे ही व्यक्ति-व्यक्ति की अलग-अलग बुद्धि-चातुर्य एवं योग्यता बन कर प्रकट होते हैं। यदि बुद्धि--चातुर्य कर्मठता और योग्यतायें भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न स्तर की दृष्टिगोचर होती हैं और जिनके कारण व्यक्तियों को न्यूनाधिक भोग्य पदार्थ आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि जीव प्रारम्भ में प्राकृतिक वस्तुओं से मिलकर उत्पन्न हुआ था। इसे समझने के लिये उनका दृष्टिकोण पूर्व पक्ष के रुप में समझना चाहिए।

1- किरलियन फोटोग्राफी के निष्कर्ष :—

एक रूसी मैकेनिक किरलियन बिजली के कुछ उपकरण साफ कर रहा था। उसका हाथ करैण्ट वाले इलैक्ट्रोड के पास भूल से जा पहूचा, और बिना छूए ही उसे बिजली का धक्का लगा अर्थात कुछ वोल्टेज उसके हाथ में होकर पृथ्वी को गई। और धक्के के समय प्रकाश (फलैश) की एक लाईन भी खिंच गई। एक फोटो प्लेट के मध्य होकर गुजारने पर यह प्रकाश किरण जब हाथ में होकर गुजारी तो विभिन्न प्रकार की लाईनों का फोटो खिंच गया। एक बार निमोनिया ग्रसित होने पर जब

हाथ में होकर यह प्रकाश किरण गुजारी तो लहरें व लाईनें फोटो में नहीं आई। पर उसी अपनी स्वस्थ पत्नी वेलेनटाइना के हाथ से गुजारने पर वे लाईनें फिर आ गई। अतः उसने मत स्थापित किया कि जब रोग आने वाला होता है तो लहरें गायब हो जाती हैं। कुछ हरी-भरी और सूखी पत्तियों में होकर प्रकाश किरण निकालने पर भी यही अनुभव हुए। सन् 1974 में उसे रूस सरकार ने इन परीक्षणों हेतु पुरस्कृत किया।

कालान्तर में सैन्ट थामल हास्पिटल लन्दन के डाक्टर वाल्टर किल्नर ने और परीक्षण करके मत स्थापित किया कि यह प्रकाश किरण उस व्यक्ति की चेतना है। (Human Aura) यह मानव चक्षु पर प्रभाव डालती है। प्राचीन चित्रकार अपने हीरो के चित्र के चारों ओर प्रकाश निकलता दिखाते थे। यह सम्भवतः मनुष्य के अन्दर को आत्मा से निकलने वाला चैतन्य है। बीमार लोगों में यह चैतन्य रूक जाता है या कम हो जाता है।

(Condensed from an Article in PSYCHIC News London Sept. 16th 1985 Issue :- Article by Prof. Arthur Ellison–Summary of his book Hand book of the Aura).

परमाणु कैसे मिलकर जीवन (Lifons) में बदल जाते हैं, यह समझने के लिए परमाणु तथा द्व्यणुक या त्रसरेणु (Molecules) की गति (Vibrations) के बारे में यह जान लेना चाहिए कि जब वे स्वतन्त्र होते हैं तो वे शान्त स्थिर (At Rest) नहीं रह सकते और अपनी निधारित क्षमता (Frequency) से गति करते रहते हैं क्योंकि वे धन एवं ऋण विद्युत के विशेष अनुपात में संग्रह मात्र है। और यह गति विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र का सृजन करती है। तथा इसका घनत्व उस परमाणु या मौलीक्यूल के भार से उलटे तथा तापक्रम के सीधे अनुपात से होता है हल्की चीज में अधिक बाईब्रेशन होंगे। तो यदि 273° सें० जिसे पूर्ण जीरो (Absolute Zero) तापक्रम कहते हैं पर पहुंचे तो बाईब्रेशन की क्षमता (Frequence) कम से कम होगी। क्वान्टस थ्योरी ने कहा है कि यह फ्रिक्यूएन्सी हर एटम की निश्चित तथा पृथक-पृथक होती है। वही उस परमाणु में निहित ऊर्जा है। इसे उसकी जीरो प्वाइन्ट एनर्जी कहते हैं। क्वान्टम मैकेकिक्स के सिद्धान्त के अनुसार जब इलैक्ट्रान स्वयं प्रोटान के चारों ओर स्थित घेरे में घूमकर एक ही पदार्थ बनाता है तब उसमें से शक्ति की किरणें नहीं निकलती हैं, परन्तु यह जीरो

प्वाइन्ट एनरजी कब कहाँ जाती है, इसका उत्तर वैज्ञानिक ढूँढते रहे हैं। अब यह मत प्रकट किया गया है कि वह एनरजी अति न्यून और अतएव लम्बी वेवलैन्थ वाली लहरों के रूप में होती है जिसे नापने के यन्त्र अभी नहीं बने हैं। यह जीरो प्वाइन्ट उर्जा ही कोषो में जीवन के अणु पैदा करती है।

जब दो परमाणु की जीरो प्वाइन्ट इनरजी एक सी हो जाती है तो सहानुभूति प्रतिक्रिया (Resonance) के सिद्धान्त से वे मिलकर द्विगुण या त्रिसरेणु (Molecule) बन जाते हैं। यह फ्रिकुऐन्सी ही मौलीक्यूल के जैन्स [स्वभाव व लिंगादि] निश्चित करते हैं।

भिन्न-भिन्न अनुपात भी भिन्न-भिन्न प्रकार से मिलने पर भिन्न-भिन्न वस्तुओं को जन्म देते हैं। यूरिया तथा अमोनियम साईनेट दोनों में 0:0:N:H का अनुपात 1:1:2:4 है। पर वे भिन्न प्रकार मिले होने से भिन्न पदार्थों का जन्म देते हैं। सो वे ही अणु परमाणु भिन्न-भिन्न योनियों के प्राण बिन्दु पैदा कर देते हैं।

अजीव पदार्थों में अपने को बहुल रूपों में प्रकट करने की प्रवृति होती है। चाहे कारबन से बनी आरगेनिक पद्धति हो चाहे इनआरगेनिक (खानों से प्राप्त पदार्थ)। यह प्रवृत्ति दोनों में ही है। अतः कोषिकाओं में उक्त ऊर्जा विभिन्न प्रकार के जीवन पैदा कर देती है। परमाणुओं में एक प्रकार की चेतना छिपी रहती है जो विभिन्न रासायनिक प्रक्रियाओं से जीवोभूत [प्राणवान] हो जाती हैं। बस इनके लिये सैलों में स्थित जल ही कैटालिस्ट का काम करता है। और जब इन मौलीक्यूलस की परस्पर प्रक्रिया पद्धति ढ़ीली पड़ती है तो Entropy [समाप्ति] के सिद्धान्त अ अनुसार अणु के अणु रह जाते हैं। और पहले तो उनसे कारबोहाईड्रेट और चर्बी इत्यादि बनते हैं। और यदि फिर भी विमुक्त ऊर्जा बची रहती है तो जीवन का अन्त हो जाता है। इन 6 परमाणुओं C-O-H-N-S-O के विभिन्न अनुपात से मिलने पर प्राणबिन्दु [Lifon] बनते हैं और उनमें एकत्रित ऊर्जा से हो हृदय में टिक-टिक होती है। विभिन्न योनियों की दिल धड़कन संख्या [प्रति सैकेण्ड] भिन्न-भिन्न होती है।

ऐबसोल्यूट जीरो टैम्परेचर की स्थिति सैल के अन्दर होने से वह जीवन कायम रखेगी और दिल धड़कता रहेगा। उन्हीं के कारण विद्युत चुम्बकीय प्रकाश किरणें शरीर से निकलती रहती हैं जिनका परीक्षण ऊपर वर्णित किरोलियन फोटोग्राफी प्रकरण में किया गया है।

Condensed from an Acticle entitled ON THE PHYSICAL BASIS OF CONSCIOUSNESS by : Dr. A.C. Chakravarty D.Sc.

Sept 85 issue from Gurukul Kangri University Patrika.

उत्तर पक्ष–इस वार्ता के लेखक चक्रवर्ती जी भी ऊपर यह बात स्वीकार करते हैं कि जब परमाणु विभिन्न अनुपात में विभिन्न रूपों में अपनी जोरो प्वाइन्ट एनरजी के कारण संयुक्त होने लगते हैं तब, उनमें एक प्रकार की छिपी चेतना आकर उस सबको प्राण बिन्दु [लिफोन] में बदल कर जीव संशक बन जाती है। स्वयं अद्वैतवादी होने से वे इसी लेख में आगे आकर उसे छिपे चैतन्य को ब्रह्म कह कर ब्रह्म के जीव बनने का पक्ष भी स्थापन करते हैं। परन्तु यह तो सार्वजनिक चैतन्यता मात्र है जो वृक्षादि सबमें सर्वत्र है। इसके निवास योग्य कोषों का बनना तो वैदिकों की प्रख्यात अमैथुनी सृष्टि है। [तस्माद्वा०············अधिपुरुषो अजायत] ऋचा में यही परिवर्तन क्रय दर्शाया गया है। प्रश्न तो यह है कि इस ऊर्जा में एक विशिष्ट प्रकार और विशिष्ट अनुपात से मिलने का गणित जन्यज्ञान किसका है। जो यह ज्ञान लेकर आता है, वह तो इस मौलीक्यूल से पृथक की ही वस्तु है। और यदि ब्रह्म से है तो सारे निर्मित जीवों में एक सा गुण वैविध्य और पूर्णतया होनी चाहिए और फिर वहां ब्रह्म इनटोपी विसर्जन और विशृंखलन की स्थिति कैसे पैदा करता है। फिर इस प्रकार एक दो जीव शायद बन जावे कोटिशः जीवों के सर्वत्र बनते रहना आकस्मिक [By Chance] घटना कैसे हो सकती है।

ऊर्जा की सत्ता और महत्व से इन्कार नहीं है। वह तो सदैव कार्यरत है। पर उसका कोई नियोजन कर्ता उससे भी पहले होना चाहिये। ऊर्जा का नैरन्तर्य ही तो जीव की अमरता सिद्ध करता है। हजारों सैकड़ों वैज्ञानिक आज तक एक भी जीव बना नहीं पाये हैं। यद्यपि यह सत्य है कि परमाणु की वैलेन्सी से इनआरगेनिक तथा कार्बन हाइड्रोजन आक्सीजन एव नाईट्रोजन के विभिन्न प्रकार और विभिन्न अनुपात में मिलने से आरगेनिक पदार्थ बनते हैं। और उनकी इलैक्ट्रो मैग्नेटिक वैवस से उसमें ऊर्जा आती है। पर जीव-निर्माण इन तीनों से असम्भव है।

एक और हेतुक :—

मनुष्य का शरीर तो भौतिक पदार्थों से ही बना है। परन्तु मनुष्य का आदि स्रोत वास्तव में एक ही शक्ति [इनरजो] ही है। यह शक्ति ही परमाणुओं में गति उत्पन्न करती है। शक्ति की तरंगे निराकार हैं और तभी वे ठोस पदार्थों में भी प्रवेश कर जाती हैं। शक्ति के सात रूप अधुना एक्स-रे गामा रे, इन्फरा रेडरे आदि हैं जिनसे अस्पतालों में आजकल सिकाई होती प्राय: सभी ने देखी है। इसी प्रकार मनुष्य में जो बुद्धि, चेतना, चित्त और विचार प्रक्रिया है वह भौतिक न होकर निराकार शक्ति का ही रूप है। पदार्थ को आंख में से देखने का अर्थ है उस पदार्थ की रैटिना पर बनी प्रतिकृति [इमेज] की अनुभूति होना। बुद्धि पर ज्ञान प्रवाह की छाप पड़ती है। तदन्तर कर्मेन्द्रियां यथावश्यक कार्यरत होती हैं। यह निराकार शक्तियाँ भौतिक शक्तियों से अवश्य उच्च स्तर की होती हैं। वे अनन्त हैं और इसलिये अनादि भी होनी चाहिऐं। अर्थात इस पार्थिव शरीर के पहले से ही विद्यमान होनी चाहिए। और निराकार शक्ति से भौतिक तत्व प्रकट नहीं हो सकते। तो फिर इस भावात्मक निराकार शक्ति से उद्भुत प्राणी मरणधर्मा कैसे हो सकते हैं। वह गूढ़तर शक्ति मृत्यु के बाद भी रहती हैं। शक्ति का कभी नाश नहीं होता। यदि यह आधा शक्ति नाशवान होती तो बहुत पूर्व इस सृष्टि की समाप्ति हो गयी होती। भौतिक और पार भौतिक दोनों शक्तियाँ परिमाण में स्थित हैं, न घटती हैं, न बढ़ती हैं। हां उनका रूप बदलता रहता है। और विकास के सिद्धान्त के अनुसार यह बदला रूप शुभ्रतर ही होता रहता है। अत: मृत्यु के बाद इस शक्ति का दूसरे मनुष्य शरीर में प्रकटीकरण स्वयं सिद्ध है।

जीवन की निरन्तरता का आधुनिक शोध द्वारा ढुंढा दूसरा आधार:-

—: व्यक्ति का स्वभाव :—

पीछे अरविन्द द्वारा चेतना की निरन्तरता के आधार पर जीव के अमर होने का सिद्धान्त वर्णित किया गया है। उसका आधार मानसिक चिन्तन था। वैज्ञानिकों ने मनोवैज्ञानिक [साईक्लोजी] के चिन्तन व खोज के आधार पर एक आत्मिक व्यक्तित्व [Psychic Personality] का पता लगाया है और उसे न निरन्तर अस्तित्व वाला होने से जीव कहा है। शरीर का अध्ययन करते हुये उन्होंने शरीर में शक्ति संगठन को सदैव वर्तमान पाकर उस पर सिद्धान्त स्थिर करने के प्रयत्न किये हैं और उसे अपने पूर्व मान्य विकास वाद से जोड़ दिया है।

इसके लिए मानव शरीर की विकास के प्रक्रिया पर कुछ लिखना आवश्यक है। पौधों और पशुओं के शरीरों में जो रासायनिक क्रिया होती है, उनमें गर्भ [बीज] स्थापना तथा जीन्स [Genes] के साथ जो गुण पैत्रिक रूप से संतान में जाने के परीक्षणात्मक निष्कर्ष हैं। सत्व ही मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व का सिद्धान्त निकाला गया है कि विद्या ही जातिविद्या की विवरण सहित व्याख्या करती है। मनुष्य के रज–वीर्य के सम्पर्क से स्थापित प्रथम भ्रूण मछली के भ्रूण जैसा होता है जिसमें मछली जैसा हृदय तथा किडनी (Kydney) पूंछ तथा हिलाने वाली नाड़ियां होती है। कुछ बढ़कर वह सांप के भ्रूण जैसा होता है, विभिन्न हड्डियां जो पृथक थीं मिल जाती हैं, एक नई किडनी (Mesonephros) बन जाती है और प्रोनोफेरस गायब हो जाता है तथा एटरियम (Atrium) बायें और दायें दो भागों में बंट जाती है। जैसे ही गर्भ बढ़ता हैं उसमें चार वर्गों वाला मानवों जैसा हृदय बन जाता है और तीसरी नई किडनी बन जाती है। और गर्भ के सातवें मास में बालों से ढक जाता है और वह बालक का रुप होता है। (Vilee C.A. Biology W.B. 1957)

यह बड़ी आश्चर्यजनक प्रक्रिया है और सिद्ध करती है कि गर्भ के विकास के साथ उसमें कुछ गुण तो रहते जाते हैं तथा कुछ गुण नये आते जाते है। शायद कच्छ, मच्छ, वराह आदि का ब्रह्म अवतारों का वर्णन न होकर यह गर्भ प्रक्रिया के विकास को ही इंगित करती है। हृदय तो चौथे सप्ताह से हो धड़कने लगता है, जबकि वह पूर्णतया बढ़ भी नहीं पाया होता है। सो शरीर में भी डारविन का विकास लागू हैं और सिद्ध है कि जैन्स के साथ पैत्रिक उत्तराधिकार प्राप्त हर मानव है। अतः जीवन की शारीरिक निरन्तरता भी स्वयंसिद्ध है।

अब इसी आधार पर शक्ति संचालन, वैचारिक और मानसिक निरन्तरता सिद्ध की जा सकती है। मुर्गी के अंडे में बसा बच्चा गर्मी दिये जाने के साथ (After Being Hatched) अपने भोजन के दाने चुगने लगता है। और यदि बत्तख के बच्चे को मुर्गी सेवे तो उत्पन्न बच्चा पैदा होते ही उड़ने लगता है। इनमें यह गुण प्रशिक्षणात्मक अनुभव देने से पहिले ही कहां से आया? इसे स्वभाव Instinct) का नाम दिया गया है। स्वभाव तथा प्रशिक्षण मिलकर ही किसी योनि के बच्चे की कार्य पद्धति का निर्माण करते हैं। इन दोनों का अनुपात मनुष्य में कम तथा पशु पक्षियों में

अधिक होता है। यह स्वभाव जन्य ज्ञान उस योनि के कोटिश: जन्मों में संगृहीत गुणभाव है, जो जैन्स के साथ आया है। अतः इससे भी जीवन की निरन्तरता सिद्ध है।

जो स्वाभाविक उत्तराधिकार है उस पर दार्शनिक उहा-पोह भी की जा सकती है। हर विकास क्रम में कुछ उलझन स्वाभाविक ही उपस्थित रहती है और हर उलझन के बाद विकास होता है। अतः हर स्वभाव जो दृष्टिगोचर होता हैं, कारणवश ही होना चाहिए। अत: हर स्वाभाव मनुष्यों या पशुओं में स्वाभाविक पूर्वगत क्रिया का ही परिणाम होगा और पूर्वगत क्रिया ही बाद में सकारणता में बदल जाती है। गुण तो गुणी ही में रह सकता है। इस स्वभाव में कुछ पूर्वस्मृति का भी योगदान होता हैं। शरीर में प्रगट होने से पहिले ही इस आत्मिक व्यक्तित्व का निर्माण हो चुका होता है। तथा इसी कारण यह भी सिद्ध है कि मृत्यु के बाद यह स्वभाव शरीर का उत्तराधिकारी होता है। आत्मिक व्यक्तित्व का आवरण है। आत्मिक व्यक्तित्व जब इस आवरण को छोड़ देता है तब यह मृत्यु कही जाती है, इसका पुनः शरीर यन्त्र में प्रगट होना ही पुनर्जन्म कहा जाता है। हरेक शरीर में एक अनुभव जन्म के साथ आता है और मस्तिष्क का सारा क्रिया-कलाप इस अनुभवानुसार होता है। प्रोटोप्लाज्म से लेकर पूर्ण शरीर निर्माण तक का भी सारा अनुभव उसमें संगृहीत है। परन्तु आत्मिक व्यक्तित्व के द्वारा वह एक शरीर से दूसरे शरीर मे आता है। अत. स्पष्ट है कि जीवन की निरन्तरता जीवन-मृत्यु पुर्नजन्म उसी आत्मिक व्यक्तित्व के कारण है। और यह चक्र चलता रहता है। यह शरीर धारण का क्रम चलता रहता है जब तक कि यह अपनी मर्यादाओं को पूर्ण रुप से नहीं निभा लेती और भौतिक जगत के आकर्षण से मुक्त नहीं हो जाता और तब यह कौसमस विश्व में समा जाता होगा-मुक्त हो जाता होगा।

विश्व के विभिन्न चक्र (साईकिल) भी यही सिद्ध करते हैं कि जीवन अनन्त है और रूपान्तर लगातार होते रहते हैं। प्रकृति जड़-चेतन बुद्धि का विशाल संग्रहालय हैं जिसमें नष्ट तो कुछ होता नहीं, हाँ क्षण भर मात्र में परिवर्तन होते रहते हैं। उसी को जन्म व मृत्यु कहते हें। अतः मृत्यु से डरना नहीं चाहिए। वह सुखदतर भविष्य को लाने वाली हो सकती हैं।

चेतना सम्बन्धी विचार (Consciousness)

जीवन व मृत्यु एक निरन्तरता का नाम है, यह आधुनिक चिन्तकों का मत है और इस निरन्तरता की कड़ी है चैतन्यता। चैतन्यता मरणोपरान्त भी यथा पूर्व बनी रहती हैं, अतः जीवन व मृत्यु एक ही सिक्के के ही उपरले व निचले पहलू हैं। देश व काल, भार व शक्ति, भौतिक पदार्थ व शक्ति क्षेत्र का भौतिक विज्ञान में जो समीकरण हैं, वही जीवन व मृत्यु में निहित है, एक का दूसरे में परिवर्तन होता है, पर चेतना वही रहती है।

निष्कर्ष :–

आत्मा के उद्भूत विचार से पुनर्जन्म की संभावना युक्तियुक्त हो जाती है। सम्पूर्ण प्रकृति में जीवन संरक्षित हैं तथा सतत नवीनता और परिवर्तन के साथ बना रहता है। जीवन एक शाश्वत प्रक्रिया है। यह कभी विश्राम नहीं लेता तथा सदा एक ऐसी बात के लिए जो नहीं हैं तथा जिसे होना चाहिए, प्रयत्नशील रहता है। जहां प्रगति विज्ञान के स्तर पर योनियों की शाश्वतिकता अनन्त है, पर मानवी स्तर पर मानव के व्यक्तित्व की अद्वितीयता ही अन्तिम स्थिति प्रतीत होती है। यदि प्रकृति में प्रत्येक वस्तु से जो उससे सतत सम्बद्ध है उद्भूत है तथा अन्य किसी रूप में बदल जाती है, तथा साथ ही उससे भी सम्बद्ध रहती है तब आत्मा भी इस सामान्य योजना का अपवाद नहीं होना चाहिए। यदि सातत्य सम्बद्धता की सामान्य व्यवस्था का उल्लंघन नही किया जाता हैं तब व्यक्ति की आत्मा भी मृत्यु के बाद भी बनी रहनी चाहिए।

"आत्मा का लक्ष्य कार्य की पूर्णता या व्यक्तत्व का चरम विकास है। इसके विकास की संभावना अनन्त और विस्तृत है। हम अपनी समस्त शक्तियों का एक ही जीवन में प्रयोग नहीं कर सकते। आत्मा के चरम विकास की क्षमता और सातत्यता का सर्वव्यापी तथ्य इस बात का सॅकेत करता है कि जो आत्मायें पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकती हैं उन्हें अगले जन्म में इसे प्राप्त करने के अवसर मिलते हैं। उत्तरवर्ती जीवनक्रम परस्पर एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है जिसमें एकजीवन के कार्य अगले जीवन के आधार पर और अवसरों का निर्माण करते हैं। भूतकाल में भी व्यक्ति अनेक जीवन मरण के चक्र में से गुजरा है और भविष्य में भी वह अकल्पनीय और असँख्य शताब्दियों का जीवन चक्रों में घूमता रहेगा।

-: पूर्वजन्म की स्मृति का प्रश्न :-

आत्मा के अनादि अनन्त होने से यह स्पष्ट हैं कि वह अनेक बार अनेक प्रकार के शरीर धारण करता हैं। सद्योत्पन्न बच्चे के द्वारा दुग्ध पान की प्रक्रिया बताती है कि उसे यह पद्धति अनुभव अन्य ज्ञान से विदित है। जानवरों के बच्चे प्रथम बार पानी में उतारे जाने पर इसीलिए तुरन्त तैरने लगते हैं। समानान्तर बार [कसरत व जम्नेशियम का एक उपकरण] पर यदि सद्योत्पन्न बच्चे को लटकाया जावे तो वह हाथों से उसे जकड़ लेता है। जिस प्रकार बुढ़ापे का मैं वही हूं जो बचपन में था, यद्यपि शरीर के कोषों का पूर्णतया परिवर्तन हो गया है, इसी प्रकार विभिन्न जन्मों का अक्रम सूत्र आत्मा वही है। कुछ लोग कहते हैं कि पिछले जन्मों की बात भूल जाने से पिछला जन्म असिद्ध है। परन्तु विस्मृति तो इस जन्म की बातों की भी हो जाती हैं, उस से विस्मृत घटनाओं का अस्तित्व असिद्ध नहीं होता। भूल जाना तो ईश्वर का एक वरदान है। यदि दुख मूलक घटनायें सदा स्मृत रहती तो पल भर जीना दूभर हो जाता।

कोटानिकोट मनुष्यों को पिछले जन्म की बात याद न रहने का एक और कारण है। जनसंख्या बढ़ते रहने की बात हमने अन्यत्र लिखी है। यह अधिक आत्माएं पशु योनि से लौटी हुई है। पशु को तो अपने जन्म में ५ मिमट पहिले की भी बात याद नहीं रहती हैं। अन्यथा बलि-पशु अपने कसाई के साथ अविरोध कैसे चला जाता है। फिर जन्नान्यर में पशु योनि से आये जीव पिछले जन्म की बात कैसे याद रख सकते हैं। हां स्वप्न में यदा कदा ऐसी घटनायें उभर आती हैं। लिखित इतिहास में जातक कथाओं में भगवान बुद्ध ने अपने पशु योनि वाले जन्मों की घटनायें अवश्य वर्णित की हैं। पर वे उनके शिष्यों की लिखी हुई कथाएं है। उनके सत्यासत्य पर कुछ कहा नहीं जा सकता। इधर गीताकार ने कृष्ण जी के मुख से यों कहलवाया है :—

बहूनि में व्यतीतानि जन्मानि तब चार्जुन। तान्यहं वेद न त्वं वेत्थ परंतप।
१४/५

पूर्वजन्म की स्मृतिपरवाङ्.मय से उद्धरण।

हिन्दू शास्त्रों ने यह पक्ष लिया है कि पवित्र आत्माओं को पूर्वजन्म की घटनाओं की स्मृति बनी रहती हैं।

अ-मनुस्मृति ४/१४८-१४६ में

जो शरीर ब मन से पवित्र हैं वह पूर्वजन्म की बातें स्मरण कर सकता हैं बशर्ते वह वेदाध्ययन तथा तप पूर्ण जीवन बिता रहा हो।

ब- पातन्जलि का योग दर्शन २/१८

संस्कार साक्षात्करणात् पूर्वसाति ज्ञानम्

में भी यही भाव हैं। योगी का मानव पटल निर्मल हो जाता है तथा वह युगपत ज्ञान प्राप्त करता है।

स- ऋग्वेद ६/११७/१

गर्भे सन्नानवेसम्............ नृद्यम

योगस्थ आत्मा अपने बारे में कहतो है-मैं माता के गर्भ में इन अंगो के विभिन्न जन्मों के विवरण को जानता हूं और धायवत विभिन्न ही योनियां मेरी रक्षा करती हैं। परन्तु अब मैं उन सब बातों को विस्मृत कर चुका हूं। संकेत हैं कि गर्भ तक तो स्मृति रहती है।

द- गर्भोपनिषद में भी यह बात दुहराई हैं। इस पर समीक्षा यास्काचार्य निरुक्त के एपेन्डैक्स में कहते हैं कि वैष्ण नेन वायुना संस्पृष्ठेन ना स्मृति पूर्वजन्म कृत्याकृत्यम् कि जन्म लेते समय वैष्णव वायु से संस्पर्ष होने के कारण बच्चा अपनी पूर्वजन्म गाथा भूल जाता हैं।

य-धन्वन्तरि अपने शरीर शास्त्र [२/१०७] में कहते हैं—

भवन्ति सत्वाभूइष्ठः पूर्वजातिस्मरः नराः कि सत्यनिष्ठ लोग पूर्व जन्म की बात जान सकते है। यों पातन्जलि ने योगदर्शन में कहा है कि यदि अपनी आत्मीय चेतना पर सीधे ध्यान जमाओ तो पिछले जन्मों के कर्मों का क्रम देख सकते है, पर क्रमबद्धता की गारन्टी नहीं है। घटनाओं का क्रम Permutation Combination से उलट पुलट और अस्त व्यस्त हो सकता हैं। यही बात स्वप्नों के बारे में है जो कभी न कभी अनुभव नहीं किया हैं, वह स्वप्न में भी नहीं आ सकता। हां क्रम की उलट पुलट से घटना असम्भव सी लगती है।

पूर्व जन्म की घटना जानने की व्याकुलता लेकर मन से और सब भाव निकाल दें तो धीरे-धीरे सिनेमा की रील की तरह अपना भूतकाल दीखने लगता सम्भव है, डाक्टर पंडित कन्नया योगी अध्यक्ष [अथम योग सान सभा मद्रास–५३] ने इस पद्धति से अपने भूत का ज्ञान प्राप्त किया और इसे जाँचने पर सत्य पाया।

-: पुनर्जन्म पर स्मृति नाश के बारे में एक स्पष्टीकरण :-

यों तो हम इस जन्म में भी बालकपन की या कुछेक वर्ष पूर्व की घटनायें याद नहीं रख पाते हैं हां याद दिलाने पर घटनायें उभर आती हैं। उसी प्रकार इस बरदान को साथ लेते हुए पुनर्जन्म में घटनाओं का निचोड़-रूझान व स्वभाव बनकर आत्मा के साथ रहता ही है। विशेषतया बालकपन में!

परन्तु वैज्ञानिक और विशेषतया मनोवैज्ञानिक विशेषज्ञ इस पर यह समालोचना करते हैं कि रूझान या स्वभाव जो कि विकास शील उम्र में बच्चों में दीखते हैं, वे तो माता-पिता या पूर्वजों के स्वभावानुसार रक्त क्रम [Heridity] के कारण हैं परन्तु वैज्ञानिक आगैस्ट विसमान [August Weismann] ने यह सिद्ध किया कि कोई जीव योनि [Organism] कोई जन्मजात रूझान या स्वभाव रक्त के साथ नहीं ला सकती जब तक कि इसमें इन रूझान या स्वभाव को अपना लेने की पूर्व से रूझान न हो। [An organism can not acquire any thing unless it has predisposition to acquire it.] और यह पूर्व मे स्थापित रूझान तो जन्म से पूर्व के किन्हीं अदृष्ट कारणों से ही हो सकती हैं। अतः निश्चित होता है कि मानसिक रुझान, स्वभावज गुण भाग्य आदि पिछले जन्मों में संगृहीत अनुभवों के आधार पर ही निर्मित होते हैं। हां जो स्थूल पार्थिव है, जो कि माता-पिता के रज वीर्य से मिला है, उस शरीर में उनके गुण हो सकते हैं। यथा पुष्ट शरीर, कमजोर शरीर, रोगी शरीर या अंगहीन शरीर। कुछ उपनिषद्कारों का तो यहाँ तक मत है कि शरीर के गुण दोष भी पूर्वजन्म की प्रवृत्तियों के अनुरुप होते हैं जैसा कि प्रवाहण जैवाली और याज्ञवल्क्य के संवाद में वृहदादण्यक औरछान्दोग्य उपनिषद में कहा गया है। वहां मृत जीव के चन्द्रलोक जाने और फिर वहां से लौटने का वर्णन हैं जो पद्यात्मक उपमा-उपमेय से मिला हुआ वर्णन मात्र है. तात्पर्य है कि स्वभाव संस्कार निर्मित होकर आत्मा से दैवीय व्यवस्था से मढ़ दिये जाते हैं। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि इस जीवन का अनुभव और चिन्तन भी मनुष्य की आकृति को वैसा ही ढाल देता है।

फुटकर विचार :-

१- भौतिक वादियों की मान्यता है कि आत्मा मात्र पार्थिव बस्तु है या पार्थिव पदार्थों का परिवर्द्धित संस्करण है जो उनके परस्पर विभिन्न अनुपात

मैं मिलने से बना होना चाहिए। तब तो आत्मा इस विभिन्न समुच्चय और समीकरण का नाम हुआ न कि भौतिक वस्तुओं का। तो भौतिक वस्तुएं निष्कर्षतः उस आत्मा का निवास स्थान मात्र ही हुई और द्वैत सिद्ध हो गया।

२– मनुष्य में जो करुण का भान देखा जाता है, उसी से दैव की करुणा का अस्तित्व माना जाता रहा है।

इसी प्रकार हर योनि के प्राणी में यह भाव और महत्वाकांक्षा हैं कि वह दीर्घजीवी और अमर हो। इसी महत्वाकांक्षा की सर्वत्रता ही आत्मा के अमरत्व को सिद्ध करती है।

इसी प्रकार अभिनिवेश अर्थात मृत्यु का भय सभी जीवों में एकता दिखाई देना सिद्ध करता है कि हरेक पहिले मर कर दुखी हुआ है।
१– कष्ट और दुखों में पवित्रता तथा बुरे और पापियों में देखी जाने वाली सम्पन्नता का कारणकृत के फलाफल के सिद्धान्त से ही हल हो सकती है। क्योंकि प्रभु तो सदा दयालु है।

४– कीड़े मकोड़ो में एक जन्म में ही देखे जाने वाला परिवर्तन द्रष्टव्य है। एक पृथ्वी पर चल गर्भ से आकाश में भ्रमण करने वाली तितली तो सभी ने देखी हैं। ऐसे ही स्थिर भ्रुण से चल मानव के जन्म का दृश्य हैं। इससे योनि परिवर्तन की प्रक्रिया प्रत्यक्ष सिद्ध है।

५– चिन्तन को सारी प्रक्रिया अमर होती है। स्मृति, अनुमान, प्रेम अन्तरात्मा की आवाज, अंत प्रेरणा आदि समय से बधी नहीं है, कि एक बार आकर रह जावें। वे अमर हैं। उन्हें न रोग होता है न वे पुरानी पड़ती हैं। और न ही वे टूट कर खंड-खंड होती हैं। न यह कह सकते है कि उनकी आयु एक वर्ष एक शताब्दी या एक हजार वर्ष की हैं या वे कभी समाप्त हो जावेंगी। वे चिर तथा अमर हैं। उसी प्रकार आत्मा अमर है।
Dr. J. Marleneau LLD का विचार
[From Book Science & Religion Page 165]

६– यह भौतिक शरीर एक यन्त्र ही है जिसके माध्यम से विचार और प्रेमादि का उन्माद प्रगट होता है। यह एक प्रकार की टेलीग्राफ लाईन है जिसमें अन्दर स्थित आत्मा की आज्ञाए तुरन्त फैल जाती हैं। जब यन्त्र

टूट सकता है, इसका डायल अस्त हो सकता है तो आत्मा से सन्देश आना बन्द हो सकता हैं तो परमात्मा में विचारों की पूंजी तो अविरल सुस्थापित है। ज्वर की स्थिति में नस नाड़ियाँ गरम हो सकती हैं पर सद्बुद्धि और पवित्रता मुथरी ही पड़ती है। और प्रेम को न तो अपचय नष्ट कर सकता है, न शरीर की टूट-फूट उसे पंगु कर पावेगी और न गोला बारुद उसे खंड-खंड करने में शक्य है। इस गुणों को व्यवस्थित रखने वाली आत्मा ही है। जैसे इन्हें अक्षुण्ण बनाये रखती है। अतएव आत्मा अमर है।

आत्मा का अस्तित्व और पश्चिम का परामनोविज्ञान

सनातन ईसाई धर्म की अनात्म विषयक मान्यताओं को यूरोप में ही सृजित इस नये विज्ञान ने चैलेन्ज कर दिया हैं। आत्मा के अस्तित्व को मानने वाला चर्च अब पृथक नगर में स्थापित हो गया है। उनका कहना है कि मृत्यु के बाद कुछ अवश्य बचता है और वह Spirit है अतः उन्हें Spiritualist कहते हैं । उनकी मान्यताओं का केन्द्र निम्न पद्धतियां है जिनके माध्यम से वे मृतात्माओं को बुलाते हैं । इन पद्धतियों से एक पूरा विज्ञान विकसित हो रहा है और यहां तक कि लंदन से Pschycie News नामक पत्रिका निकलती है।

उनकी प्रवृत्ति तीन धाराओं से सिद्ध है :—

१– Magnetism and will Power

२– अभिमर्श और मार्जन Mesmarism

३– आदेश [Hypnotic Suggestion]

किसी व्यक्ति को इच्छा शक्ति से माध्यम बना लेते हैं। फिर वह माध्यम (Medium) आत्मा को बुलाता है। वह माध्यम मृत आत्मा के द्वारा दिये गये उत्तर प्रश्नकर्ता जीवित संबंधी को बता देता हैं। इस प्रकार कई छिपे हुए राज खुले है। तथा अनेकों बिछुड़े लोगों को मृत संबंधियों से सम्पर्क का सुख मिला है।

मृत व्यक्तियों से सम्पर्क :-

Spirit Communication अर्थात् मृतात्माओं से संदेश अवर्जन की प्रणाली 1848 ई० में अमेरिका में प्रारम्भ हुई थी। फोक्स बहिनों की उपस्थिति में Hyduerlly : Wayne County न्यूयार्क राज्य में इसका पहिला प्रकाशन हुआ था और उसी के आस-पास यह कार्य फ्रान्स, इँगलैण्ड, प्रभृति अन्य योरूपियन देशों में प्रारम्भ हुआ था। और आज उसके संस्थान

आस्ट्रलिया, कनाड़ा, मिश्र, न्यूजीलैण्ड और दक्षिण अफ्रीका में भी स्थापित है। इसका अधिकृत वर्णन पत्रिका Psychic News के सम्पादक द्वारा दिनांक 21 दिसम्बर 85 को लिखे लेख से संक्षिप्तीकृत करके उद्धृत करते हैं।

Modorn spiritualism began in humble surroundings. It is 1848. The scene is Hydesville, America.

A John David fox, his wife and two daughters Catherine, 12 and Margaretta, 15, moved in to a simple wooden home.

The femily were frequently disturbed at night. Sounds of furniture being moved and knockings on doors and walls were incessent.

With the passage of time the noises became even more alarming. The family heard strange gurgling sounds es if someone were being chocked to death and a body falling to the floor. Eventually. the foxes decided the house was haunted,

On March 31, the foxes went to bed early to try and catch up with some sleep.

Mr. fox shook the window sashes. it being a bloak and cold niget, snow having fallen,

Young Cathy noticed that the rapping sounds seemed to respond Every time her father shook a window the raps imitated the number.

The children by using raps established contact with a spirit communicator who claimed to be a pebdar named Charles B. Roshna

The spirit being said he murdered by Jehn C. Bell a blackmith who lived in the Eoxes house at the time he disappeared.

In the summer of 1848, the Foxes dug up their cellar at a place, indicated: Finally, they located human hair, part of a skull and bones.

Around 50 years later school children found human remains apparently embedded in the crumbling walls.

On further investigation, a perfect skelton minus part of its skull was located......anb a pedlar's tin,

News of the rapping soon spread far and wide. It heralded the birth of modern spiritualism,

What separates spiritualism from mainstream religeon is that we believe first human kind survives death, secondly we can communicate with the scalled death, and lastly there is nothing inherently wrong in estebiishing Otger-side communication.

At the heart of spiritualism's ministuy lie its mediums.

Such individuals are folk gifted wita psychic gifts like clairvoyence and clairaudienece. Thls means medinm either 'See' or Hear) spirit beings.

Having read many testimoniels from peopls who attended materialisation sesances, I cannot doubt that in days gone by the dead did indeed appear and were eble temporaily to duplicate their physical forms.

These days, clairvoyance and clairaudience are the two most common gifts to be demonstrated.

इसी प्रकार प्लेन चिट बनाई गयी हैं । यह एक तीन पैर की छोटी मेज है जिसका एक पैर कुछ छोटा होता है । उस पर जीवित व्यक्ति हाथ रखता हैं और फिर वह मृत आत्मा को बुलाता है। उस आत्मा से प्रश्न किया जाता तथा हाथ के प्रैशर से मेज में टिक टिक होती है और प्रश्नों के उत्तर मिलते जाते हैं।

इसी प्रकार बिना दवाईयों के उपचार Healing फी प्रक्रिया समुन्नत हुई है। आत्मा पर प्रभाव डालके शारीरिक रोग दूर किये जाते हैं।

इन सारी प्रक्रियाओं का मूल स्रोत शरीर से पृथक आत्मा के अस्तित्व को मानना हैं जो अनश्वर है । और इच्छानुसार मृत व्यक्ति की आत्मा प्रेमावेश में बुलाई जा सकती है, चाहे वह निर्विकार घूम रही हो और चाहे कही जन्म ले लिया हो । जन्म लिये की आत्मा का एक भाग रुक जाता है और एक आहूत हो जाता है।

ब) मृत व्यक्तियों के ध्यान मग्न अवस्था में मीडियम द्वारा खींचे फोटो—

इस प्रक्रिया का विकास भी पश्चिम के देशों में हुआ है। स्व० फ्रैन्कलीन इस कला के उपोद्घात कर्ता थे। उसका कथन था कि मृत व्यक्ति की आत्मा उसके सामने आकर खड़ी सी हो जाती थी और वह ड्राइंग से फोटो बनाता जाता था। वह फोटो बनवाने के इच्छुक जीवित सम्बन्धियों को फोन करने हेतु एक निर्धारित समय बता देता था। ड्राइग में आंख, पलक, तिल आदि से व्यक्ति पहिचाना जाता था। एक मृतक को फोटो ड्राइँग बनने में लगभग ९ से ३७ सैकेण्ड लगते थे। लन्दन के Kingswell में हजारों व्यक्तियों के सामने उसने १९५७ में अपनी कला का प्रदर्शन भी किया था।

इसके बाद श्रीमती कोरल पौलीगे ने यह कार्य संभाला। उसका कहना था कि ड्राइंग खींचते समय उसकी चैतन्यता मृत की चैतन्यता से अविर्भूत हो जाती थी एक इटैलियन व्यक्ति ने उसके पास जाकर अपनी दादी का सफल फोटो खिचवा लिया फिर १९७० में मैथ्यू नामक युवक ने यह कार्य प्रारम्भ किया। तदन्तर लुइजगा स्पैरेटेक नामक ब्राजील के एक नागरिक ने १९७८ में बी. बी. सी. पर एक प्रदर्शन प्रस्तुत किया। उसने लगभग ६००० फोटो बनाये है। वह लिखता हैं कि अबिर्भूत होते ही उसका शरीर गरम होता जाता है और शरीर में बिजली की लहरें सी दौड़ने लगती है। ऊर्जा छाती से चलकर हाथों में जाती लगती हैं, मेरा मेरी नस--नाड़ियों पर कन्ट्रोल नही रहता है मानों उन्हें कोई उद्वेलित कर रहा हो। ऐसा लगता है किसी ने मेरे मस्तिष्क को जकड़ रखा हो।

इस व्वक्ति ने कभी हाथों के अलावा पैरों की उंगलियों से भी ड्राइंग खींची हैं। इसके प्रदर्शन बिट्रेन में टी० वी० पर भी हो चुके है। वह 13 भाषाओं में ट्रान्स अवस्था में बात कर लेता है, जैसे देश की भी आत्मा बुलाई गयी हो।

[पत्रिका Psyshe News Date 28-11-85 के एक लेख से
Condinsed and Translated]

३— आत्मा की अमरता की सिद्धि के उल्टे प्रयत्न।

हिप्नोटिज्म से इस जन्न के पूर्व के जन्म की खोज

योरूप और अमेरिका में Spiritualist आन्दोलन यह लेकर चला है कि शरीर से पृथक शरीर की अधिष्ठाता जो स्पिरिट नाम की सत्ता हैं, वो

मरणोपरान्त भी सदैव बनी रहती है। वहां गाईड [Guide] संज्ञक कुछ व्यक्ति हैं। जो ध्यानावस्थित हो जाने पर स्पिरिट लोक की बात बताने का उपक्रम करते हैं। एक दूसरी पद्धति है कि जब एक आत्मा बुलानी होती है तो मृत व्यक्ति के किसी सम्बन्धी को सबजैक्ट बनाकर उसे मानसिक वार्ता के प्रभाव से बेहोश सा कर देते हैं और तब अन्य पारिवारिक जन उससे उस आहूत आत्मा के सम्बन्ध में प्रश्न करवाते हैं। वह सबजैक्ट उत्तर देता है। उन उत्तरों की फिर छानबीन होती है। कई बार तो पुलिस भी इनकी सहायता लेकर अनेक कत्ल के गुप्त मामलों को सुलझाने में सफल हुई है। हिपनोटिज्म की इस पद्धति पर हैलेन वामबच [Helen Wambach] ने एक पुस्तक लिखो जिसका नाम है [Lfe Before Lfe जीवन से पहले का जीवन] इसमें केवल वे ही प्रश्नोत्तर संगृहीत हैं जो हिपनोटिज्म सबजैक्ट में आहूत आत्मा से इस विषय पर पूछे गये थे कि गत जीवन में पैदा होने से पहले वह क्या था ? पुस्तक कार ने इस प्रकार के आहूत 750 आत्माओं से गन्हीं प्रश्नों के उत्तर संगृहीत किये कि उसने तब प्रश्न पूछे गये जबकि उनकी मानसिक प्रक्रिया केवल 5 साईकिल प्रति सैकिन्ड की वैवलैन्थ [Wavelenth] पर थी। इसमें से 40 प्रतिशत तो ऐसे कोई संस्मरण नही सुना सके जिनमें जन्म से पूर्व की स्थिति पर प्रकाश पड़ता। मर कर फिर जन्मने के सिद्धान्त में यह बात अभिनिहित है कि इस जन्म से पहले भी कोई जन्म अवश्यम्भावी है बशर्ते है कि कोई बिल्कुल नया जन्म न होता हो जो कि असम्भव है क्योंकि नये शरीर निर्मित होने हैं, नई आत्मायें नहीं। हाँ यह तो सम्भव है कि पूर्व जन्म रहित पर जन्मने वाली आत्मायें पंच भौतिक शरीर पहले न धारण करके एक या दो या तीन या चार भौतिक तत्वों से बने शरीर में हों [या मुक्ति से लौटी हों–शाध कर्ता] इस लेख ने एक सुझाव यह भी दिया है कि एक स्पिरिट [आत्मा] का पूरा भाग पुर्नजन्म न लकर कुछ अश ही जन्म-मरण में आता रहता है और शेष भाग जो शुद्ध है, जन्मते भाग पर शासन करता है। पर यह शायद उस सैमेतिक मान्यता का अवशेष है जो कहती है कि हर आत्मा का एक अधिष्ठाता घोस्ट [Ghost] होता है सिल्वर बीच नामक प्रख्यात मृत स्पिरिट की मान्यता है कि एक व्यक्तित्व के कई अंश फूटकर कई जगह जन्म ले सकते हैं ताकि जीवन के उतार-चढ़ाव से यत्र-तत्र अनुभव प्राप्त करते हुए उन्नततर होते जावें।

गर्भ स्थापन के बाद आत्मा आकर प्रारम्भिक शरीर में कभी तो तुरन्त और कभी कुछ माह बाद निवास करने लगती हैं। वह समय उस आत्मा की परिपक्वता के अनुसार ही होता है। गर्भ की झिल्ली से आत्मा नली द्वारा

जुड़ जाती है। आत्मा घूमती रहती है और जन्मते समय उस शरीर में घुस जाती है। गर्भावस्था के सारे समय में आत्मा अपने पिछले जन्म की सब बातें याद रखती है। जन्मान्तर कुछ समय बाद तक आत्मा दोनों शरीरों की सुधि में अलसाई रहती है। हाँ अपरिपक्व [कर्म की दृष्टि से] आत्मायें पेट में (गर्भ की झिल्ली में) जन्म समय से बहुत पूर्व प्रवेश करके अपने पूर्व जन्म की सुधबुध खो बैठती है। गाइडों ने बताया है कि जन्म के दस दिन या कभी-कभी तीन सप्ताह तक आत्मा पूर्व जन्म की योग्यताओं सहित बनी रहती है। तदन्तर उसकी इस जन्म की स्वतन्त्र इच्छा शक्ति का कार्य प्रारम्भ होता है। क्योंकि हर पुर्नजन्म का उद्देश्य या तो संसार की उन्नति हेतु कुछ योगदान करना होता हैं, उसे पूरा करना होता है। अति% अपने पुर्नजन्म की योनि जीव स्वयं चुनता है। शायद अन्य आत्मायें उसे कुछ एतद्विषयक परामर्श देती हों।

सबजैक्ट से पूछा गया कि तुम जो पुर्नजन्म लिये थे उस जाति-योनि-परिवार को तुमने चुना था या किसी और से परामर्श लिया था तथा वह परामर्श दात्री आत्मा तुमसे किस प्रकार सम्बद्ध थी। तो 81 प्रतिशत ने तो कहा कि उन्होंने स्वयं चुनाव किया था। इनमें से बहुतों को परामर्श भी मिला बताया गया। और 28 प्रतिशत ने कहा कि उनका स्वयं का निर्णय था कि पुनः पैदा हो, किसी ने चुनाव करने को नहीं कहा। और लगभग 3 प्रतिशत ने कहा कि उन्होंने परामर्श के विरुद्ध अपना स्वयं निर्णय किया था। लगभग 19 प्रतिशत ने कहा कि वे न तो पुर्नजन्म लेना चाहती थी और उन्हें याद नहीं कि उन्होंने कोई चुनाव किया हो। लगभग 51 प्रतिशत ने कहा कि एक से अधिक परामर्शदात्री आत्मायें थी। लगभग 10 प्रतिशत ने परामर्श देने वाला उनको बताया जो इस जन्म में पैदा होने पर ही उनसे परिचित हुई। [वे उसके मृत माता-पिता या सम्बन्धीं थे जो प्रश्नोत्तर वाले दिन से पहले मर चुके थे [अर्थात परामर्शदाता जीवित या मृत दोनों ही हो सकते थे। लगभग 41 प्रतिशत ने कहा कि वे परामर्श दाताओं को नहीं पहचानते।

[पत्रिका Two Words :—Head quality publishing company hld 203–ए Uxbridge Road hondaw 139AA के जुलाई 1985 अंत में Gandaff का लेख पृष्ठ 8 से 12 तक से संक्षिप्तीकृत तथा अंक अगस्त 85 के पृष्ठ—26 पर]

४- रैवरेन्ज नारयन विनसेन्ट पाल का तर्क :-

अमेरिका के उक्त विख्यात चर्च मिनिस्टर ने ऐक पुस्तक लिखी है- The joy of positive living [प्रकाशक Worlds Work Limtied] ने अपने दिवंगत माता पिता और भाई से क्लैरवायेन्स पद्धति से सम्पर्क कायम करके जीव की अमरता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। अपने उक्त जीवन चरित्र में उसने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि मृत्यु के उपरान्त उन्नततर ऐवं सुखतर जीवन प्रारम्भ होता है।

वह लिखता है कि गर्भस्थ शिशु से उक्त बार्तालाप की कल्पना कोजिये। उसे सुझाईये कि गर्भस्थ जीवन का अन्त होने वाला हैं क्योंकि वह उस जीवन से मुक्तिपा गर्भ से बाहर आने वाला है। शायद वह यह कहे कि गर्भ में वह ठीक है, उसे बिना प्रयत्न किये भोजन, प्यार और सुरक्षा मिल रहा है। परन्तु गर्भ से बाहर आना अवश्यम्भावी था। वह बाहर आकर एक अति सुन्दर मुखाकृति देखता है और उन आँखों को देखता है जो प्यार से निहार रही होती हैं और दो स्पर्शोन्मुख बाहें उसे उठाकर अक में लिपटा लेता हैं। वह निश्चित होता है यदि आप उसकी भाषा जानते हों तो अवश्य सुनते कि पिछले गर्भस्थ जीवन से जो समाप्त हो गया है, यह कई गुना अच्छा जीवन है। यह ईश्वर की असीम अनुकम्पा है। वर्षों बाद वह बड़ा होकर युवा और वृद्ध होता है। तथा मृत्यु निकट आती दिखने लगती है। वह इस जीवन से जाना नहीं चाहता, परन्तु प्रकृति के नियम अटल हैं। अब भला सोचिये कि प्रकृति का जो नियय उसे सुखतर बनाने के लिये गर्भ से बाहर लाया था क्या उसकी मृत्यु के समय प्रभु की दयालुता का नियम पलट जायेगा। मृत्यु के बाद और अधिक सुखतर जीवन मिलना प्रकृति के नियमों के अनुसार है। प्रभु की अनुकम्पा का निर्झर उल्टा थोड़े बहेगा। ऐसा नहीं होगा। निष्कर्ष स्पष्ट है कि मृत्यु के बाद वह रहेगा तथा इस पार्थिव जीवन से अधिक सुखतर जीवन उसका बाट जोह रहा है।

[पत्रिका साईकोक न्यूज सितम्बर ७, सन् १९८५ पृष्ठ ७ से संक्षिप्तोक्त]

प्रत्यक्ष प्रमाण :--

इस अध्याय या बौद्धिक प्रमाणों के बाद प्रत्यक्ष प्रमाण पर विचार करना शेष हैं। आत्मा की अमरता पर सबसे प्रत्तक्ष प्रमाण अपने से ही पूछा हुआ एक प्रश्न है कि आप कैसे जानते हैं कि आप आप ही हैं। अर्थात् आप को कैसे पता कि आप वही व्यक्ति हैं जो गत रात्रि सोया था।

पहिले आप अपने भाई पर घटाईये कि जिसे वर्षों पहिले देखा था, और अब वह मोटा हो गया है, दाढ़ी मूंछे बढ़ गई हैं और आंखों पर चश्मा न होकर अन्दर कन्टैक्ट लैंस लगा दिये हैं। उसके शरीर के सब कोष नये हो चुके है क्योंकि वे तो बड़ी तीव्र गति से नष्ट होकर पुनः उत्पन्न होते रहते हैं। परन्तु इन सब परिवर्तनों के बावजूद एक कुछ है जो नहीं बदला है और तभी हम भाई को पहिचान लेंगे। यही बात अपने पर लागू है। मैं बीस पूर्व पूर्व था, वही अब हूं यद्यपि डील-डौल हुलिया और शरीर के सब कोष बदल गये हैं।

और पूर्व स्मृतियां अपनी संगृहित हैं उन सारे अनुभवों का ही योगफल तो मैं हूँ। तो शायद मैं स्मृति ही हूं। पर स्मृति तो विस्मृत हो जाती है। अल्पबुद्धि और पागल व्यक्ति जो सब कुछ भूले बैठा हो, जीवित है।

स्पष्ट है कि मैं न शरीर हूं न स्मृति। अतः पहिचान का स्रोत इस शरीर में बाहर से आकर बैठा हुआ कोई एक है। यह अध्यक्ष ही आत्मा है जो सदा रहता है और स्वतन्त्र है! शरीर के स्वतन्त्र होने से शरीर से साथ उसका नाश नहीं होना चाहिये। बस जीव का आत्मा का अस्तित्व प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है। तो भी पुनर्जन्म के देश विदेश से कुछ लिपिबद्ध प्रमाणिक उदाहरण वहां देना समीचीन होगा।

प्रत्यक्ष प्रमाण (भारत के बाहर) :-

पुनर्जन्म की झेंप मिटाने के लिए भारतीय विद्वान पैरा नारमल फिनामिला [Paranormal Phenomenon] अप्राकृतिक घटना कहते हैं। इस पर वे १०० वर्ष से अनुसन्धान कर रहे हैं। उनके नाम यों हैं :-

१– सर विलियम बारनेट [१८४४-१९२५]
२– सर ओलीवर लाज [१८५१-१९४४]
३– सर विलियम कुक [१८१३-१९१९]
४– अल्फ्रेंडरसेल्ट वालेस [१८२३-१९१३]
५– अमेरिका में वरजीनिया विश्वविद्यालय के श्री ईवान स्टीवेन्सन

इन्होंने ६०० घटनायें ऐकत्रित की जिनमें अधिक लेबनाम की हैं। इन्ही के निर्देशन में कुमारी डा० सतमन्त पसरीचा ने रिसर्च करके मनोविज्ञान संस्थान निमेहंस में ४५ पुनर्जन्म के मामलों में शोध करके डाक्टरेक्ट बंगलौर विश्वविद्यालय से प्राप्त की है। उसके दर्शाये गये कुछ भारतीय उदाहरण इस प्रकार हैं :-

[१] डा० पसरीचा के अनुसंधान के समय मालती शंकर जिसका पुनर्जन्म का नाम कृष्णा था [जो अब कृष्णा ही पुकारी जाती हैं] का मामला इस बारे

में बड़ा टिपिकल है । २ वर्ष की आयु होने पर मालती ने यह कहकर अपने माता को स्तब्ध कर दिया कि वह यहां से ४ मील दूर चमोली की रहने वाली है। मेरा पिता पान बेचता है । उसने अपने परिवार और मृत्यु का विस्तृत विवरण दिया । मालती ने कुछ रोआंसा होकर बताया कि वह भगवान महादेव पर जल चढ़ाने के खिये कुएे से पानी भर रही थी कि उसका संतुलन बिगड़ गया और वह कुऐ में डूबकर मर गई। मालती के मां बाप ने इसे बड़बड़ाना समझकर कुछ ध्यान नहीं दिया।

परन्तु एक दिन बलदेवराज नामक चमोली गांव का ही ऐक व्यक्ति मालती के गाँव पासौली किसी काम से आया । मालती ने जो बाहर खेल रही थी इस व्यक्ति की साईकिल पकड़कर चाचा कहना शुरु किया । बलदेव राज के यह कहने पर कि वह उसे नहीं जानता, मालती ने उसके परिवार की ऐक ऐक बात बताकर उसे हैरानी में डाल दिया ।

बलदेब ने यह बात जाकर मालती की मां से कही । वह उत्सुकतावश पासौली आई । मालती ने ऐकदम अपनी मां को पहचान लिया और उनकी गोदी में चढ़कर रोने लगी । वह परिवार के अन्य लोगों से भी मिलकर रोई । उसने उन सबके प्रश्नों के बड़े सही उत्तर दिऐ और सबको विश्वास हो गया कि यह बच्ची पूर्व जन्म की कृष्णा ही है ।

डा० पसरीचा ने मालती से भेंट की जब वह साढ़े तीन वर्ष की बच्ची हो गई थी । उस समय भी मालती अपने पूर्वजन्म के भाई से जिस प्रकार गले मिली उससे भाई बहिन के संबंधों में जो तार होते हैं उनका पता चलता था । मालती ने २३ बातों के उत्तर दिये जिनमें १६ पूर्णतः सत्य निकले ।

[२] अवतार सिंह ने जो केवल तीन वर्ष का ही था, अपने पूर्वजन्म की बातें बताकर अपने सम्पन्न और सुनिश्चित परिवार को स्तब्ध कर दिया । उसने बताया कि उसका नाम करतार सिंह था तथा वह रावलपिण्डी [पाकिस्तान] में मजिस्ट्रेट था । उसने बताया कि वहदिल के दौरे से मरा । उसने अपनी अन्त्येष्टि का भी विवरण दिया । ३ वर्ष की आयु में अन्त्येष्टि की बात विस्मयकारी थी ।

उसके कुछ दिनों बाद उसके पिता रावलपिण्डी गये । उसने उन्हें अपना पुराना मकान दिखाया तथा तब से अब तक हुए परिवर्तनों का भी उल्लेख किया । यद्यपि अवतार ने ६ वर्ष के बाद अपनी पूर्वजन्म की बातें करना बन्द

कर दिया था फिर भी उसे पुरानी बातें याद रही। एक दिन उसने अखबार में अपने पूर्वजन्म के पुत्र का चित्र देखा तो उसके मुख से निकल गया अरे ! अब इतना बड़ा हो गता है ? पूर्वजन्म की स्मृति वाले वालकों का व्यवहार कभी-कभी बड़ा विचित्र लगता है पर उसके पूर्वजन्म के परिप्रेक्ष्य में इसे देखा जाय तो वे स्वाभाविक लगेंगी। उनमें शुरु से ही किसी वस्तु के प्रति भय, जिज्ञासा, स्नेह, घृणा भाव देखे जा सकते हैं। इन सबको अपने पूर्वजन्म के नाम याद थे। कुछ मामलों में नये जन्म में उनके शरीर पर पूर्वजन्म से सम्बद्ध घटना के चिन्ह तक देखे गये।

[३] डा० पसरीचा ने सुनीता शर्मा नाम की एक लड़की के मामले की भी जांच की। सुनीता की दादी एक बार कहीं शोक प्रकट करने पास के गांव में गई तो सुनीता को भी साथ ले गई। सुनीता घर के बाहर खेल रही थी। उसकी आयु २-२½ वर्ष की थी। उसने एक औरत को पास आते देखा। उसे देखते ही वह चिल्लाते हुए घर के अन्दर भागी और दादी से यह कहते हुए लिटप गई कि मुझे बचाओ और नई औरत की ओर ईशारा करते हुए कहा कि यह औरत मुझे मार देगी। उसने जब कभी भी उस औरत को देखा उसे बुखार हो जाता था।

सुनीता ने बताया कि यह औरत उसकी बहु हैं तथा उसी ने पूर्वजन्म में उसे गुण्डों से मरवा दिया था। डा० पसरीचा की जांच से पता चला कि सम्बद्ध गांव में एक महिला की हत्या हो गई थो। सुनीता की मृत्यु के बाद पोस्टमार्टम में जहाँ घावों के लगने की बात थी। उन्हीं स्थानों पर नये जन्म की सुनीता के शरीर पर भो घाव थे।

[४] कुछ बच्चों ने नये जन्म में अपने पूर्वजन्म की व्यावायिक दक्षता का भी परिचय दिया। कांकरोली राजस्थान में रमेश गौड़ नामक एक ३ वर्ष का लड़का जो पूर्वजन्म में बढ़ई था एक लकड़ी के कारखाने में चला गया। वहां उसने एक मिस्त्री से कहा तुम काम ठीक नहीं कर रहे हो। मैं तुम्हें बताता हूं कि किस प्रकार करना चाहिए।

[5] Gopal, son of the Manager of a Petrol Filling station on Asaf Ali Road Delhi began to mention incidents from his previous birth for the first time when he was two and a half years old.

In an Interview his father said :-

On a summer evening Gopal came to me and said that he had a father in Mathura. Father thought he was jocking. But he was not, He said he was born in a prosperous family of Mathura His name was Shaati Prasad: In 1948, wheu he was 35, his younger brother shot him following a qurrel over property.

The incidents were fonnd to be true on verification. The shooting took place in 1948.

Gopal was born eight years later. Asked by some where he had spent the eight years between his death and rebirth, Gopal, said, "I don't know."

Gopal was taken to Mathura by his parents. Though this was his first visit to that city he had no difficulty in locating the shop "owned" by him there and the house in which he lived He recognised the photograph of himself and "Other members of the family" in an album brought by an old friend and also from those hung on the wall. He recognised Shakti Prasads widow but refused to greet her because he said he had a buarrel with her over money. The day I was killed I had asked her for Rs. 5000/- but she told me to take the maney from the factory. When I went to the factory, my brother shot me dead."

Gopal brought with him a photograph of Shakti Prasad taken at the time when he got the M.A. Degree.

[From Times of India of 25-3-1965] reproduced in Vedic light. monthly of April 85 by Karam Narayan Kapoor

[6] Lugdi was born on 18th January 1902. She was married to Kidar Nath Chaubey of Muttra. A son was born to her on 25th Sept. 1925. She died on 4th Oct. 1925 at 10 A.M. at Lady Lyall Hospital Agra.

On 12th October, 1926. Shanti Devi was born to Mr. Rang Bahadur Mathur of Delhi.

In the early years of her life Shanti was almost mum upto the 4th years after that she began tosay a few things. She would repeatedly say that she was a 'Chouban' by caste and that her husband was a cloth merchant. She also gave some details regarding her house at Matura and pointed out that the colour of building was yellow.

Her parents paid no particular attention to her prantings because according to the conservative Hindu belief, a child disclosing events of the previous life did not generally survive if the facts turned out to be true.

The girl was eager to go to Mathura when she was asked the name of her husbaud she whispered into cars of the interrogator that the name was. 'Pt. Kıdar Nath Chaubey." At ltst a letter was written to Pt. Kidar Nath Chaubay at Mathura about the girl and her recollections about her past life. In reply Pt. Kidar Nath suggested that his relation, Pt. Kanji Mal, who was working in the firm of Messrs. Bhana Mal Guljarimal of Delhi may be allowed to have an interview with the girl. An interview with Pt. Kanji Mal was arranged The girl not only recognised Pt. Kanji Mal to be the younger causin of her alleged husband but also gave very convincing replies to questions of intimate uature.

Pt. Kanjimal called his brother Kidar Nath Chaubey from Mathura. He came to Delhi on November 13, 1935 with his ten years old son and his present wife. The girl at once recognised Pt. Kidar Nath as her husband. The son also attracted her attention. She burst into tears and kept

sobbing for about an hour. They brought out a toy and a pack of cards to give them to the boy.

Then she was taken to her parent's house in a neighbouring street She not only recognised il but was also able to identify her old father and mother in a crowd of more than fifty persons. The girl embraced her parents who wept bitterly at her sight. It was felt by every one that it was really a blessing to forget all our abont previons lives.

The girl was than taken in a c3rriage to the locality where the temple of Dwarkadhish stood. As soon as she saw the temple she shouted with joy. She knelt before the templedoor as if she was in deep worship before a diety.

The last thing she recognised in Mathura was the Vishrant Ghat at the sacred river Jamuna, where according to her the she used to bath in her previous life.

यह घटना की पत्रिका----People के---Life Peter Forbs ने भी जांच की थी।

इन सब घटनाओं के अध्ययन से यह बात सामने आई कि :-

[१] प्रायः बच्चा २-२½ वर्ष से चार वर्ष की आयु तक अपनी पूर्वजन्म की बातें बोलता हैं। ७-८ वर्ष की आयु तक सब कुछ भूल जाता हैं। ऐसे बच्चे अपने पूर्वजन्म की जो बातें बतलाते है वे बड़ी उग्ररूप की होती है। कुछ मामले ऐसे भी आये जब काफी बड़ीं उम्र में भी पुनर्जन्म की स्मृति देखी गई।

[२] व्यक्ति को केवल जीवित अवस्था का ही नहीं, मरने के बाद अन्त्येष्टि किस प्रकार की गई, इस बात की स्मृति थी।

[३] वर्ण को जन्म से मानने की बात निरर्थक है। ऐसे अनेक उदाहरण सामने आये जिनमें पूर्वजन्म का ब्राह्मण निचले वर्ग में और निचली जाति के ऊंचे वर्ण में पैदा हुए।

[४] पुमर्जन्म के बीच एक अन्तराल का समय होता है। उस बीच आत्मा या तो विचरती रहतो हैं, या अन्य योनि में जन्म लेती है। इस पर अध्याय ४ में विचार करेंगे।

प्रत्यक्ष प्रमाण [हिन्द्रैर क्षेत्र] से डा० स्टीवेन्सन द्वारा अमेरिका में–

As Dr. I an Stevenson a professor of psychiatry at the University of Virginia, US, states, "Often a child begins fumblin at the age of two or even less to communicate memories of a previous lives."

Dr. Stevenson has spent over 20 years following up reports of children thought the world who stun their parents with relations of past life.

He has now amassed over 2,000 child cases and claims that "a rational man can, if he wants now, believes in reincarnation on the basis of religious doctrine or cultural tradition.

An outstanding case of past life recall by a child concern a young boy from Waukomis. Oklahoma, America. The two-year-old was called Jeremy Anderson, but insisted his name was actually Jimmy.

Remembrances of his former life were prompted by every day incidents. One day Jeremy was looking through a book with his grandmother Nancy, when a picture of a wagon caught his eye.

'He told me the wagon hit him, "his grandmother recalled, "He said he was dead and was angery with the man who drove the wagon. I didnot say eny more about it.

Jeremy's curious digressions continued to perplex his grandparents. When his grandfather Jack was in beg with a bad back, Jeremy asked him, "What's wrang with

your back papa ? It is killing you ? Jack replied that although he was in discomfort his back wasn't exacrly "Killing him." Jeremy retorted, "Well, my back got hurt one time and it killed me.

Ninety miles from Jeremy's home was a tombstone bearing the name of James L. Houser who was born in August 1952 and died In the same month in 1967. The grave was in a cemetary at Tonkawa Oklahoma.

Jimmy Houser, as he was known was the son of Nancy Anderson and the half brother of Ron Anderson, Jeremy's father. Jimmy had been brought up by his paternal grandmother in Tonkawa

Sadly, Jimmy was killed in a road accident just before his fifteenth birthday,

The police report stated that Jimmv and his 16-year old friend Kevin Lucas were driving at 75 in a Buick when they hit a truck at a junction. The car skided 99 feet before bouncing off a second truck and spining a further 108 feet.

Kevin Lucas, who was thougt to be driving, was seriously injured aud suffered and suffered amnesia. Jimmy was killed.

In april 1980 when Jimmy was five years old he was taken to the scene of the accident. He said the surroundings were familiar and described how he had fallen out of the car,

"I was going like a bullet "he recalled. "It was like a bamb.

The undertaker who examined Jimmy body's maintained that the injuries he suffered were for more likely to have been sustained by the driver in such an accident.

This came as no surprise to Jeremy—.—who had always insistad ae had been the driver.

[पत्रिका Psychic News ......के जनवरी ८५ अंक से उद्धृत]

इस घटना में भी विचारणीय एक बात और है कि १९६७ में मृत्यु हुई और १९७५ में जन्मे बच्चे ने वह घटना पूर्व में अपने पर बीती बताई। बाच के ८ वर्ष पूर्वात्मा ने कहीं और जन्म लेकर बिताये या यों ही अकेली आत्मा घूमती रही। यह विवेचना तीसरे अध्याय में है।

In May 1957, 11 years old Jeanna Pollock and her sister Jacqueline. six were on their *way* to mass when they were moved down by a car that had mounted the pavement Both were killed.

Seventeen months aftet the tragedy twin girls wore born to the Parents Jennifer, the younger by 10 minutes, was the image of Jacqueline.

She was born with the same unusual white mark, over an inch long, from forehead to eyebrow. Jacqualine had received this scar after falling from her tricycle.

Jennifer also had a red-brown birthmark on her left hip, exactly the same as Jaqueline' s had been.

The twin had the habit of holding her pensil between the midble fingers and propelling it with her fist. Jacqueline also did this. Gilian, the other twin, had similar traits to Joanna.

John Pollock, the girl's faiher, though a Roman Catholic, finally came to the conclusions that his dead daughters had reincarnated in the twins.

At the time of Mrs. Pollock's pregnancy doctors could only find one heartbeat and one set of limbs.

American rebirth researcher Prof Ian Stenvenson called the case "the most outstanding I have investigated in Europe"

He suggested taking the twins to Hexham Northumberland, which they had left when only a few months old. This is where the fatal cat accident had occurred.

The girls were able to identify "their"school and the famify's old home, They alsa pointed out a hidden park near Hexham. and an Abbey,where Joanna and Jackqueline once played.

Blood samples were taken from the girls to see ifthey were singls egg twins. The finding indicated "with 99-84 percent certainly",that they were.

Dr, Stevenson told their father."The occurrence of two birthmarks on Janifar cannot be explained on the basis of heredity.

"Af the birthmarks were inherited, Gillian should have them as well as Jennifer. Reincarnation is at least a possible explanation,"

(2) At the same time another fascinatidg case was being revealed in Turkey, Woen 18 month old Ismail Altinkilic heared his repeating his name, he refused to say it.

'I am Abid, 'he totd them. Abid Suzufmus,' This name was unknown to the boy's parents.

At the age of two the child gave a graphic desciiption of how he had been murdered in a stabte by three men. The infant also said his pregnant wife Sahide and his sons Sihni and Ismet were .ilied.

Ismail's nnc.e spanked hlm for talking 'nonsense' until the boy told him : 'You vsed to work for me in my garden, We used to drink together. Whay are you showing me such ingratitude now'?

Thc uncle admitted he had worked for a man named Abid Suzulmus. After makidg inquiries he discovered that Abid had been murdered in a stable six years previously.

When Ismair was four, he was taken by an investigator to the murdered man's home.Greoted by 17 years old Gulseren Suzulmus us he asked, ,How are you, my daughter ?"

The boy showed an intimate knowledge of the house and described the murper in detail. He said he had hired three men, Mustafa and Ramazan Besibuyuk, and another known as Bilal to work in his garden.

'It was Friday, January 31, 1956, 'the boy declared 'when was wrong with the horse."

While examining the horse he suffered a tremendous blow to the head. Bilal and Ramazan were utimately hanged for Abid's murder. Mustafa died in Jail.

Careful examination of the case by the president of the Turkish Metapspchic Association, using deep hyp–nosis at times, proved 'without a doubt that the boy was not playing a role.

"Mentally and psychologically, the reactions of this young boy are those of a fully grown, intelligent man, "said president Dr. Rafet Kayserilioglu.

He added. 'There definite indications of a case of reincarnation."

[3] In a similar case in 1963 a 12 years old German girl claimed she was the reincarnation of a 30 years old Italian woman.

The girl, Helene Narquard, was a normal child in all respects until she was knocked down by a car. Suffering wounds to her head she lay unconcious in hospital for many weeks and was expecteb to die.

One morning Helens opened her eyes and gazed in astonishment at her surroundings. 'How did I get here ?" she asked.

What was unusual was that Helen spoke not in her native German tongue, but in Italian, a language she had never learnt.

Dr. Schroeder, the hospital chief, sent for interpreter. When he arrived Helene unfolded a strange story. She said she was Rosetta Castellani, who had lived in Noventa, near Padua, Italy, and was born on August 9, 1887.

"I have two children. "she told the interpreter. "They are named Bruno and Franca. They must be waiting for me to return to them. Please tell the doctor I wish to go home to Noventa."

Dr. Schroeder, a brain specialist, surmised that the car injury had caused her to indulge in a fantasy. On reflection, however, he realised this did not explain how she could snddenly speak Italian.

He consulted a colleague named Rohweeder a distinguished psychologist. we suggcsted the injury had in some way caused Helene to assume the existence of the Italian woman,

This seemed too far fetched to the doctor so the pair decided to investigate. Accompained by Helene and a reporter they went to Noventa. Unearthed was an old parish register which recorded the birth of a baby named Rosetta Teobaldi on August 9, 1887.

The register gave the house where Rosetta lived until her passing in 1917 through illness. Rosetta's daughter Franca was still living there.

As the three men and Helene went through the street, the German girl suddenly stoped, pointed to one house and said, 'That's my home '

When Helene saw the woman occupant she said 'That is my daughter Franca.' She told of events in Franca's childhood whith she could not normally have known. Helence and Franca had never seen each other before.

[4] In 1971 an astonishing tale of rebirth was reported on yet another continent. A man living in the USA claimed he had lived in Southamption, two eenturies ago.

Kalvin widener, a 29-years-old car salesman said he had several past lives. He was put into trance more than 100 times by Irvin Mordes, a graduate of the Ethical Hyponosis training centre, New Jersey.

An American Journlist, Joseph J.Challmes, discovered that in one of his past lives widener claimed he had lived in Southampton.

The reporter asked widener a set of questions while he was entraced. Challmes sent the answer to the Southern Evening Echo' for varification.

With the help of the city Archivist's Department not a local historian, reporter Elsie Sandell found most of the 'recollections' were correct.

Widener said he was Leo Vincey, who lived in Southaption from 1761 until his death in the same placc in 1787.

Perhaps Widner's most convincing feat; was the ability to write fluently, with his eyes closed in languages he had never learned. Those include Greek, Italian and French. Wideners education went no further than high school.

Witnesses to his writings have include psychologists, lawyers, doctors, journlists and nurses.

In an interview with Challmes, Widener said 'You explain it. I believe I have lived before.'

मुसलमान का भी पुनर्जन्म :—

भारतवर्ष में जांच किये गये पुनर्जन्म के प्रकरण हिन्दुओं के ही थे। इन पर मुसलमान मौलवी यह कहते सुने गये कि जो मानते हैं, उनका पुनर्जन्म होता हैं। हम नहीं मानते अतः हमारा पुनर्जन्म नहीं होता। पीछे टर्की का एक उदाहरण दिया हैं कि जो मुसलमान परिवार का था। पर शायद मौलवी जी कहें कि टर्की ने तो इस्लामी खिलाफत खत्म की थी वे सच्चे मुसलमान नहीं है। अतः हम यहां राजस्थान में अहमद नामक मुसलमान के १९७३ में ही हुए पुनर्जन्म का प्रकरण यहां शोधकर्म के मूल शब्दों में देते हैं। भारत का इस्टीटयूट फार रिसर्च इन पैरासाइक्लोजी के डायरेक्टर के. एस. रावत ने इस प्रकरण को जांच की थी। अमेरिका की एसोसियेशन फार रिसर्च बैंक ऐण्ड इन्लाईटमेंट की मैगजीन वैन्चर इनवर्ल्ड में यह रिपोट छपी थी। वहीं से उद्धत करते हैं।

Mr. Rawat discovered that in January 1973 the badly mutilated body of chita Ahmad was found on the road near Saridra, a village between Beawar and Jodhpur.

'Ahmad was drunkard', explains Mr. Rawat, 'It was assumed be had died in a brawel with a truck driver the night before.

Nine month later Raghunath was born in Sendra, a village between beawae and Jodhpur,

'Ahmad was a drunkard', explain Mr. Rawat. "It was essumed he had died in a brawel with a truck driver the before."

Nine months later Raghunath was brrn in Sendra, the only boy among four girls in the family.

At two and a half, the child became angry with his mother and cried, 'I am going to my house, 'He ran towards the nearby River Koshi.

When the incident was repeated several times, Mrs. Mithusingh became curious. 'Where is your house ? she asked Raghunath.

He said it was on the other side of the river in the villagr of Kesarpura.

A few days later, when out walking, Raghunath pointed an old woman coming towards them remarking, Look, my mother is coming.'

I am yonr mother, 'said the surprised Mrs. Mithusingh 'No, she is my mother too, 'Raghunath insisted. 'Previou-sly, before my death.

He called to the ole woman, 'mother, I am your Ahamadiya.

She stopped to stare at the boy, then said she had a son named Ahamad who passed in an accident more then three years before. They liven in Kesarpura, where their son had a house, added the stranger.

Mrs. Mithusing told her husband of the strange incident. He began to question Raghunath, asking the name of his previous father.

'Nasibji Subedar was the reply. 'Who else lived with you?', added his father.

'My mother, two wives and three children, 'the boy answeree.

Raghunath was takeu to Kesarpura and asked to find his farmer home. Threading through a number of streets, he led his father to a house.

Wheu a man who accopainted them pointed to a different building, Raghunath replied, 'No that is the house of Malyan Singh.'

And when Raghunath was allowed to go into the house, he pointed out the places where Ahmad used to sit to sleep and to various other thtng. The information was car in every detail.

On another visit to the village, Raghunath recognised the grave of Ahamad's brother.

When Mr. Mithusingh served wine to some guests, Raghunath clamoured to be included.

'It is not for you, It's very bitter, 'someone told him·

'No, I shall also take it, I have been taking it, insisted the child.

Grasping a glass, he raised his hand high in the air, shouted, 'Jai Matoji' and drank the wine straight off.

People who knew Ahamad confirmed he used to drink in the same manner.

Then came the day when the lad claimed to recognise his wives. The two women began to question him.

'Which one of us is your married wife ?' They asked Raghunath.

Immediately the boy leapt towards Manphool, fell into her arms and embraced her. He refused to let her go, and wept bitterly.

Impressed, Manphool talked with him later, questioning him about Ahamad's death.

Raghunath told a different story from the accepted version. In his past life he had been set up upon by five thieves, fought back, but was killed in the struggle.

Manphool became convinced, the child was her dead husband, so did the second woman, whom Raghunath said was a wife taken in exchange. This is a type of marriage in which two men exchange their sisters, explains Mr. Rawat.

२— **भारतीय शोध संस्थान के निष्कर्ष** :—डा० रावत के वर्षों के प्रयत्न के निष्कर्ष निम्न प्रकार हैं :—

First–88 pereent of the subjects in cases he studied, began talking about a Past life at a very early age. Memories fade within three or four Years, and rarely persist into adolescene.

Secondly, in 78 cases in which either the cause of death or the age at which the person passed was reported all but two had died premarurely. He discovered 31% were murdered, 28% were passed through accident, and 5% commited suicide.

In 60% of these cases there was less than two years between the apparently eannected lives.

Only 19% were 'reborn' within nine months, in two instance-s the interwal was a matter of hours.

एक आश्चर्यजनक निष्कर्ष :—

Even more curious are two further accounts in which the subject was born prior to the death of the previous personality.

The subjects were seriously ill or even considered dead before regaining consiousness.

Mr. Rawat considered there are two important features leading credibility to cases suggestive or rebirtn.

One is the intense emotional reaction shown by some subjects towards relatives of the previous personality.

Secondly therc can be physical or psychological charactesistics related to incidents in the past life, such as an inordinate fear of water in a child claiming to have passed through drowning.

He had 22 such cases.

One concerned a girl born to a Punjabi family who, when she began talking, spoke only Marathi.

The researcher collected a dozen cases of physical deformities or birthmarks which seemed related to experiences in a former life

—: कर्म सिद्धान्त :—

अध्याय—३

दूसरा सिद्धान्त, जिसकी घोषणा के वैदिक साधारण प्रतिज्ञा में थी, का नाम कर्मफल की व्यवस्था है। उसके अन्वेषण में निम्न अनुसंधान अभिप्रेत है—

[१] सृष्टि की व्यवस्था का नियम तथा अनुशासन [ला एण्ड आर्डर] के सिद्धान्त पर आश्रित होना।

[२] जन्म एवं भोगों का ईश्वरेच्छा, अवसर या प्रभु की लीला के सिद्धान्त पर ही आश्रित न होना।

[३] पशुओं में स्वभाव तथा मानव में यदृच्छा का भाव।

[४] कर्म सिद्धान्त से नैतिक और सुव्यवस्था संबंधी लाभ।
[५] जाति आयु भोग का निश्चित होना।
[६] राज्य व्यवस्था द्वारा न्याय न दिला पाना।
[७| कर्मफल देर से मिलना, उल्टेक्रम से मिलना, काट छांट न होना।
[८] क्रिया और प्रतिक्रिया का सिद्धान्त *To every ection there is an equal and opposite reaction.*
[९] जीवन चक्र और डब्लू मीक (यू.एस.ए.)[द्वारा प्रस्तुत एक मानचित्र।
]१०] मृत्यु दूसरे जन्म की जनक है।

वैदिक वाड् मय में कर्मफल सिद्धान्त :-

[१] वैदिक ऋषि कर्म के महत्त्व को भलीभांति जानते थे, इसीलिये उन्होंने अपने देवताओं की स्तुति करते समय उन्हें कर्म के द्वारा प्राप्त करते हुए बताया हैं। एक मन्त्र में कहा गया है कि इन्द्र महान कर्मों द्वारा विख्यात हुआ :-

"यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतोऽभूत्" ऋ० ३-३-६१

यह भी बताया गया है कि इन्द्र कर्म करता हुआ ही सर्वात्मा ओजस्वी बना–'युजा कर्माणि जनयन् विश्वौजा, अशस्तिहा विश्वमना स्तुराषाड" ऋ० १०-५५-८

एक अन्य स्थल पर कर्म की श्लाघा करते हुए कहा है कि :—

"अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः।

त्वं तस्यामित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय। ऋ० १०–२२–८

कर्म सिद्धान्त में सर्वप्रमुख बात हैं कर्मफल अथवा कर्मविपाक की। यह एक ऐसा पूर्ण तथा सार्वभौम सिद्धान्त हैं कि जिसे प्रायः सभी विचारकों ने स्वीकार किया है। कर्मफल का भोग अवश्यभावी है–अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभशुभम्। कर्मवाद की यह विचारधारा वैदिक कवियों के मानस में जन्म ले चुकी थी। मन्त्रों में यह विश्वास व्यक्त किया गया है कि कर्म कभी नष्ट नहीं होते। उनका अस्तित्व बना ही रहता है। भले ही वे वर्तमान में किए हों अथवा भूतकाल में। अश्विनी कुमारों को सम्बोधित करते हुए एक मन्त्र में कहा गया है- तुम्हारे पहले किये हुए कर्म नष्ट नहीं होते।

[१] नवा चुर्यन्ति पूर्व्या कृतानि।। ऋ० १/११७/४

हे अश्विनी कुमारो! तुम्हारे पहले किये हुए कर्म नष्ट नहीं होते।

[२] अतो विण्वान्यद्भूता चिकित्वां अभि पश्यति ।
कृतानि या च कृत्वां ।। ऋ० १/२५/११

[वह ज्ञानवान वरुण समस्त आश्चर्यजनक कार्यों को देखता हें जो किये जा चुके हैं तथा जो भविष्य में किये जावेंगे]

[३] त्वया हिन: पितर: सोम पूर्वे कर्माण्यत्र चक्रु: पवमान धोरा: ऋ० ६-६६-१ ।

[हे पवमान सोम ! तुम्हारे द्वारा ही हमारे तत्वज्ञानी पूर्व पितरों ने कर्म किये]

[४] शं न सुकृता सुकृतानि सन्तु । ७-३५-४ ।

[पुण्यात्माओं के पुण्य हम सव का कल्याण करने वाले हों]

[५] सुकृत्तता मधुनो मक्षमाशत ।। ऋ० ६-८३-४

[सुकृततम *Superlative* को मधु समस्त आनन्द भोगने को मिलते हैं ।

२– नियतिवाद का प्रादुर्भाव :–

यद्यपि संसार को वेद की सर्वोत्कृष्ट शिक्षा जन्म जन्तान्तर में कर्मफल का सिद्धान्त ही है, परन्तु यह सच है कि कालान्तर में हमारे देश में एक ऐसी विचार घर कर गयी थी कि यह नियति बलवान है. पुरुपार्थ में कुछ नहीं रखा है । यह संस्कार बड़े पुराने है । कृष्ण जी दुर्योधन को समझाने गये कि न्याय के पथ पर चलो, युद्ध न करो । दुर्योधन ने उत्तर दिया था :–

जानामि धर्मम् न च मे प्रवृत्ति:
जानाभ्यर्थां न च में निवृत्ति: ।
केनापि देवेन हृरि स्थितेन ।
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ।।

[मैं धर्म को जानता हूं-अथर्म को भी । पर न मेरी प्रथम में प्रवृत्ति है न द्वितीय से । कोई देव बैठा सब कुछ करवा रहा है । मैं भी वैसा ही करता जा रहा हूं ।]

इस्लाम का तो दर्शन ही इस बात पर आधारित हैं । कि इंसान कुछ नहीं करता । होता वहीं है जो मर्जीये खुदा होता है । तुलसीदास की चौपाई बड़ी प्रसिद्ध है :–

"को करि तर्क बिठावै शाखा ।
हुयै वही जो राम रचि राखा ।।

इस विचारधारा का स्रोत महाभारत में आई मङ्कि गीता में मिलता है। और उसमें वर्णित सिद्धान्तों का प्रसार करने वालों को मस्करी कहते थे।

पाणिनि ने [५/१/१५४] सूत्र कहा हैं :-

मस्करमस्करिणौ वेणूपरिव्राजकयोः।

कुछ लोग कहते हैं यहां मस्करी बौद्ध साहित्य में वर्णित 'मक्खील गोशाल के लिए आया हैं पर पाणिनि कहते है न वै मस्करो ईत्यास्तीति मस्करी परिब्राछकः। किंतहि।'

मस्करी वह नहीं है जो हाथ में या बांस की लाठी लेकर चलता हो। फिर क्या है? मस्करी वह है जो उपदेश देता है कि कर्म मत करो। शान्ति का मार्ग ही श्रेयस्कर है। वे कर्म की निन्दा करके नियति को ही सब कुछ मानते थे। भाग्य का ही सब खेल है+देव प्रबल है+क्रूर देव ने सब कुछ पहिले ही निश्चत कर रखा है। पुनः [४/४/६०] में पाणिनि कहते हैं :-

अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः-अर्थात तोन प्रकार के दर्शन है :-आस्तिक,नास्तिक तथा दैष्टिक। नास्तिक ही लोकायत थे-का० में कहा है :—

अयं लोको नास्ति पर इति मानी !

यहां लोकायत पर सकेत है। दैष्टिक तो नियतिवादी मस्करी थे।

महाभारत शान्ति पर्व १७७ वें अध्याय में मङ्कि का जो आख्यान है-उसे ही मंकि गीता कहते है। कौरव लोग इसे ही मानते थे। भीष्म ने भी युधिष्ठर के एक प्रश्न के उत्तर में कहा :-

सबके साथ समता की भावना रखना। व्यर्थ कठिन परिश्रम न करना, अर्थ सचय की ओर से उदासीन भाव रखना, कोई नया विधान प्रारम्भ करने की इच्छा न होना, इन पांच पर आचरण करने वाला सुखी हाता है।

मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते प्रियो वत्सतरौ मम्।

शुद्धमहि दैवमेवेदं हठेनैवास्ति पौरुषम्॥

परन्तु यह मत अल्प लोगों का ही था। उसी महाभारत में यह सिद्धान्त भगवद्गीता वाले अंश में है कि मनुष्य एक क्षण भी अकर्मकृत नहीं रह सकता। कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने पुष्पाञ्जलि में कहा हैं? कि अकर्मकृत कैसे रह सकते हो जब प्यारे प्रभु ने सारी सृष्टि संचालन का भार अपने

ऊपर लिथा है। उन्होंने लिखा है कि ईश्वर मन्दिर के एकान्त में नहीं है पर वहां है ज ां एक श्रमिक सड़क निर्माण हेतु पत्थर तोड़ रहा है।

२– कर्म सकाम ही हो सकते हैं।—

ऋग्वेद में देवताओं को स्तुति एवं उन्हें हविदान के बदले में उनसे धन धान्य, सुख समृद्धि, वीर सन्तान, दोर्घ जीवन तथा गो, अश्व आदि की कामनाएं की गई हैं। इस आधार पर यह प्रमाणित किया जा सकता है कि ऋग्वैदिक कवि सकाम कर्मों में ही अधिक विश्वास करते थे। युगल देवता अग्निसोमौ को सम्बोधित ऐक सूक्त में ऋषि गौतम राहुगण ने अपने भावों को इस प्रकार व्यक्त किया है–[कामनाओं की वर्षा करने वाले हे अग्निसोम, आप मेरे इस आह्वान को अच्छी प्रकार सुनिए, हमारे द्वारा प्रस्तुत सूक्तों को रस्वीका कीजिए और हवि देने वाले यजमान के लिए सुखदायक हूजिए।

इस परिप्रेक्ष्य में वाद मैं वृहती–कृत गीता की निष्काम कर्म की शिक्षा अव्यवहार्य लगने से अवैदिक है। भला फल की बिना इच्छा या योजना के क्या कोई कार्य किया जा सकता है? यह जो योजना शून्य कार्य है, वह तो कर्ता को बुद्धिहीनों की कोटि में रखेगा। भला संग [फलाश] को व्यक्तकर अपुरस्कार वत कोई सत्कर्ण में प्रवृत हो सकेगा।

कर्म तीन प्रकार के हैं :–

प्रारब्ध, क्रियमाण और संचित :—

जन्मान्तर के तथा कुछ इस ही जन्म के कर्म जो तुरन्त फल देते हैं, प्रारब्ध कर्म हैं। उन्हें भोगने में हम परतन्त्र हैं। वे ही सुख हमें दुख देते हैं। उन्होंने ही हमारे इस जीवन का क्रम निश्चय किया है। क्रियमाण वे कर्म हैं जो हम वर्तमान में कर रहे है,जिनका फल निकट या दूर भविष्य में संभावित है

इन क्रियमाण कर्मों में से भी कुछ का फल देर से मिलने का एक कारण यह है कि पूर्वजन्म के कर्मो के सचित कोषागार में से कुछ विपरीत प्रभावी होने से इन विशिष्ट कर्मो को तुरन्त फल न देने देते हों। उन पूर्वजन्म कृतकर्मो का प्रभाव समाप्त होने पर ही वे उजागर एवं फलवान होंगे। इस प्रकार कुछ कर्कों का निर्दिष्ट काल तक संकलन होता रहता है और वे संचित कर्म हो जाते हैं। यही कर्मो की तीसरी प्रकार है। दबे पड़े रहने पर उनका वचस्व भी दबा पड़ा रहता है। मानो भूमि में से कुछ को आकर्षित करके

ऊपर खींच लाते हैं, कुछ को विकर्षित किये रहते हैं। और इस प्रकार संचित कोष में से अपक्षय होता रहता है। कमी-बढ़ती होती रहती है और उनका कारण अद्यतन कर्मों का अच्छा बुरा होना होता है, अच्छे कर्मों से अन्तरात्मा का विकास और बुरों से उसको सिकुड़न होती रहती है।

परन्तु संचित कर्नों का कुछ भाग मृत्यु समय अवश्य उगने सा लगता है। और यह उगा हुआ संचित कर्म अगले जन्म के जाति, आयु और भोग निश्चित करता है। तदनुसार ही अगला जन्म होता हैं। अगले जन्म के लिये उसी की संज्ञा प्रारब्ध कर्म हो जाती है। यह अपरिवर्तनशील होते हैं। पर इनमें जो कष्टमय अंश है, उससे उभरा जा सकता है, ऊपर उठा जा सकता है।

परन्तु यह निश्चय रहे कि कोई अच्छा काम भी व्यर्थ नहीं जावेगा। फल की धैर्य से प्रतीक्षा करनी चाहिऐ। दूसरी ओर जो प्रारब्ध परिभाषित कर्म है उन्हें कुछ लोग प्रभु इच्छा ही कहने लगते हैं। जबकि प्रभु की अपनी कोई इच्छा होती ही नहीं है। इच्छा तो प्रत्येक की अपनी होती है। हरेक में अपनी इच्छा और महत्वाकांक्षा का प्रभु के द्वारा दिया जाना ही सिद्ध करता है कि उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं है। ईश्वरेच्छा से अनुकूल फल होना जब कहा जाता है तो इच्छा शब्द दुनियाबी अर्थ में नहीं है। उसका अर्थ है मानवीय इच्छा को पार करती हुई उस पर हावी होने वाली इच्छा। दैवेच्छा तो केवल ऐक ही हैं कि सर्वे भवन्तु सुखिना: सर्वे सन्तु निरामय:। प्रत्येक प्रणी की इच्छा से दैवेच्छा का कोई समन्वय नहीं है।

इस पर अद्वैतवादियों की मान्यता है कि जब ज्ञानोदय होता है तब :—

[अ] संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं।

[ब] क्रियमाण कर्म के फल का एकत्रित होना रुक जाता है।

[स] प्रारब्ध कर्म प्रभु की इच्छा से संगठित होकर निर्झर हो जाता है। और आत्मलाभ प्राप्त होकर जीवनमुक्त हो जाता है।

इस घोषणा का कोई प्रमाण नहीं दिया है, न कारण समझाया है, बस श्रद्धा से मान लेने की बात है। हां पुरुष के व्यवहार में एक नैतिक पुट अवश्य वह निर्दोष लगने लगे, यह सम्भव है पर कर्म का नाश भला क्यों होगा, अर्थात नहीं होगा, हां उसकी तीव्रता कम हो सकती है।

३– कर्मो का फल :–

ऋग्वेद के द्रष्टा ऋषि इस विचार से भी भली भांति परिचित थे कि अच्छे कर्म का फल अच्छा और बुरे कर्म का बुरा फल होता है। सुकर्म एवं दुष्कर्म दोनों के ही परिणामों का ऋग्वेद में पृथक्-पृथक् निर्देश हैं।

सुकृत के साथ साथ दुष्कृत के परिणामों का भी उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। पीछे ऐसे सन्दर्भों को प्रदर्शित किया गया है। जिनमें अच्छे कर्म करने वाले दुष्कृतों को इन सुखों से वचित बताया गया है। युगलदेवता इन्द्रा-सोमो को सम्बोधित एक मन्त्र में ऋषि कहता है :–

इन्द्रासोमौ दुष्कृते मा सुगं भूद्। ७–१०४

[हे इन्द्रासोमो देवताओं ! तुम दुष्कर्म करने वाले के लिये सुखदायक न हो]

ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः। ऋ० ९-७३-५

[दुष्कृत व्यक्ति ऋत के पथ को पार नहीं कर सके]

४– पाप शैथिल्य सम्भाव्य :—

निम्न मंत्र द्ष्टव्य है :—

१– शिश्रथः कृतानि [१-१४-१४]

२– यत् किं वेदं वरुण दैव्यै जने३भिद्रोहं मनुष्या ३ श्चरामसि।
अचित्ती यत् तब धर्मा युयोपिस मा नस्तस्मोदेनसो देव रीरिष
ऋ० ७-८९–५

(हे वरुण हमने प्रेमी, मित्र, साथी, पड़ौसी, या अनजान व्यक्ति के प्रति जो कुछ पाप हमने किया हो, उसे शिथिल कर दो)

३– येन येन शरीरेण यत् यत् करोतियः +
तेन तेन शरीरेण तत् तत् फलमुपाश्नते ।। ३
यस्यां यस्यामवस्थायाँ भुङ्.त्तो जन्मनि जन्मनि ।: ४

अनु० पर्व अ० ७

(मनुष्य जिस जिस शरीर या इन्द्रिय से जो कर्म करता हैं, उसी उसी इन्द्रिय से उस उस कर्म का फल तदनुरूप शरीर में भोगता हैं) जिस जिस अवस्था में जो अशुभ कर्म करता है प्रत्येक जन्म में उसी अवस्था में वह उसका फल भोगता है।

[मनुष्य कर्म के फल रुप से कभी सुख, कभी दुख कभी दोनों एक साथ भोगता हैं। पुण्य या पाप कोई भी क्यों न हों, फल भोगे बिना उसका नाश नहीं होता]

-: पुराणों में कर्मफल का प्रकरण :-

४- वालो युवा च वृद्धश्च यः करोति शुभाशुभम्
तस्यां तस्यामवस्थायाँ भुङ्क्ते जन्मनि जन्मनि।
गरुड़ पुराण ११३/२६

[बालक, युवा वा वृद्ध जो भी शुभाशुभ कर्म करते हैं, उनको उसी अवस्था में उसका फल जन्म, जन्मान्तर में भोगना पड़ता है]

२- तस्मात् कृतस्य पापस्य प्रायश्चितं समाचरेत्।
न भुक्तस्यान्यथा नाश: कल्पकोटि शतैरपि॥
[भविष्य पुराण। ब्रह्मपर्व अ० १६/२७]

[इसलिए कृत कर्मों का प्रायश्चित करना चाहिए। बिना भोगे हुए पापों का अन्य किसी प्रकार भी करोड़ों कल्प में भी नाश नहीं हो सकता हैं।

३- अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्यंम विचारत:।
(शिव पुराण। उमा सं० ११/२)

ओमर खैयाम की एक चौपाईयां अनुमोदित की गई हैं :-

The moving finger writes,
and having write, moves on,
Nor all your piety nor wit shall
lure it back to cancel half a line.

Do not decieve thyself that if thou throw thyself upon the mercy of High God, thy sins shall be forgotten in such wise that the done deed shall be, as if not done and the not

५- पाप क्षमा नहीं किये जाते :-परन्तु कर्मों के फलों का क्षय या पाप माफ नहीं होते। हां यह हो सकता है कि विवेकपूर्वक कर्मफल का भोग करते समय उसे अपने पापकर्म के फलस्वरूप दुखादि के भोग का अनुभव ही नहीं

होता। इसी बात को शास्त्रीय भाषा में इस रुप से कहा जा सकता है ज्ञानाग्नि उसके कर्मों को दग्ध कर देती है।

अप: न शोशुचत शुशुध्यारियम्।

पाप से चिन्तन द्वारा यों छूटा जा सकता हैं कि आगे पाप नही होंगे। कर्म एवं कर्मफल के पींखे एक अनन्त व्यवस्था दिखाई देती है। यही व्यवस्था यज्ञ में भी चरित्रार्थ होती है। यज्ञ का एक सुनिश्चित विधान है। यज्ञ का फल भी निश्चित है। जिन कामनाओं से यज्ञ किया जाता हैं, यजमान की वे कामनाएं सचमुच पूर्ण होती हैं। एक मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि यजमान की इच्छाएं फलवती हों—सत्यां सन्तु यजमानस्य कामा: ऋ० १०-११५-८

यज्ञ की उक्त विलक्षणताओं के आधार पर ही मैक्सूमूलर, मैकडोनल तथा दास गुप्ता आदि दार्शनिकों ने यज्ञ को कर्म का मूल कहा है।

८– जगत में नियम का साम्राज्य :–

प्राकृतिक दृश्य का निरीक्षण करने वाले वैदिक ऋषियों के हृदय में यह विश्वास स्वाभाविक रीति से उत्पन्न हो गया था कि इस जगत के मूल में एक व्यवस्था है। इस व्यवस्था का निर्देश ऋग्वेद में 'ऋत शब्द द्वारा किया गया है। देवताओं को ऋत से उत्पन्न ऋत की वृद्धि करने वाले तथा ऋत में निबास करने वाले कहा गया है–ऋतावान् ऋत जाता ऋता वृध:। इतना ही नहीं समस्त प्रकृति को ऋतमय बताया गया हैं। ऋग्वेद में ऋत शब्द कर्मफल एवं यज्ञ का भी वाचक है। एक मंत्र में अग्निदेव की स्तुति करते हुए उसे यज्ञों का शासक तथा ऋत का रक्षक कहा गया है–राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिवम्। वर्धमानं स्वेदमे। ऋ० १–१८

यहां ऋत का अर्थ सायण ने कर्मफल तथा स्कन्द स्वामी दोनों ने ही यज्ञ किया है। ऋत के द्वारा सूर्य को द्युलोक में स्थापित करने वाला बताया हैं–

य ऋतेन सूर्यमारोह युन् दिवि ऋ० १०–६२–३

यहां सायण तथा वेंकट माधव दोनों ने ही ऋत का अर्ध यज्ञ किया है। ग्रिफिथ तथा मैक्समूलर ने उक्त दोनों ही स्थलों पर ऋत को शाश्वत नियम [Eternal Law] का वाचक माना हैं।

जन्म जन्मान्तर में कर्मफल का महान् सिद्धान्त समीक्षा–

सृष्टि का सारा व्यवहार न्याय की व्यवस्था पर आधारित है। विश्व में वैषम्य हैं। भिन्न भिन्न व्यक्तियों के शारीरिक और बुद्धि प्रखरता भिन्न-भिन्न परिमाण में है। अन्ततः कुछ व्यक्ति साधन सम्पन्न परिवार या परिस्थितियों में या देश या देश जन्म पाकर वार्धक्य को प्राप्त होते हैं। अतएव उनका विकास भी भिन्न-भिन्न स्तर का होता है। प्रकृति से भोग्य पदार्थ भी इन्हें भिन्न-भिन्न परिमाण में प्राप्त होते हैं। किसी को यावज्जीवन सुख अधिक है, किसी को साधारण और किसी को आजीवन दुख ही। इसका कारण समाज प्रदत्त परिस्थितियां तो निसन्देह है ही, जैसा कि साम्यवाद कहता है परन्तु जहां समाज होवे ही कहीं और व्यक्ति को पैदा कर दिया गया हो वहाँ उसको विपन्नता कारण क्या है ? ऐसे उदाहरण ध्रुव प्रदेश, टुण्डा प्रदेश, टेगा या सहारा के मरुस्थल वाले क्षेत्र है। वहां उत्पन्न व्यक्ति सभी शिक्षादि से वंचित रहता है। आज के एकता मूलक समाज में भी जहां तहाँ-कथित शोषणवादी व्यवस्था समाप्त कर दी गई है, प्रायः अविकासी मूढ़-मति मानव मिलते ही है। जिन्हें प्रतिभा विहीन होने से श्रमजन्य कार्य ही सौंपे गये हैं। उनका जीवन सब सरसताओं से विहीन एवं दूभर है।

यह वैषम्य ईश्वरेच्छा मात्र से नहीं होना चाहिए न ही यह ईश्वर । लीला एवं माया है। ईश्वरेच्छा पक्षपातपूर्ण नहीं हो सकती न ही वह अपने बन्दों को दुख देकर किसी सुख का अनुभव करेगी। और लीला या नाटक तो वास्तविकता की एक प्रतिकृति [नकल] मात्र होती है। सर्वज्ञ ईश्वर को नाटक कर्म शोभनीय भी नहीं है। वैदिक मान्यता में जीव को कर्म करने में पूर्ण स्वातन्त्र्य दिया गया हैं। मनुष्य को कर्म करने की यह स्वतन्त्रता प्रभु की सर्वज्ञता से भी बाध्य नहीं है। जैसे-जैसे मनुष्य कार्य करता है, वैसे-वैसे प्रभु भी जानता है। यदि मेरे कर्तव्य एक ऐतिहासिक प्रणाली के अनुसार ही होने हैं जैसा कि हीगल ने माना है अथवा प्रभु की जानकारी में छिपे हुए भविष्य के अनुसार ही मेरे जीवन का प्रत्येक पृष्ठ खुलता है, जैसा इस्लाम मानता है तो मैं उन कर्तव्यों के फल के लिये उत्तरदायी नहीं हो सकता। न्याय का तकाजा हैं कि मुझे उसी का फल भुगतना पड़ेगा जो मैंने स्वेच्छा से किया है। तथापि जो कुछ मेरे अपने श्रम से अर्जित है, उससे मुझे वंचित न किया जाये। नैतिकता का भी तकाजा है कि मैं दूसरे के श्रम से उपार्जित भोगों को प्राप्त न

कर सकूं । सब भोग कर्मानुसार मिले, यह सच्चे दर्शन की भित्ति है। सृष्टि में हर वस्तु और घटना का कारण है, इसलिए जो कुछ भुगत रहा हैं वह उसके अपने द्वारा किये गये कर्मों के फल का रुप है।। यहां शंका हो सकती है कि यदि सब कुछ जो मनुष्य यहा भुगत रहा हैं पहिले से ही निश्चित है, तो वह मनुष्य को भाग्यवादी बना देगा । परन्तु हमें पहिले कर्म स्वातन्त्र्य का भाव समझ लेना चाहिये । स्वतन्त्रता से अर्थ पूर्व निश्चयता की पूर्णतया अनुपस्थित नहीं है । मनमानी अन्तः प्रेरणा से तो केवल पशु बर्तते है। स्वतन्त्रता से अर्थ है कि उस पथ से जाना-उस तन्त्र का निर्माण करना जो स्वयं से निश्चित किया हो। पूर्व निश्चयपूर्वक कार्य करना ही स्वतन्त्रता हैं। अतः अधिक पीछे की ओर सोचने पर यह निष्कर्ष स्वाभाविक हैं कि हमारे जीवन के सब अच्छे बुरे भोगों का कारण सदैव इस जीवन में नहीं मिल सकता। इसी प्रकार इस जीवन में किये अच्छे बुरे भोगों का कारण सदैव इस जीवन में नहीं मिलता दिखता । अतः इस जीवन से पहिले और इस जीवन के बाद भी जीवन का होना अवश्यम्भावी हैं। इसलिए इस घटना चक्र को संसार [समसार =जीव का सदा रहने वाला जीवन] कहते है।

[कान्ट के अनुसार जीवन में नैतिक चेतनता ही यह सिद्ध करती है कि व्यक्ति अमर है। परन्तु इस जीवन के सारे सुखों दुखों का तारतम्य पूर्व जीवन के हमारे किये गये कर्माकर्म है। इसलिए जैसा याज्ञवल्क्य स्मृति (१/३४९) ऐवं मनु स्मृति [७/२०५] में कहा हैं, भाग्य हमारे द्वारा पूर्व जन्म में किये कार्यो का ही दूसरा नाम हैं।]

यहां यह प्रश्न होता है कि इस कर्म के सूत्रपात का प्रारम्भ हुआ था? परन्तु सृष्टि प्रजनन और सृष्टि समावर्तन [प्रत्यय] की यह प्रतिक्रिय अनादि काल से हैं। इसका प्रारम्भ कभी हुआ ही नहीं था। प्रलय में भी जीव के साथ उसका कारण एवं सूक्ष्म शरीर रहता हैं। मुक्ति में भी कारण-शरीर आत्मा से संलग्न रहता है। यह कारण शरीर द्वारा किये हुए कर्म के संस्कारों से बनता है। और जिस योनि में संस्कारों का प्रस्फुटीकरण हो सके, उनमें जन्म लेने के लिये हर सुअवसर के प्रारम्भ को सृष्टि में उसे वह विवश करता है। और यह क्रम चलता रहता है। अस्तु हम चाहे कितना ही पीछे ढुंडते चले जायें वह समय नहीं मिलेगा जबकि जीव कर्मों के संस्कारो को छाप से रहित मिल जावे। चूंकि सब कर्मों का कारण जाव का पूर्व निश्चय ही है। अतः जीव कर्म करने में पूर्णतया स्वतन्त्र है। एक पश्चिमी विद्वान ने यूं कहा है :-

Ur iverse has freedom at its heart but fate at its circumference as in the atom and man is a creature of both influence. Misfortune may have come, but he firm, It will go just in the same way as it has come.

साथ ही जीवों के इस कर्म–स्वातन्त्रय और फल भोगने हेतु एक फल भुगवाने वाले ईश्वर के अस्तित्व की आवश्यकता अनुभव की गयी,और इसी सर्वोच्च फलदायक सत्ता के प्रतिनिधि रूप में पृथ्वी पर राज्य-सत्ता कीस्थापना की गई।"

कर्म सिद्धान्त में नैतिक सुधार का सिद्धान्त भी निहित है। अर्थात् हमें जो कुछ सुख और दुख मिले हैं, बे न्यायाकूल हैं। समाज या प्रभु का कोप नहीं है। इसमें कोई सौदा या अति नहीं है। हम इससे भी आश्वस्त हैं कि अब जो कुछ करेंगे, उसका भी फल आगे पीछे अवश्य मिलेगा। इस आस्था का फल यह होगा कि मनुष्य दुख उठाते हुए भी मग्न रहेगा , उसमें कड़आहट नहीं होगी। चूंकि उसके दुखों का कारण वह स्वयं है। अतः वह किसी को न श्राप देगा, न आह भरेगा, न स्थापित समाज को अस्त व्यस्त करने का संकल्प करेगा। चूँकि उसके लिये भविष्य को उच्चतर रूप में निर्माण करने का द्वार खुला है, अतः वह अपने श्रम को इस निर्माण में लगाता रहेगा, उसे व्यर्थ न जाने देगा और समाज इस हानि से बच जायेगा। वह कामचोर भी नहीं बनेगा। और जीवन यापन हतोत्साह से भी नहीं करेगा । इससे समाज में नैतिकता का विकास होता हैं। कर्मो के फलाफल के विकास में सहायक होते हैं । इस सिद्धान्त से मनुष्यों के जीवन में अनुशासन आता है। हर कर्म के करने से पहिले मनुष्य सोचेगा कि इसे करूं या न करूं। एक सर्वकालिक पुलीस सो उसके पीछे लगी रहकर उसे सदा निर्देशन देती रहती है कि बुरे कर्म को न करे। यदि मनुष्य के सारे कर्म उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों के अनुरूप हो गये होते और उसे उन प्रवृत्तियों के ऊपर विजय पाने का अधिकार नहीं दिया गया होता, तो उसे इसमें कोई सन्तोष नहीं मिलता कि वह किसी तीसरी शक्ति के आदेशानुसार चलने को बाध्य नहीं है।

कर्म सिद्धान्त से नैतिक और चारित्रिक विकास होता है। प्रत्येक कर्म, के जो कि हम करते है, दो फल होते है–

[१] एक तो इसका तुरन्त मिलने वाला फल। जो कि प्रकृति के सिद्धान्तानुसार होता रहता है, और तुरन्त घटित होता है। यथा वीर्यपात से शारीरिक शिथिलता।

[२] दूरगामी फल=हर घटना से एक संस्कार का सृजन होता हैं जो आत्मा के साथ जुड़ जाता हैं। इस आत्मा की प्रवृत्ति यही व्यभिचार पुनः करने करवाने की बन जाती है। यह फल देर से या दूसरे जन्मों तक प्रगट हो सकता हैं।

प्रथम तो आवश्यकता जन्य है। हम इसमें परवश हें जो हमारे नियन्त्रण में हैं। हमारा नैतिक विकास हमारी इस नियन्ण क्षमता पर आश्रित है। इसी को निष्काम कर्म की योग्यता कहा जा सकता है।

प्रत्येक प्राणी को सुख और दुख तो किसी के माध्यम द्वारा ही मिलता है। सुख और दुख स्वयमेव उपस्थित नहीं हो जाते।

यों सुख और दुखबन्धु-बान्धवों, मित्रों और शत्रुओं, राज्यकर्मचारियों, पड़ौसियों तथा अन्य व्यक्तियों और प्राणियों [सिह, सर्प आदि] द्वारा ही प्राप्त होते हैं। वे ही सुख और दुख का निमित्त कारण अथवा हेतु होते हैं। पर वास्तविक रूप में उन सुख दुखों का प्रधान कारण तो प्राणी के पूर्वकृत कर्म होते हैं। जिनके फलस्वरूप यह सुख-दुःख प्राप्त होते हैं।

कर्मों को गति अति गहन है :– "गहना कर्मणो गतिः"। ऐसा गीता ४/१७ में भी कहा है। बिरले ही इसको भली प्रकार जान सकते हैं। इसका मुख्य कारण है कि कर्म सिद्धान्त और उसके अर्न्तगत नियमों को जानना और उसकी परख करना इसलिये कठिन है कि प्रत्यक्ष रूप से देखे और अन्वेषण नहीं किये जा सकते हैं। कर्म–विपाक के सिद्धान्त तो परोक्ष से सम्वन्धित हैं।

योगदर्शन २/१२ सूत्र के अनुसार क्लेशमूलः 'कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः' अर्थात कर्म[पुंज]का फल दृष्ट और अदृष्ट जन्मों में मिलता हैं शेष कर्मों का फल विशेषकर व्यक्तिगत कर्मों का फल इसी जन्म में मिलता है, शेष कर्मो का फल आगामी जन्मों में मिलता है। यह विचार अति महत्वपूर्ण है। अतः विस्तारपूर्शक लिखने योग्य है। ऋषि पतञ्जलि लिखते हैं :–

सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥ [योगदर्शन २/१४]

अर्थात कर्मों के होने पर उनका फल जाति, आयु और भोग के रूप में मिलता है। कर्म तीन प्रकार के हाते हैं क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध मनुष्य प्रत्येक क्षण कर्म करता रहता हैं यह क्रियमाण कर्म है। यह पूर्व में किये हुए संचित कर्मों में संचित होते रहते हैं। मृत्यु के समय जितने संचित कर्म होते है, उनमें से आगामी जन्म के लिए जो प्रधान कर्म होते है, उनको प्रारब्ध कहते है और वह ही प्राणी के आगामी जन्म में जाति और भोग का कारण होते हैं। प्रधान कर्म वह कहलाते हैं जिनके संस्कार ऐसे बलवान हों कि मरने के पश्चात सबसे प्रथम उन्हीं फलवाली योनि प्राप्त हो। पर जो कर्म मरने के उपरान्त तत्काल फल देने में समर्थ न हों वे उपसर्जन कहलाते हैं।

अब बात रही भोगों की ! जन्म से प्राणियों में बिषमता पाई जाती है। कोई तो राजा के घर में जन्म लेता हैं और कोई भिखारी के घर में। कोई सुन्दर है तो कोई कुरूप। कोई बलवान है तो कोई अंगहीन। कोई जन्म से ही प्रतिभाशाली है तो कोई पागल। जन्म से प्राप्त विषमता इस बात का द्योतक हैं कि भोगों का प्रचुर अश तो जन्म से पूर्व ही निर्धारित कर दिया जाता है। शेष भोगों-सुखों और दु:खों की प्राप्ति तो जीवन में कई बार अकस्मात रूप में हो जाती है। उनका ज्ञान जन्म के पश्चात नहीं होता है।

इस धारणा से यह प्रगट होता है कि वर्तमान जीवन में किये हुए क्रियमाण कर्मों का फल इस जन्म में नहीं मिलता। वे तो संचित कर्मों में जमा हो जाते हैं और उनका फल किसी आगामी जन्म में ही मिलेगा।

यूरोपीय राजनैतिक दर्शनकार मछियावैली ने कहा हैं कि ५० प्रतिशत कार्य तो भाग्याधीन है और शेष ५० प्रतिशत के लिए खुला है।

[क] समाज तथा राजकीय विधान के अनुसार शुभ [पुण्य] कर्मों के फल देने का कोई प्रबन्ध नहीं होता है। और यह भी देखने में आता है कि नेक अथवा पुण्य कर्मों का फल प्रायः कर्ता को इस जन्म में नहीं मिला करता।

[ख] पाप कर्मों में केवल उन कर्मों के दण्ड का विधान है, जो अपराध की परिभाषा के अन्तर्गत होते हैं। शेष पापों के फल समाज तथा राज्य द्वारा नहीं दिये जाते।

[ग] और प्राय: ७५ प्रतिशत अपराधी राजकीय दण्ड से बच जाते हैं। उनको अपने कर्मों का फल नहीं मिलता।

[घ] कई अपराधियों को न्यूनाधिक्य अनुचित दण्ड भी मिल जाता है। [च] कभी-कभी कई निर्दोष व्यक्ति व्यर्थ में दण्डित किये जाते।

अत: यह प्रतीत होता है कि ईश्वर ने न्याय की व्यवस्था अपूर्ण और त्रुटिपूर्ण राज्य सत्ता के हाथ में पूर्ण तथा नहीं रखी है, उसे केवल सामाजिक न्याय अनुसार दण्ड और परितोष प्रदान करने का एक माध्यम बनाया हैं। यह तो मानना ही होगा कि न्यायकारी, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान भगवान के राज्य में अन्याय का स्थान नहीं है। यदि कर्मो के दर्पण में देखा जावे, तो यह प्रतीत होता है कि प्रत्येक प्राणी को सुख दुख अपने पूर्वकृत कर्मो के अनुसार ही मिलता है।

अब शेष एक प्रश्न रह जाता हैं। वह यह है-जिस चोर ने चोरी की, उसको दण्ड मिल गया। प्रत्यक्ष रुप से यह फल उसकी वर्तमान जन्म की चोरी का फल है। इसके उत्तर में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि हालाँकि उसका दण्ड उस चोरी से संबंधित है, परन्तु वास्तविक रुप में उसे किसी पूर्वकृत कर्म का फल मिलता है। इस चोरी का फल तो उसे किसी आगामी जन्म में उचित रुप में मिलेगा। यह भी हो सकता है कि जो दण्ड उसे मिला है वह उसके कर्म के अनुसार अधिक या कम हो।

इस प्रकार हम इस परिणाम पर पहुंचते है कि जो पापी इस जन्म में वैभवशाली है, वह अपने पूर्वकृत जन्म का फल भोग रहे हैं। उनके इस जन्म के कर्मों का फल आगामी जन्म में मिलेगा। धर्मात्माओं पर भी यही सिद्धान्त लागू होता है।

कर्म और उसके विपाक के सम्बन्ध में निम्नलिखित बिचार स्मरण रखने योग्य हैं :-

[अ] मन से हुये शुभाशुभ कर्मों का फल मन द्वारा ही भोगा जाता हैं। इसी प्रकार वाणी और शरीर की अन्य इन्द्रियों द्वारा किये हुये कर्मों का फल उन इन्द्रियों द्वारा ही भोगा जाता है। [मनु० १२/८]

महाभारत अनुशासन पर्व में भी इसी प्रकार लिखा हैं :-

"प्राणी जिस जिस [स्थूल या सूक्ष्म] शरीर से जो कर्म करता हैं, उस कर्म के फल मन से ही स्वप्न आदि में भोगता है और शरीर से किये हुए कर्म को जागृत अवस्था में शरीर से ही भोगता है। [अध्याय ७/२]

आ-कतिपय विद्वानों का मत है कि शुभाशुभ हर कर्म तीन दिन, तीन माह, अथवा तीन वर्ष में अवश्यमेव अपना फल देते हैं। यह मत निरक्षर प्रतीत होता है, ऐसे कर्मी का फल इस निर्धारित समय में प्रगट नहीं होता है। प्रात: देखा जाता है कि उग्र कर्मो का फल कर्ता को इस जन्म में नहीं मिलता है। कई हत्यारे, डाकू आदि दण्ड की लपेट में बिल्कुल नहीं आते हैं।

इ- कई ग्रन्थकारों का मत हैं कि मनुष्य जिस अवस्था में जो शुभाशुभ कर्म करता है, उस कर्म के फल को जन्म-जन्मान्तरो में उस बाल्य, युवा, वृद्ध अवस्था में भोगता है। यह मत भी युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। यह सिद्धान्त तो सबको माननीय हैं कि बाल्यकाल में मनुष्य का मत विकसित नहीं होता। उसको उस समय शुभाशुभ का ज्ञान नहीं होता। अत: उसके कर्मों का फल बाल्यकाल में उसे नहीं मिलता है।

ई- कई मनुष्यों की धारणा है की चाहे कितने ही अच्छे बुरे कर्मो को किया जावे, पुरुष पुरुष की योनि और स्त्री स्त्री की ही योनि में सदैव उत्पन्न होते है। यह धारणा भ्रममूलक है।

उ- कर्मों के फल भोगने में क्रम का नियम नहीं हे। अर्थात् प्रथम किया हुआ प्रथम और उसके पश्चात् किया कर्म पश्चात् और उससे भी पश्चात् किया हुआ उससे पश्चात भोगे जाते हैं।

ऊ- एक कर्म एक जन्म का कारण नही हो सकते। और यह भी नहीं है कि एक कर्म अनेक जन्मों कारण हो। और यह भी नहीं है कि अनेक कर्म अनेक जन्मों के कारण हो।

कर्म का आदि भी नहीं है और न ही अन्त है। कर्म करने में विराम तो हो जाता है। जैसे कि सुषुक्ति में अथवा मोक्ष में।

ए- जिन कर्म वासनाओं के अनुसार देह प्राप्त किया गया है वह "नियत विपाक" कहलाती है। और जो भविष्य जन्मों में अनुभव करने योग्य अनियत फल वाले कर्माथय हैं। उसकी तोन प्रकार की गति इस प्रकार है :-

१- कुछ कर्म किसी अन्य प्रधान कर्म से मिलकर भोगे जाते हैं।
२- कुछ एक कर्म प्रधान कर्म से दबे रहते हैं, और वह कालान्तर में फलीभूत होते है।

३- पाप और पुण्य कर्मों की आपस में कटौती काट-छाँट नहीं होती और न हो ही सकती है, क्योंकि उनमें समानता नहीं होती।

यदि पुरुष अपने शुभाशुभ किये हुये कर्मों और इस जन्म में अनुभव किये हुये सुखों ओर दुखों की पृथक् पृथक् चार तालिकायें बनायें और उनको आपस में मिलान करे, तो निष्कर्ष निकलेगा कि इस जन्म में किये कर्मो का फल बहुधा इस जन्म में नहीं मिलता है ।

ओ- कर्म तीन [प्रकार के होते हैः–शुभ, अशुभ और मिश्रित । उसके फल भो इसी प्रकार तीन प्रकार के होते हैः–

व्यक्गित कर्म खाना, पीना, सोना आदि तो इसी जन्म में फल देते हैं । आगामी जन्मों पर इन कर्मों का कुछ भी प्रभाव नहीं होता ।

भनुष्य के वे कर्म जिनका अन्य प्राणियों पर प्रभाव पड़ता हैं, द्विमुखी होते हैं । उन शुभ शुभ कर्मों का फल तो कर्ता को कालान्तर में मिलेगा । परन्तु उन कर्मों के द्वारा जो अन्य प्राणियों को सुख अथवा दुःख मिलता है, वह सुख और दुःख उन प्राणियों को उनके पूर्वकृत् शुभाशुभ कर्मों के फलस्वरुप प्राप्त होता है

औ- जीव के सूक्ष्म शरीर में पशु के संस्कार भस्नसात् हो जाते हैं, तब हम कहते है! कि अमुक ने तो अपने को पशु सा बना लिया है । पर ऐसा होने पर उसका व्यक्तित्व पशु के शरीर में ही व्यक्तिकरण हो पा सकता है । उसका आरम्भ यहीं हो जाता हैं और पर कर ऐसा व्यक्ति पशु योनि में बला जाता है । भिन्नभिन्न योनियों में भिन्न प्रवृत्ति की natural selection. स्वाभाविक छटाई होती है । और तब नये परिवर्तन का सूत्रपात होता है । अनिष्ट प्रवृत्तियों के लोप और इष्ट प्रवृत्तयों के आगम के लिये ही भिन्न भिन्न योनियों की व्यवस्था है ।

अं.- हमारा हरेक कर्म बहु,प्रभावी होता है । उसका एक प्रभाव तो हमारे चित्त पर पड़ता हैं । और दूसरा विश्व पर भी पडता है । यह जो दूसरा प्रभाव है उसी में वह अपने भावी जीवन का वातावरण भी तैयार करता है । वातावरण कोई बाहर से उत्पन्न चेतनशक्ति नहीं हैं । उसे तो हम स्वयं निर्माण करते है ।

अः- क्रियमाण कर्म–विचार करना स्वयं में एक कर्म है । प्रत्येक कार्य साथ ही किसी दूसरे कार्य का कारण बनता है । इस अखण्ड श्रंखला की प्रत्येक कड़ी तीन अवयवों इच्छा, विचार और क्रिया की संघटक है । इच्छा विचार को पैदा करती है । विचार क्रिया का रूप धारण करता है । क्रिया आने वाले भाग्य का ताना बाना है ।

मानसिक कार्य भी फल देते हैं, यद्यपि हम उन्हें पूरा नहीं कर पाते हैं। उन्हीं से सूक्ष्म शरीर का निर्माण होता है । मानसिक पाप और व्यभिचार से यह अन्दर की आत्मा मैली होती ही हैं। जो मन ही मन दूसरे ही वस्तु के प्रति स्वार्थ-पूर्ण लोभ रखता हैं, उसके आगामी जन्म में चोर बनने की आशंका हैं । वैसे ही बैठे-बैठे किसी से अकारण द्वेष और प्रतिकार की भावना रखने से हत्यारा बन जाने की आशंका हैं ।

ऋ- मनुष्यों में फल वितरण की समस्या ऐसी हैं कि जिसके विषय में कतिपय विचारकों ने यह कहा है कि यह स्वचलित हैं। उसके लिये किसी अधीक्षक की आवश्यकता नहीं है । जैन दर्शन इस व्यवस्था को यों समझाता है, यह परमाणु उसकी आत्मा में चिपट कर उसे बन्द कर देते हैं। मनुष्य जैसे-जैसे तपस्वी, चरित्रवान, और विरक्त होता जाता हैं । इन कार्मिक परमाणुओं का निर्जर होता हैं और अन्त में जोव मुक्तावस्था में आ जाता है ।

इसी प्रकार कर्म के परमाणुओं की कल्पना है जो ब्लैक बोर्ड पर विद्यार्थियों को समझाने के समान हैं ।

वास्तव में हम जो कुछ कर्म करते हैं, उसकी दो परिभाषा होती है ।

अ- तुरन्त फल जो, शरीर विज्ञान से सम्बन्धित हैं ।

ब- कर्म की एक वासना का जन्म होता है जो संस्कार बन कर आत्मा से चिपट जातो है । यह आत्मा को अपने बोझ से ऐसी योनि में बरबस ले जाती हैं, जहाँ उन संस्कारों का प्रस्फुटीकरण हो, अतृप्त आकाँक्षा पूर्ण हो और फिर उसका विग्रह होकर उसकी छाप मिट जावे ।

जहाँ तक संस्कार जन्य फलों का संबंध है, यह कहा जा सकता है कि सारे कर्मों का संक्षिप्त रस आत्मा पर छा जाती है । और उसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं । इनका और सार रस बनता हैं उसे कारण शरीर कहते हैं। मरणोपरान्त ये दो शरार साथ जाते हैं और कर्मानुसार योनि की और वरबस ले जाते हैं । मुक्ति में कारण शरोर फिर भी रह जाता है जो मुक्ति की अवधि समाप्त हो जाने पर फिर आत्मा को संसार में खींच लाता है। इसोलिए कहा है कि मरने पर कर्म संचित होकर साथ जाता हैं । तदनन्तर मुक्त अथवा मनुष्य या पशु योनि में से किसो ऐक में हम चले जाते हैं।

जहां कि हमें अपने किये का फल भोगना पड़ता है। इस भोगने में स्वेच्छा न होकर परवशता है। स्वेच्छा से तो कोई अपने अकर्म या कुकर्म का कटु फल नहीं भोगना चाहता।

गम्भीर विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कर्म वासनाओं के माध्यम से स्वतः फलीभूत हो जाते हैं। वासनाओं द्वारा कर्मों का कालान्तर में फलीभूत होना ईश्वरीय नियम [विधान] का केवल अशमात्र हैं। किसी कर्म का फल क्या, कितना, कब और किस प्रकार मिलेगा, यह निर्णय तो विधिवेत्ता, नियामक और अनुशासक ही कर सकता है।

अस्तु यह नियम और अनुसाशन जिसका रूप है वह पदार्थ अवश्य होना चाहिए। गुण स्वतन्त्र नहीं रह सकता। किसी द्रव्य [पदार्थ] का ही कुछ गुण होता है। नियमन और अनुशासन जिस सत्ता का गुण है वह ही इस सृष्टि का अध्यक्ष हैं, न्यायकर्ता हैं। वैदिक-दर्शन में उसे ईश्वर कहते है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् [६-११] में उसे यों बखाना है :-

एको देवः सर्व भूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणः।।

इस सत्ता के द्वारा न्याय करवाने में एक आसानी है कि वह घट-घट वासी है और मनुष्य के द्वारा किये जाने वाले हर कार्य का स्वयं स्वामी और गवाह है। उसको किसी जीव विशेष में कोई रुझान या कोई पक्षपात नहीं हैं। उससे अवश्य न्याय की आशा की जा सकती है।

ईश्वर ने न्याय का अर्थात् कर्मानुकूल भोग वितरण का तथा जीवन यापन की सामग्री सबके लिए उपलब्ध कराने का कार्य स्वय अपने ऊपर ले रखा है। मुक्त-जीव अजन्मे-जीव तथा पशु पक्षियों की व्यवस्था स्वय उसके हाथ में है। मनुष्यों को बुद्धिमान् समझकर उसने राज्य व्यवस्था का सुन्दर ढाचा उसे भेंट कर दिया है। पृथ्वी पर राज्य प्रभु को मनुष्यों की देन है। इस राज्य व्यवस्था पर भी वह नियन्त्रण रखता हैं कि थोड़े से मनुष्य [digarchical Element] या बहुत से मनुष्य [Debassed Democretic Element or Mobocract] न्याय का गला न घोट दें। अन्यायी व्यवस्था का यह अन्त करता है। और हर व्यवस्था के द्वारा सम्पादित न्याय की कमी को वह स्वय पूरा करता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हैं कि कर्म सिद्धान्त के पांच वैज्ञानिक कारण हैं :–

1– The evolution of animal and human forms.

[पशु एवं मनुष्य योनियों के पृथक अस्तित्व से निष्कर्ष]

2- The conservation or indestructihility or transformation of energy. Karma is always geuerating an energy.

कर्म से ऊर्जा सृजती है । किसी ऊर्जा नाश नहीं होता । केवल रुप बदलता रहता हैं ।]

3– The patterns of the fleshy body are inherited one.

[हाड़-मांस के शरीरों की विभिन्नतें प्रायः पूर्व के माता-पिता के शरीरों के अनुरूप है । स्वतन्त्र नहीं]

All life is ultimately. The universe constitutes a single entity.

[विश्व में सब जीव-जन्तु परस्पर आश्रित होने से सारा विश्व एक संतुलन में है]

5– For every action there is a reaction which is equal and opposite.

[हर क्रिया को तदनुरूप तथा तद्वत मात्रा में हो बराबर प्रतिक्रिया हती है।

कर्मफल के विषय में अद्वैत मत की विचित्र मान्यता पीछे स्वामी ज्योतिर्मयानन्द की पुस्तक Death and Raincarnation की चर्चा हो चुकी है। कर्म और कर्मफल के वैदिक सिद्धान्त को अद्वैत में ढालते हुए उनकी पुस्तक के निम्न स्थल द्रष्टव्य है ।

[i] With the advancing horizons of consciousness, 'Good' and 'Evil' become more mental than physical (Page-11)

[ii] The increasing revealation of the universal self within oneself, enable one to seek spiritual good of life, where in one is not elated by the feeling of good acts done by him in the past nor is he tormented by the feeling of evil deeds of past lives. (Page 13)

[iii] The soul passes through an ASTROL EXISTENES before it reincarnates into another physical body.........the

Astral Body consists of mind in different places [मन, बुद्धि' चित्त. अहकार] The spirit experiences mental processes with Astral Body [Page 15]

The realities of astral plane are discribed in terms of consciousness of physical body expansion & Hell the contraction of consciousness, former due to virtuous & latter due to vicous action [Page 17]

[iv] The minds draw proper circumstances in the form of right harents, right time and a physical body to occupy. The power of mind manifests along with the previous leaves of past Karmas [Page 18]

[v] The soul's mevements to seek higher levels of consciousness continues, till he is liberated & joins universal self. (Page 20)

कर्मफल के सिद्धान्त पर ब्रिटेन के स्प्रीचुअल चर्च का मत :–

ईश्वर आत्मा को बार बार जन्म क्यों देता है इस पर योरुप का स्प्रिचुअल चर्च तीन कारण बताता हे :–

इतना तो लगभग सर्वमान्य सिद्धान्त है कि जीव हर जन्म के क्रिया कलापों से निर्मित संस्कारों का समुच्चय लेकर अगले जन्म में जाता है और कर्म फल प्रबला प्रकृति उसे ऐसी यानि-कुल-देश व पर्यावरण मे ले जाती है। जहां उसे उसके किये कर्माकर्म का फल मिले। परन्तु भोग योनियों के अतिरिक्त मानव चोले में उसे ईश्वर द्वारा प्रदत्त कर्म स्वातन्त्र्य सदा उपलब्ध रहता है, ताकि उसका नया जोवन सर्वथा फल भुगताने द्वारा ही न हों। वह आगे के लिए भी कुछ सचय कर सके। परन्तु यूरोप के स्प्रिचुअ-लिस्ट चर्च ने उसमें एक बात और जोड़ी है। वह यह कि परमात्मा को आदि उद्देश्य तो आत्मा को आध्यात्मिक पथ के पाथेय की ओर ले जाता है। अत: हर जन्म के ममय उसका उत्तरोत्तार उन्नति के वातावरण वाला जन्म मिलता है। ताकि उसकी प्रगति न रुके। इस ईश्वरेच्छा के साथ आत्मा की अपनी सदिच्छा भी जुड़ती है कि क्या उसे आगे जन्म लेना इन उद्देश्यों में सहायक होगा। वह सोचता रहता हैं। अतएव मृत्यु उपरान्त उसे तुरन्त जन्म नहीं मिलता। इस बीच की अवस्था में उसे अन्य आत्माए सलाह भी

देती हैं। और यदि प्रकृति के किसी नियम के अनुसार उसे जन्म लेना ही पड़ता है और नये बातावरण को वह अपनी आध्यात्मिक उन्नति के अनुकल नहीं पाता तो कभी गर्भ में से सद्योत्पन्न और शैशवोय पालने में से और कभी कुछ अकालमृत्यु का आवाहन कर वहां से चला जाता है। यह कभी वे निर्णय नहीं कर पाये है कि तीनो कारणों में से बलवत्तर कौन सा है :-

१- नियति की आज्ञा जो कृतकर्म का फल भुगबाती है।

२- ईश्वर की योजना कि हर जन्मोत्तर काल के द्वारा आत्मा का आध्यात्मिक विकास होना चाहिए।

३- आत्मा की अपनी इच्छा कि वह अपने उपरोक्त विकास हेतु कब और कहाँ निवास करे।

++पुनर्जन्म के संबंध में चार विचारधाराएं हैं :-

१- कर्मानुसारमनुष्य पशु योनि में जा सकया है।

२- कि मनुष्य मर कर मनुष्य हीं बनेगाः हां भोग पदार्थों की उपलब्धि अलग-अलग स्तर की हो सकती है।

३- कि मरकर मनुष्य चेतना की निम्न स्तरता में जा ही नहीं सकता वह उत्तरोत्तर आगे बढ़ने के सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य से श्रेष्ठतर एक योनि होगी उसमें जावेगी।

जो तीसरी मान्यता है वह अद्वैतवादियों की, हीगल दर्शन की तथा यागी अरविन्द द्वारा उद्घाटित है।

The absolute soul, like sun, is beyond all movement and the reflected self in the minds stream of man is the ego centre, the spirit. [Page 82 Death Reincarnation]

कर्मफल के सिद्धान्त का वैज्ञानिक आधार :—

मानवीय इतिहास क प्रारम्भ से ही दर्शनकार यह सोचते रहे हैं कि मनुष्यों के दुखों का कारण क्या है। और इन दुखों का कोई प्रगट कारण भी इस जीवन में नहीं दिखता है। ग्रीक एवं भारतीय पौराजिक गाथाओं में यह सतत दिखाया गया है कि सुकर्मियों को पुरस्कृत किया जाता है और दुष्कर्मियों को दण्ड मिलता है। इनका निष्कर्ष यही है कि कोई महली शक्ति

है जो हमारे कर्मों की देखने वाली है। तथा कर्मानुसार पुरस्कृत एवं दण्डित करती है। इस शक्ति को ईश्वर कहें, प्रकृति कहें या चाहे कोई और नाम दे दें। सृष्टि के हेतु जिस प्रकार नियन्ता की आवश्यकता है, उसी प्रकार सर्वत्र पाये जाने वाले नियम का नियामक अवश्य होना चाहिए। सृष्टि गत सारे नियम पूर्ण हैं. अत: वह नियामक भी पूर्ण होना चाहिए।

न्यूटन द्वारा प्रतिपादित प्रकृति के पदार्थों तथा शक्ति सन्तुलन में एक नियम डाइनामिक्स का दिखाई देता हैं कि For every action there is an equal and opposite reaction अर्थात हर कार्य की उतने हो वेग से ठीक उतनी ही मात्रा में प्रतिक्रिया होती है। हम मेज़ पर जोर से मारते है, तो मेज भी हाथ को उतने ही वेग का धक्का प्रत्युत्तार में देती हैं। यही बात मानवीय व्यवहार पर लागू है। हम किसी को हानि पहुंचाकर भूल जाते हैं पर उसकी प्रतिक्रिया कुछ काल सुरक्षित रहतो है तथा हमें भी हानि से आसम्मुख होना पड़ता हैं। यही बात सुकर्म और परोपकार पर भी लागू है। यह समान प्रतिकिया का नियम हमारी सदिच्छा पर निर्भर नहीं है। इसमें हम परतन्त्र हैं। पतंजलि ने योग दर्शन में में यही कहा है कि हमारे कर्म पहले संकलित होते रहते है और फिर उनका फल इस अथवा अगले जीवन में क्रमशः प्रगट होता रहता है, यो हम एक गेंद दीवाल पर मारें, वह लौटती हैं। पर लौटने में कुछ समय लगता ही है। इस समय की मात्रा दो बातों पर निर्भर है। एक तो यह कि गेंद कितने वेग से फेंकी गयी थी, दूसरा यह कि हममें तथा दीवाल में दूरी कितनी है। अत: निष्कर्ष निकला कि हमारे कर्मों की तीव्रता के अनुसार उनका फल तीन दिन में, या तीन सप्ताह में या तीन मास में या तीन वर्ष में हो सकता है। यह सिद्धान्त यहां तक जाता है कि अगले जीवन में हा मिले। और यह सिद्धान्त व्यक्तियों, जातियों + राष्ट्रों पर भो लागू हैं। आखिर जाति और राष्ट्र व्यक्यितों से ही बनते हैं। सो राष्ट्रों की सभ्यताओं की उथल-पुथल भी कर्माधीन है। अत: घटकों में दम, दया, दान, की प्रेरणा सदा भरनी चाहिए। यदि राष्ट्र में एक उत्कोच तथा उत्पीड़न फैलता रहेगा, तो राष्ट्र का भी पराभव अवश्यम्भावी है।

कर्मफल विनियोजित जीवनचक्र :-

क्या यह विश्वसनीय है कि सृष्टि के करोड़ों वर्ष में जीवनकाल में विधाता ने हमें केवल सौ वर्ष या उससे अल्प जीवन ही दिया है? और इस जीवन के

बाद हमें कब्र में लिटाकर या श्मशान शैय्या पर भस्म करके हमारा अन्त कर दिया जावेगा, किम्वा हमें दोजख कहे जाने वाले वाले स्थान पर सिसकने को छोड़ दिया जायेगा क्योंति कथित मुक्ति या बहिशत तौ अपेक्षाकृत अत्यल्प जीवों को हो मिलेगा। दयालु विधना सृष्टिकर्ता की यह इच्छा या योजना नहीं हो सकती है।

भौतिक शास्त्र में पढ़ाया जाता है कि हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है जो मात्रा में उसके बराबर होती है। और यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि शक्ति [Energy] का अतिशय क्षय नहीं होता, केवल रूप बदलता है।

२– यही बात हमारे वाङ्.मय में आये हैं।
न भुक्तस्यान्यथा नाश: कल्पकोटि शतैरपि।।
[भविष्यपुराण। ब्रह्मपर्व अ० १९/२७]

[इसलिए कृत कर्मों का प्रायश्चित करना चाहिए। बिना भोगे हुए पापों का अन्य किसी प्रकार भी करोड़ों कल्प में भी नाश नहीं हो सकता है।]

३– अवश्यं हि कृत भोक्तव्यम विचारत:।
[शिवपुराण। उमा सं० ११/२]

ओमर खैयाम की एक चौपाईयां अनुदित की गई है :–

The moving finger writes,
and having written, moves on,
Nor all your piety nor wit shall
lure it back to cancei half a line.

Do not decieve thyself that if thou throw thyself upon the merey of High God, thy sins shall be forgotton in such wise that the done deed shall be as if not done,and the not.

यही बात मनुष्य के कर्म पर हम यदि लागू करें और कर्म की शक्ति या इनरजी की नाप तोल करें तो उक्त सिद्धान्त के अनुसार यह निष्कर्ष निकलेगा कि जिसने जैसा कर्म, विकर्म या कुकर्म किया हैं। उसकी Energy नष्ट नहीं होगी। तथा उतनी मात्रा में प्रतिक्रियाजनित इनरजो पैदा होगी। बोलचाल की भाषा में यूं स्पष्ट कहेंगे कि प्रकृति के नियमों के अनुसार किसी भी व्यक्ति या समुदाय की कर्म द्वारा अर्जित फल कभी नष्ट नहीं होगा। वह फल मात्रा में उतना ही होगा जितना कि कर्म की मात्रा। यही कर्म सिद्धान्त की न्याय अनुकूलता का सिद्धान्त है।

इसी बात को एक विदेशी लेखक ने नक्सा बनाकर समझाया है। हम उस प्लेट का फोटो इस पुस्तक में देने का लोभ सम्वरण नहीं कर सकते।

केवल इतना ध्यान रहे कि मृत्यु के बाद जीवात्मा के चन्द्रलोक सूर्यलोक एवं अन्य ग्रहों में जाने की बात यजुर्वेद में अभी आयी है। वहां कहा गया है कि इस १२ दिन की यात्रा के बाद जीवन एक बार अपने पूर्व परिवार के दरवाजे तक आता है और अपने पूर्व करके कर्मानुसार सुनिश्चित किये परिवार या योनि में जाकर कर्मफल भोगता है। इस हेतु प्लेट के पोछे प्लेट देखें।

मानचित्र में सबसे नीचे और बायें और से प्रारम्भ करते हैं जहां कि एक वृद्ध मनुष्य मृत्योन्मुख लिफ्ट की केबिन की ओर मुख किये खड़ा है। और उसके सामने तीन द्वार हैं। मनुष्य के लिए वही द्वार खुलेगा जिसके लायक जीवन भर कर्म किये हैं। उनके तीन प्रकार होंगे :-

अ– जिन्होंने इस या इससे पिछले जन्म में औसत से अधिक कर्मोन्नति की है।

ब– औसत पर दयालु हृदय, विचारवान, सदाशय, परिश्रमी मानव या बच्चे।

स– लालची, क्रूर, स्वार्थी, भौतिकवादी, अभिचारो, ठग, मादक, द्रव्यादि सेवी, आत्महत्यारे, कातिल राजनैतिक स्वेच्छाचारा आदि। इन्हें एफ [Falure] कहा जायेगा।

तो इन एफ टाईप व्यक्तियों हेतु विधना के न्यायानुसार एफ चिन्हांकित खिड़की खुलेगी। और लिफ्ट जैसे ही पहिली मंजिल पर रुकेगी। उन्हें उसमें से नोचे ढकेल दिया जावेगा। और वापिस यात्रा पर लिफ्ट उसे पुनः नीचे ले जाकर वहीं पृथ्वो पर छोड़ देगा जहाँ से वह आया था।

पुनः बी तथा ए श्रेणो के व्यक्तियों के लिए बी तथा ए खिड़की खुलेगी और दोनों को लिफ्ट दूसरी मजिल पर ले जावेगी जो ईथर का मध्यवर्ती प्रदेश है। तथा तीन विकल्प हैं :—

१– मनुष्य वहीं टिका रहे शताब्दियां बीत जावें।

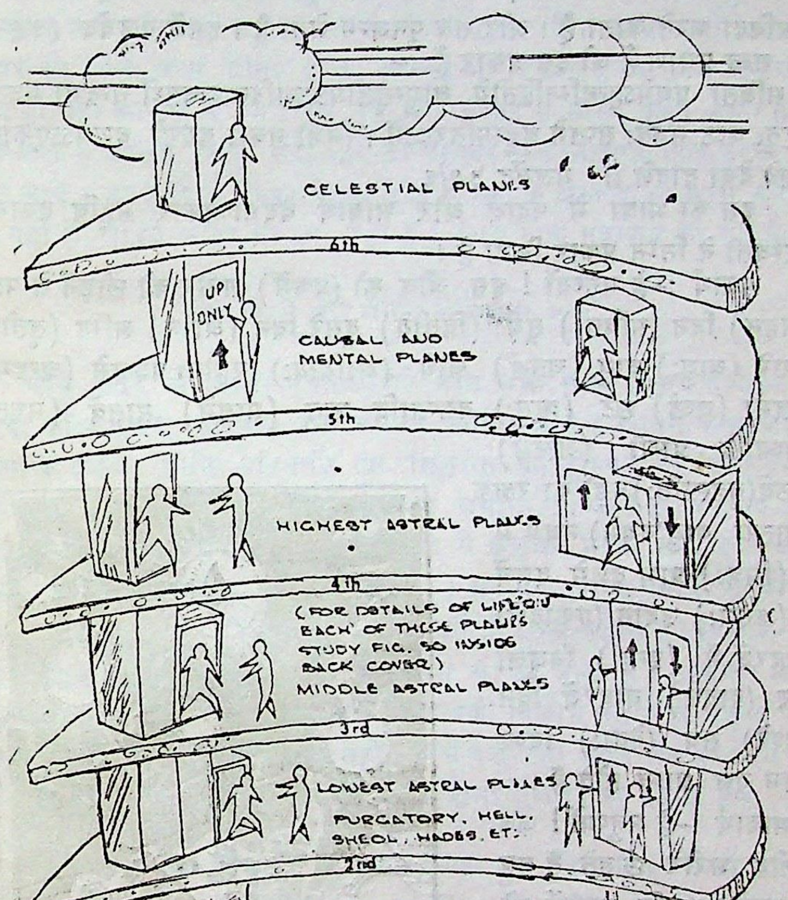
२– उसका सम्पर्क ऐसी आत्माओं से हो जो निराशा में प्रकाश देती हों तो मानव और ऊपर तोसरी मंजिल से मनुष्य की आत्मा और अधिक प्रशिक्षण हतु पहुंचे।

३– पृथ्वी का आकर्षण फिर मनुष्य को खींचे और लिफ्ट की वापिस यात्रा में पुनः नीचे दुख भोगने भेजा जावे। चक्र पूरा हो गया जहां से गया वहीं लौटा दिया गया।

कुछ मानव तीसरी मजिल पर पहुंचे, जो ईथर का उन्नतम प्रदेश है। यहाँ पहिले तो स्वछन्द आनन्दमय विचरने को मिलता है। और तदुपरान्त यदि वह चाहे तो चौथी मंजिल के मनोमय लोक में जाने का अवसर मिले।

THE ORIGINAL "RECYCLING PLANT"

Explanatory note to Fig. 34-from the book "After We Die What Then ? by Mr. George W. Meek. U S A.



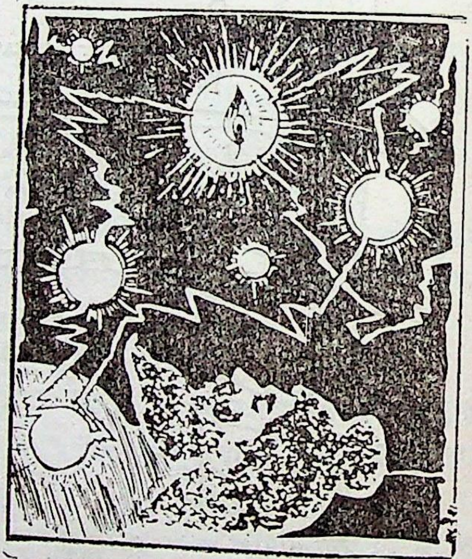
विवरण कृपया पृष्ठ १५३ की अंतिम लाईन से पृष्ठ १५४ तक पढ़ें।
—लेखक

परन्तु कर्मानुसार पुनर्जन्म लेने के पूर्व एक प्रदक्षिणा ग्रहों और नक्षत्रों की करनी होती है। वहाँ विभिन्न अन्य आत्माएं वहाँ के जलवायु के अनुसार आकार–प्रकार की मिलती हैं। उनसे विचार विनिमय होता है। वहीं सूक्ष्म शरीर दृढ़तर होता है और जैन दर्शनानुसार कर्म के पुगदल आत्मा में चिपक जाते हैं। तब आत्मा एक बार अपने पूर्व निवास पर मोह को अन्तिम अलविदा करने जाता है। और तब पुनर्जन्म लेता है। इसमें यजुर्वेद (३९-५) का शब्द प्रमाण हैं जो इस प्रकार हैं :–

सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीयऽऽआदित्यञ्चतुर्थे चन्द्रमा पञ्चमऽऋतुः षष्टे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमें। मित्रो नवमे वरुणो दशमऽऽएकादशे विश्वे देवा द्वादशे ॥ यजुर्वेद ३९/६

इस का भाषा में पदार्थ और भावार्थ वेदभाष्यकार महर्षि दयानन्द सरस्वती ने निम्न प्रकार किया है।

पदार्थ :–हे मनुष्यों ! इस जीव को (प्रथमें) शरीर को छोड़ने से पहले (अहन्) दिन (सविता) सूर्य (द्वितीये) दूसरे दिन (अग्नि) अग्नि (तृतीय) तीसरे (वायुः) वायु (चतुर्थे) चौथे (आदित्यः) महीना पञ्चसे (चन्द्रमा) चन्द्रमा (षष्ठे) छटे (ऋतुः) वसन्तादि ऋतु (सप्तमे) सातवें (मरुतः) मनुष्यादि प्राणी (अष्टमे) आठवें(बृहस्पतिः)बड़ों का रक्षक सूत्रात्मा वायु(नवमे) नवम में में (मित्रः) प्राण दशमे दशवें में (वरुणः) उदान (एकादशे) ग्याहरवें में (इन्द्रः) विजुली और (द्वादशे) बाहरवें दिन (विश्वे) सव (देवाः) दिव्य उत्तम गुण प्राप्त होते हैं।



भावार्थ :–हे मनुष्यों ! जब ये जीव शरीर छोड़ते हैं तब सूर्यप्रकाश आदि पदार्थों को प्राप्त होकर कुछ काल भ्रमण कर अपने कर्मों के अनुकूल गर्भाशय क प्राप्त हो शरीर धारण कर उत्पन्न करते हैं,तभी पुण्यपाप कर्म से सुखदुःखसय कर्मो को भोगते हैं। [यजुर्वेद भाष्यम् (चतुर्थो भागः) वैदिक यन्त्रालय अजमेर १९८६ पृष्ठ २८७]

इस पुस्तक के पृष्ठ १३ तथा १५४भी पर यह यात्रा वर्णि त है।

उसे काल्पनिक चित्र द्वारा एक कलाकार नीलिमा महाजन ने इस प्रकार से दर्शाया है।

अन्यथा वह पृथ्वी पर पुन: सुख भोगने भेजा जावे। यहां से धक्का देकर नहीं गिराया जाता। मनुष्य की अपनी इच्छा पर है।

और कुछेक जो चौथी मंजिल पर चढ़ गये। वही आनन्दमय लोक में हैं वह तो दैवीय सम्पद के सानिध्य में है, मुक्तावस्था में है। वहां जाकर ईथरमय शरीर [सूक्ष्म शरीर] झड़कर गिर पड़ता है। मानो वहाँ विशिष्ट प्रकार का दूसरा जन्म होता है। उसे यह भो विकल्प है कि सूक्ष्म शरीर के साथ हो वहां आनन्द में विचरता रहे और ईश्वर से साम्य प्राप्त करे। तथा यदि दया से उसका चित्र भरा हो तो मानवों के कल्याणार्थ फिर पृथ्वी पर लौट आवे। जो हजारवें ईश्वर के सानिध्य में यश के आनन्द का लाभ करते हैं। वहाँ से वापिस आना सम्भव नहीं है। [यह मीक महाशय का मत है।]

पशु पक्षी की योनि में जाना :—

नीचे स्तर में कष्ट भुगवाने की बात तभी संभव है जब दण्डरूप में आत्मा को जलचर, थलचर, या नभचर बनाया जावे। डार्विन के खोजों ने पशुओं के क्रमश: योनि परिवर्तन या सिद्धान्त को सुस्थिर कर दिया है कि किस प्रकार एक योनि के अप्रयाजित अंग समाप्त हो जाते हैं तथा नये अंग आवश्यकतानुसार उभर आते हैं। अमीबा से कछुआ, मेंढक, सर्प, बंदर और वनमानुष होते हुए मनुष्य योनि बनी है। अरविन्द आदि मनीषी मनुष्य से उन्नततर एक योनि की कल्पना किये बठें हैं। इस पद्धति को विकास की पद्धति कहते हैं। पर विकास और अविकास का तो जोड़ा हैं। उत्क्रमण और निष्क्रमण एक दूसरे को जन्म देते हैं। इसकी विलोम पद्धति से मनुष्य पशु पक्षी योनि में जाना होगा। ऐसा नहीं है कि पशु-पक्षी योनि सर्व कष्टमय ही हैं। कभी-कभी मनुष्य से पशु पक्षी योनि में जाना सुखतर हो सकता हैं।

पशु पक्षियों को विधना ने स्वाभाविक गुण दिये हैं। जिनसे मानव वंचित है। पशु बिना सिखाये पानी पर तैरता है। और पक्षी बिना सिखाये आकाश में उड़ने लगता है। उनके जीवन में भी वही आकर्षण और प्रसन्नता है। पक्षियों का कलरव, व्योम में स्वच्छन्द विचरण करते हुए प्रकाश, ताप और आक्सीजन प्राप्त करना, तितलियों का रंग बिरंगा परिधान, उनको भोजन की सहज प्राप्ति और उससे संतोष, उनका संभोग सन्तानोत्पत्ति और अपनी संतान को प्यार दुलार, उनके प्रति सृष्टि कर्ता का दयाभाव प्रगट करता हैं।

कतिपय पशु पक्षियों का स्वाभाविक गुण है जो उन्हें सुरक्षित रखता है, और उनका जीवन मधुर बनाता है :-

१– जब आँधी आने को होती है तो उन्हें ज्ञान हो जाता है और वे इधर-उधर उड़ने लगती हैं।

२– वर्षा आने के संकेत पर मोर नाचने लगते हैं।

३– भयावह रात्रि में और सुखद ऋतु परिवर्तन पर प्रातः बेला पर उल्लू बोलने लगता हैं।

४– चिमगादड़ और अवावील होने वाले दिन के शुष्क होने की पूर्वानुभूति पर आकाश में ऊंचा उड़ने लगते है। और वर्षा के संकेत पर नीचे उतरने लगते हैं।

५- प्रातः होने वालो वर्षा की सूचना रात्रि आने पर ही कौआ वोलने लगता है तथा मुर्गियां सुरक्षा के लिये पटी हुई जगह की ओर दौड़ने लगती हैं

६– आंधी आने से पहिले बतखें फड़फड़ाने लगती है।

७– यदि बादल बरसने वाले होते हैं तो हस तीर की तरह पानी के ऊपर उड़ने लगते हैं। अन्यथा वे ऊपर पहाड़ी की ओर उड़ जाते है।

८– जब वर्षा होने वाली हाती है तो अवानील जाकर मैदान में बैठ जाती है।

९– मौसम भद्दा होने वाला होता है तो लाल छाती वाली रोबिन चिड़िया झाड़ी में बैठकर गाती है। अन्यथा खलिहान पर बैठकर गाती है।

१०– जब बिजली कड़कने वाली होतो हैं, बिल्ली पागल सी इधर उधर दौड़ने लगती है। और उसके बालों को छूने से करैन्ट सा लगता है।

११– वर्षा के आगमन को अनुमान कर कुत्ते उत्तेजित हो जाते हैं और घास खाने लगते हें और सुअर पैर से मिट्टी खोदने तथा कान फड़फड़ाने लगते हैं।

१२– धूप के आगमन का पूर्वानुमान कर गाय मनुष्य को शान्त भाव से दिखने लगती है। और व्रर्षा आने वाली होती है, तो लेट जाती हैं।

१३– बर्फ या वर्षा के आगमन से पूर्व भेड़े दीवाल से सट कर खड़ी हो जाती हैं।

१५– आगामी शरद जब कड़ी होनी होती हैं तो गिलहरी बोज व अनाज इकट्ठा करना शुरु कर देती है।

१५- मधुमक्खियां मधु संचय करके अपनी रानी मक्खी हेतु उपलब्ध कराती हैं।

१६- चींटी सूंघकर मार्ग बनाती हैं तथा आगामी पथ या विपत्ति की सूचना मौन भाषा में अपनी साथी चीटियों को देती जाती हैं।

१७- चील व गीद्धों का खेत व खलिहान] पर आना विपत्ति सूचक होता हैं।

१८-दीमक १५२ मीटर तक की गहराई पर स्थित पानी का पता लगा लेती है। वह यह यात्रा तिरछे कोण पर करती है न कि लम्बरूप से ताकि गिर न पड़ें।

१९- बदर तथा वनमानुष तथा कुछ पक्षी पेंटिंग करना जानते हैं।

२०- कुत्ते भागे मनुष्य के पैरों की छाप की गंध से उस मनुष्य के जाने और भागने का पथ निश्चित कर देते हैं।

इन उदाहरणों में जो उनका स्वाभाविक गुण छिपा हैं, वह उन पर प्रभु की कृपा का द्योतक है तो धर्माचार्यों के मत में है, पर दर्शनशास्त्र की दृष्टि से तो उनमें यह गुण पूर्वजन्मों में इंसान होने और हर इंसानी जीवन से लाये हुए संस्कार व स्मृति के कारण ही है। वे कष्ट तो उठा रहे होते हैं। पर उनका जीवन भी सहज, सुन्दर, अल्प परिश्रम साध्य तथा न्यूनतम आवश्यकताओं वाला होने से सुखद भी है। हाँ उसकी स्वतन्त्रता का अपहरण अवश्य कर लिया गया है।

क्या वृक्षादि के रूप में जीवन जन्म लेता है :—

वृक्ष योनि में नहीं है, फिर उनमें जन्म लेने का प्रश्न ही नहीं उठता। वृक्ष जड़ हैं। जड़ का अर्थ है जीवनहीनता। इस पर थोड़ा विचार करना आवश्यक है :-

वृक्ष बीज से उत्पन्न होते हैं। जो बीज बोया है, उससे वही वृक्ष उत्पन्न होगा। वृक्ष पृथ्वी से नाईट्रोजन व कार्बन तथा जल से आक्सीजन व हाईड्रोजन एक खुले वायुमंडल से आक्सीजनादि की खुराक प्राप्त करते हैं। हर फूल व पौधे का एक अपना व्यक्तित्व है। उनके फूलने फलने व गिरने का समय निश्चत है। उनको सुगन्धि व स्वाद अलग है। फूलों का रग तथा ज्यामिवि-

=सिद्ध रुप भी ज्ञानपूर्वक क्रमि लगती है। और एक अणु में इलैक्ट्रोन, प्रोटान व न्यूट्रान गणितीय फार्मूले के रूप में पिरोये हैं। उनमें इलैक्ट्रान के घूमने की गति और सँख्याएं निश्चित हैं। पौधे रोते हैं, वैदिक सम्पत्ति पुस्तक में अफ्रीका देश के एक ऐसे वृक्ष का उल्लेख है जो कि हर निकट आने वाले व्यक्ति को अपनी शाखाओं से घेर कर दबोच लेता है। इस सबसे स्पष्ट है कि वृक्षादि में चेतना है। और बुद्धिपूवक चेतना है। वृक्षों पर ही क्या पत्थरों के आयतन पर प्रयोग हुआ है और पाया गया है कि सौकड़ों वर्षो में वह आयतन भी बढ़ जाता है एक निश्चित फार्मूले से बड़ जाता है।

इधर Bachester Research Foundation Newyork के मुख्य वैज्ञानिक ने तो पौधों से बात करने की पद्धति निकाली है। जो झूठ पकड़ने की मशीनें [Lie Detector Poly Graph] बनी है उसमें पौधों को Input पर लगा दिया गया और पौधों के ग्राफ बन आये। उनका कहना है कि जगत की चेतना Frequency उसने नाप ली है। इसी प्रकार वाशिंगटन की अमेरिकन यूनिवर्सिटी में वैज्ञानिक Edmund Burnett JR ने पोधों की विकृत लहरों को शब्दों में बदला है। उसने ४५ चक्र प्रति मिनट पर कुछ पौधों के रिकार्ड तैयार किये हैं। उन रिकार्डों पर डा० ल्वाहड डल्टन [वहां के संगीत विभागाध्यक्ष] ने परीक्षण करके सम्मति दी है कि विभिन्न पौधों से विभिन्न प्रकार संगीत प्राप्त हुआ। टमाटर के पौधे ने वहुत जोर का शब्द किया। एक परीक्षण में पाया गया कि चार भिन्न भिन्न प्रकार के पौधों में संगीत मधुर हो रहा था पर जैसे ही एक एक अजनबी व्यक्ति लैबोरेटरीमें आया, संगीत एकदम बंद हो गया, ईस्टर लिलि के ६ पौधों ने उल्टा प्रभ दिखाया कि अजनबी के आने पर वे जोर जौर का शब्द करने लगे। इससे सिद्ध होता है कि पौधों में बुद्धि जन्म चेतनता है, पर वह चेतनता तो पत्थर व मिट्टी में भी है। पत्थर फेंके जाने पर फेंकने की गति और गुरुत्वाकर्षणके फोर्सों के समुच्चय से जिस दिशा में बढ़ता है वह ट्रेंजैक्टरी ज्योमिति सिद्ध इलिटीकल शक्ल की ही सदा होती है। वास्तव में यह सार्वजनीन चेतनता हैं। धार्मिक लोग इसे ईश्वरी शक्ति कहते हैं। इस चेतनता के साथ निम्न गुण नहीं है- जो जीव के साथ होने चाहिए।

१- कार्य करने की स्वतन्त्रता। जीव के विषय में कहा है कि वह सामर्थ्य रखता है—कर्त्तुम, अकर्त्तुम अन्यथा कर्तुम। अफ्रीका का उपरोक्त वृक्ष हर पास आने वाले व्यक्ति को दबोच लेगा। किसी को न दबोचे या कभी दबोचे कभी छोड़ दे—यह शक्यता उसमें नहीं है।

२– सोचने, कार्य-कारण का सिद्धान्त भिड़ाकर किसी घटना पर Rational निर्णय जीव ले सकता है। पेड़ पौधे नहीं।

२– पौधों को स्वाभाविक ज्ञान हो सकता हैं, पर नैमेत्तिक ज्ञार्नाजन की शक्ति उनमें नहीं है। कर्तव्य, भोक्तव्य एवं ज्ञातृत्व न होने से वे जीवमय नहीं है। उनमें चेतनता है, पर वह तो सर्वव्यापक प्रभु की शक्ति या चेतनता है। व्यक्ति वाचक जीवोक्त चेतनता नहीं है। अतः वृक्षों में कर्मफल हेतु जीव का जाना असम्भव है।

मृत्यु दूसरें जन्म की जनक है :–

मानव जीवन यद्यपि स्थूल शरीर में जीवन शक्ति के विभिन्न स्वरूपों में अभिव्यक्त होता है, फिर भी इसकी जड़ें सूक्ष्मतल में गहराई से गयी होती हैं। यह भौतिक जीवन बड़ा ही क्षणिक होता है। यह अनन्त अमर आध्यात्मिक जीवन को उद्भासित करने का माध्यम मात्र है।

सूक्ष्मतल [मानसिक स्तर या मनस्तल] में आत्मा जब स्थूल शरीर से सारे संबंध विच्छेद कर स्थित हो जाती है, तो कहा जाता है कि व्यक्ति की मृत्यु हो गयी। पर अपने व्यक्तित्व के माध्यम से जिन क्रियाओं का आरम्भ उसने किया था, वे यद्यपि, अन्य लोगों को दृष्टिगत नहीं होती। फिर भी अदृश्य रूप से वे क्रियाशील रहती हैं। सार्वभौमिक जीवन सागर में एक तरंग उत्पन्न करती है। व्यक्ति द्वारा मानसिक या शारीरिक रूप से किये गये कर्मों की एक प्रतिक्रिया अवश्य होती है। आप एक शांत सरोवर में पत्थर का टकड़ा फेंकते हैं तो पाते हैं कि इस क्रिया के परिणाम स्वरूप सरोवर में उठने वाली तरंगे उत्तरोत्तर बड़ा घेरा बनाती हुई दूसरे किनारे तक पहुंच जाती है। इस तरह व्यतित्व वर्ग के द्वारा किया गया कोई कर्म उसके मर जाने के पश्चात भी उसके कर्म की प्रतिक्रियाएं [तरंगे] क्रियाशील रहतो है। मानव अस्तित्व के विशाल वृक्ष का यह जीवन एक अंश मात्र हें : इस जीवन वृक्ष के धरती के ऊपर स्थित धड़, शाखायें एवं पत्तिया है न कि गहराई में छुपी जड़ें। मानव के मनस्तल [सूक्ष्मतल] में वर्तमान रहती है। जीवात्मा के वर्तमान सार तत्त्व एव बीते जन्म में कृत कर्मों का बोज स्वरूप संस्कार एक नये वृक्ष के मूल का निर्माण करते हैं। जब एक व्यतित्व की डाल पत्तियाँ विनष्ट हो जाती है, तो गहराई में स्थित मूल से नवीन शाखाओं के रूप में

दूसरे व्यतित्व का आविभवि होता है। अतः मृत्यु नये जीवन का सूत्रपात है। जीवात्मा से स्थूल शरीर से पृथक शरीर को दूर जीवन ज्योति समाप्त करने के पश्चात भी पूर्व स्थित मनोबल में निरन्तर बनी रहती है। और तब वे कर्मों के रहस्यमय क्रियाशीलता से जीवात्मा के साथ संलग्न भौतिक तत्वों के अनुसार अपने अनुसार परिवार सांसारिक परिवेश का चुनाव कर अपना विकास निरन्तर बनाये रखते हैं।

काम क्रिया में सुख की प्राप्ति की प्रवृत्ति के माध्यम से, जीवात्मा माता के गर्भ में अपने निवास के लिए भ्रूण का निर्माण करती है जो आगे चलकर स्थूल शरीर का रूप धारण कर लेता है। भ्रूण का विकास होता हैं। अत्यन्त सूक्ष्म क्रियाओं से भ्रूण का विभिन्न भाग गर्भ में बढ़ते बच्चे के विभिन्न अवयवों के रूप में विकसित होने लगते हैं। ? शिशु विकास के सारे परिवर्तन रहस्यमय, जटिल किन्तु कलात्मक शारीरिक रचना में क्रियाशील सूक्ष्म शक्तियां जीवन के सार्वभौमिकता के नियम परमेश्वरेच्छा के साथ सामंजस्य स्थापित कर जीवात्मा के संकल्प से ही सम्पादित होता हैं। ईश्वरीय नियम के कारण जीवात्मा सूक्ष्म मनोतल पर क्रियाशील होने में सफल होती है, जिसके कारण यह जीवात्मा उचित मात्रा में सूक्ष्म तत्वों का ग्रहण कर अपना वाहन केवल स्थूल शरीर तक ही सीमित नहीं रहती किन्तु इसका सम्बन्ध मानसिक पृष्ठभूमि एवं वर्तमान स्थितियों में भी मनोवैज्ञानिक अनुकूलन से भी होता है। वस्तुतः जीवात्मा व्यतित्व के भविष्य का चुनाव करता है।

मृत्यु के बाद आत्मा को कई सूक्ष्म चुनाव होते हैं कर्मानुसार ये अनुभव अत्यन्त पीड़ा या असीम आनन्द के रूप में हो सकते हैं। जब इसे सूक्ष्म अनुभव होते रहते है, उसी समय से यह जीवात्मा स्थूल जगत् में अभिव्यक्त होने के लिए समुचित परिस्थति की खोज आरम्भ कर देता है। एक तैराक सागर में चाहे कितनी देर तक क्यों न तैरता रहे, अन्त में उसे किनारे पर आना ही है। ठीक यही बात पुनर्जन्म लेते हुए जीवात्मा एव परिवेश प्राप्त हो जाता है, और तब वह एक जीवित शिशु के रूप में स्वयं को अभिव्यक्त कर लेती है रेडियो अब टयून हो गई है। हृदय के रूप में दिव्य बैट्री चलने लगती है। इस प्रकार जीवन अभिव्यक्त हो जाता है। लोग कहते हैं— यह बालक ठीक अपने मां व पिता के समान लगता है। वे इसका एक नाम दे देते है। किन्तु शिशु के जन्म की पृष्ठभूमि में उपस्थित अत्यन्त रहस्य की बातों पर तनिक ध्यान भी उन्हें नहीं रहता है।

वस्तुत: मृत्यु, जीवन का अन्त नहीं है, बल्कि जीवन सरिता के सतत् स्रोत को नूतनता तथा नवशक्ति प्रदान करने की एक स्थिति है। स्नायुओं से संचरित आपका शरीर सम्पूर्ण स्वरुप नहीं है। यह आपके आंतरिक स्वरुप का एक निवास स्थलमात्र है। आपका आंतरिक स्वरूप आपको अन्तरात्मा, इस स्थूल शरीर के माध्यम से क्रियाशील होती है। इसके द्वारा यह [आत्मा] विभिन्न अनुभवों को ग्रहण कर आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करता है और जब स्थूल शरीर इसके कार्य के लिए उपयुक्त नहीं रह जाता तब जीवात्मा इसका त्याग कर देता हैं। स्थूल शरीर की मृत्यु से जीवात्मा की जीवन यात्रा समाप्त नहीं हो जाती, बल्कि आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर जीवन की गतिविधि को और अधिक तीव्र कर नवीन अवसर प्रदान करता है।

अपने पिंजरे से मुक्त हो असीम आकाश के अनन्त विस्तार को प्राप्त करने वाला स्वतन्त्र पक्षी अपने पूर्व स्थान [सीमित पिंजरे] के लिए भला कैसे दुखी हो सकता है?

अब एक ही प्रश्न शेष रह जाता है कि क्या जीवन की आयु निश्चित है। यह सच है कि वैदिक वाङ्मय मे बार बार सौ वर्ष की आयु की कामना व्यक्त की गई है।

१– इमं जीवेभ्य: परिधं दधामि मेषां नुगादपरोऽअर्थमेतम।
शतं जीवन्तु: शरद: पुरुचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन॥ यजुर्वेद [३५/१५]

अर्थात् मैं ईश्वर इस परिधि को जीवों के निमित्त स्थापित करता हूं कि इन जीवों के मध्य कोई भी पूर्ण आयु से पूर्व गमन न करें, यह सब यज्ञानुकूल होते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहें। परिधि रूपी पर्वत मृत्यु को रोके।

अथर्ववेद का ८/२/२ वाला मंत्र और उसका भाष्य
जीवतां ज्योतिरभ्ये हार्वाणा त्वा हरामि शत शारदाय।
अवमुञ्च मृत्युपाशान शस्ति द्राघोय आयु: प्रतर ते दधामि।

अर्थात हे जीव [पुरुष] तू प्राण धारण करने वाले जीते जागते लोगों की ज्योति प्रकाश या कीर्ति को साक्षात प्राप्त कर। तुझको मैं ईश्वर सौ वर्ष की आयु भोगने के लिए इस जीव लोक में [पृथ्वी पर] लाता हूं। और मृत्यु के बन्धनों को और निन्दाजनक अपकीर्ति या निन्दनीय गति को दूर करता तुझे उत्कृष्ट दीर्घ आयु प्रदान करता हूँ।

परन्तु न केवल उपर्युक्त उभय वेद मंत्र और आयु सम्बन्धी वह सब वेद मँत्र जिनमें, 'शरदः शतम्' शब्द आते हैं [वह तथा अथर्व ५/२६/१ व १४/२/२ व १४/२/६६ एव १४/२/७५] वह सबके अमैथुनी सृष्टि से सम्बन्ध रखते हैं। कारण जब परमात्मा सृष्टि और प्रति मन्वन्तर को आदि में अमैथुनी सृष्टि द्वारा मानवीय योनि में जीवों को लाता है तब मानवीय योनि में जीवों को लाते समय मानव शरीरस्थ जीवों को वह यह वचन देता है कि मैं सौ वर्ष की लम्बी आयु देता हू, तू इस मानव योनि में शत वर्ष तक रहते हुए उत्तम आचरण कर। तुझको मृत्यु शत वर्ष के मध्य में नहीं आयेगी। मैं मृत्यु को रोकने के लिए शत वष की परिधि रूपी सीमा पर्वत के समान स्थापित करता हू।

अमैथुनी मानव सृष्टि में परमात्मा मुक्ति से लौटे हुए और उन जीवों को लाता है कि जिन जीवों के अच्छे बुरे सब ही कर्मों के फल भोग कर नष्ट हो चुके हैं। गत योनि में किये किसी कर्म का फल भोगना शेष नहीं रहा है इसीलिये अमैथुनी सृष्टि में सभी मानवों की आयु एक समान शत वर्ष की परमात्मा निश्चित कर देता है। किसी भी मानव की कम या अधिक नहीं। सब एक समान आयु वाले होते हैं जैसा कि ऋग्वेद५/५८/५ और ५/५०/५ में भी बतलाया गया है। इसलिये अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न मानव योनि को कर्म योनि कहा गया है। इस योनि में उत्पन्न जीव आगे के लिए कर्म ही करता है, फल नहीं भोगता। परन्तु तदन्तर हरेक को एक चोले की आयु निश्चित प्रतीत होती है जैसा कि निम्न ऋचा से प्रगट है।

सर्वो वैतत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः।
यत्रेद ब्रह्म क्रियते परिधि जीवनायकम्॥ [अर्थवेद ८/२/२५]

अर्थात गौ, घोड़ा, मनुष्य और पशु सब ही वहाँ तक जाते रहते हैं जहाँ तक परमेश्वर ने उनके मुख से जीने के लिए परिधि [सीमा] नियत की है।

मंत्र मैथुनी सृष्टि से सम्बन्ध रखता है कारण कि मैथुनी सृष्टि में जीव अपने कर्म बन्धन के साथ आता है और सब जीवों के कर्म एक से होते नहीं, भिन्न-भिन्न होते हैं इसलिए परमात्मा जीवों के कर्मानुसार मानव योनि में और मानवेतर योनि में जीवों का आधान काल अर्थात शरीर में रहने की

अवधि अर्थात आयु भिन्न-भिन्न निश्चित निर्धारित कर देता है। यही भाव सामवेद के निम्न मंत्र में कहा गया है :–

कई वेद सुते सचा पिवन्तं कद्वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्योजसा मन्दानः शिप्तयन्घसः ।।

[पूर्वार्चिक २९ सामवेद, उत्तरार्चिक । ८९६]

अर्थात वह संसार में इन्द्रिय भोग करने वाला जीव कितनी आयु धारण करता है। इसको वह प्रजापति परमेश्वर ही जानता है जो द्यु और पृथ्वी लोक का आनन्द स्वरूप तथा अपने तेज से अज्ञानान्धकार के समूह को छिन्न भिन्न करने वाला है। उपनिषदों में भी यही संकेत मिलता है।

[१] इति तु पञ्चम्यामाहुतावापःपुरुष वचसो भवन्तीति स उल्बावृतो गर्भो दश वा नव वा मासानन्तः शयित्वा यावद्वय जायते ।। १ ।। स जातो यावदायुषं जीवति । त प्रेतं दिष्टा मितोऽग्नय एवं हरन्ति यत एवेतोयतः सम्भूतो भवति ।।२।।

[छान्दोग्नोनिषद प्र० ५ खं० ९ श्लोक–२]

अर्थात ऐसे पांचवी आहुति में जल–रेतस–पुरुष वाची होता है। यह एक प्रश्न का उत्तर हुआ। वह जरायु में लिपटा हुआ गर्भ दम अथवा नौ मास तक माता के उदर में सोकर जब समय होता है, तब उत्पन्न होता है।

सो वह जन्मा हुआ जितनी आयु नियत हो, तब तक जीता है। अन्त में वह मर जाता है तो उस मरे हुए को यहां से अग्नियां अर्थात् ईश्वरी शक्तियां ही नियत निर्दिष्ट स्थान को ले जाती हैं। जिसकी प्रेरणा से जीव आया था तथा जिस शक्ति से वह उत्पन्न होता है उसी से निर्दिष्ट स्थान में कर्मानुसार जाता है।

[२] योषा वा अग्निर्गौतम तस्य उपस्थ एव सम्मिलोमानि धूमो योनिरच्चिर्यदत्तः करोतितेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गास्तस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुहोति तस्य आहुत्यै पुरुषः सम्भवति स जीवति यावज्जवत्यथ यदा म्रियते । [बृहदारण्यकोपनिषद् अ० ६ ब्रा० २ क० १२]

अर्थात गौतम स्त्री जाति ही पंचम अग्नि कुण्ड है उस इस अग्नि में देवगण रेत अर्थात बीर्य की आहुति देते हैं। उस आहुति से पुरुष उत्पन्न होता है। सो वह पुरुष जीता रहता है। वह उतने ही दिन जीता रहता है जितना उसका भोग रहता है। तब वह मर जाता है।

किन कर्मों के करने से कौन सी योनि में जन्म मिलता है इस पर महाभारत के अनुशासन पर्व अध्याय-३ में युधिष्टर और बृहस्पति के प्रश्नोत्तर हैं। उनका उद्धत करना दिलचस्प[INTERESTING] होगा -श्लोक ३५ से ३६ का भावार्थ-यदि जीव लगातार सुकर्मी रहा होता हैं तो वह अगले जन्म में लगातार सुखमय जीवन पाता है। यदि लगातार सुकर्मरत नहीं रहा होता है तो प्रारम्भ में कुछ सुख तथा बाद में दुःख भोगता है। परन्तु यदि वह कुकर्मरत रहा होता हैं तो वह यमलोक को जाता है जहाँ एक मध्यवर्ती योनि में रहता हुआ प्रचुर दुःख भोगता है।

श्लोक ५१-५२:— गुरु को हानि पहुंजाने वाला तीन बुरे जन्म - क्रमशः कुत्ता, ऐसा पशु जिसका शिकार किया जा सके और फिर गधा होता है। और फिर कुछ समय तक भूत बना घूमता है। तदन्तर वह ब्राह्मण कुल में जन्म लेता है। श्लोक ५३-५५:— गुरुपत्नी के साथ वैचारिक व्यभिचार की भी कामना मन में लाने वाले को कई ऐसी ही पशु योनियों में जन्म लेना होता हें जिसका क्रम यह होता हैं—तीन वर्ष तक कुत्ते के सामान योनि, फिर एक वर्ष तक कीड़ा मकोड़ा की योनियों में और फिर नीच वातावरण में मनुष्य का। श्लोक ५७-६२ जो पुत्र अपने माता पिता की उपेक्षा करता हैं वह मरकर पहले दस वर्ष तक खच्चर जैसी योनि में फिर एक वर्ष मेढेंक की योनि में, फिर ७ माह तक बिल्ली की योनि में, और फिर मानव जन्म मिलता है। और यदि माता-पिता की बुराई करता है तो क्रमशः सारिका, फिर दस वर्ष तक कछुआ फिर साही को योनि में, तदन्तर ६ माह सांप योनि में और फिर पुनः मनुष्य जन्म पाता हैं।

श्लोक ६३—६४:- जो नौकरी में विश्वासघात करता है वह मरकर दस वर्ष तक बन्दर बनता है, फिर पांच वर्ष तक चूहा ही योनि में रहता है। फिर ६ माह कुत्ता की योनि में रहकर ही पुनः मनुष्य बनता है।
श्लोक ६५से६९:— अमानत में खमानत कर वाले के सौ जन्म इधर उधर होते हैं फिर वह पन्द्रह वर्ष तक-कीट बनाया जाता है। और यब कहीं पुनः मनुष्य जभ पाता हैं।

जो दूसरों से ईर्ष्या करता है, मरकर सारस बनता है। जो विश्वास-घात करता है, वह मरकर आठ वर्ष तक मछली की योनि में रहता है और फिर चार माह के जिये हिरण बनाया जाता है। फिर एक वर्ष को बकरी

बनता है। फिर कीडा मकोडा बनता है। तथा तदन्तर ही मानव का चोला

श्लोक: ७५-७६:– भाई की स्त्री से व्यभिचार करने वाला ५ वर्ष तक नर-कोकिल होता। राजा या मित्र की स्त्री से व्यभिचार करने वाला ५ वर्ष तक कुत्ता, १० वर्ष भेड़िया, फिर १० वर्ष तक मुर्गा फिर तीन माह तक चीटी, फिर एक मास तक कीड़ा मकोड़ा, तदन्तर १४ वर्ष तक क्रूर क्रूमी होता हुआ हीं पुनः मनुष्य जन्म प्राप्त करता है।

श्लोक ८२–८३-अपनी पुत्री का कन्यादान एक व्यक्ति को करके जो दूसरे पति को समर्पित करता है वह मरकर क्रूर कृमि योनि को प्राप्त होता है जहाँ उसे १३ वर्ष बिताने पड़ते हैं और तब वह पुनः मनुष्य योनि पाता है।

श्लोक ९१–९७-कृतघ्न के दोषियों को पहिले तो यमालय में कष्ट भुगतवायें जाते हैं। वहां उसे बैंत, हथोड़ें, भाले, गर्म छड़ों आदि से यातनायें दी जाती हैं। तदन्तर क्रूर कीटादि की योनि में पन्द्रह वर्ष तक रहना होता है, फिर मानव माता के गर्भ में जाकर सौ बार भ्रूण हत्या सहनी होती है। फिर मनुष्य और जड़ के बीच की योनि में पैदा होता है। इस प्रकार होता हुआ वह फिर कछुआ बनता है।

श्लोक १२५–१३०–निश्चय ही पापात्मा का जड़ और चेतन के बीच की योनियों में डाला जाता है। हां पापों का प्रायश्चित करने से वृतपूर्ण जीवन रहने से जीवन में सुख मिश्रित दुख मिलना प्रारम्भ हो जाता है क्योंकि उदय परिवर्तन होने से पाप नहीं करता।

जो पाप से दूर रहते हैं वे नीरोगी तथा सुख काफी पाते हैं तथा सम्पन्न घर में जन्म लेते हैं।

यह शर्तें मनुष्य की तरह स्त्रियों पर भी लागू हैं, हाँ जिन पश्वादि योनियों का मानव के लिये पुनर्जन्म पर संकेत है, स्त्रियां उन योनियों की मादा बनाई जाती हैं। हां यह संकेत में संक्षिप्त ही कहा गया है।

इस सारे विवरण में द्रष्टव्य बातें यह है :–

१– कि पशु योनियां भोग योनियां हैं।

२– उन पशु योनियों में निर्बाधित काल प्रायः उस योनि की औसत आयु है।

३– इस योनि के बाद जीव फिर मनुष्य योनि में आता है। नर सदा नर और मादा सदा मादा योनियों में रहते हैं।

४– सारे कथानकों में वृक्षों को योनि नहीं माना है क्योंकि किसी पापात्मा हेतु किसी वृक्ष विशेष बनकर जन्मने का उल्लेख नहीं हैं।

५– एक यमलोक बताया है। जहां जेल के मानिन्द कष्ट दिये जाते है। यह ब्राह्मण ग्रन्थों के यम लोक से भिन्न हैं जहां पितरो से मिलन होके सुख होता है।

६- दण्ड का सिद्धान्त माना गया है कि समाज के या व्यक्तियों के प्रति की हिंसा का निराकरण कष्ट भुगतवाने से ही होता है।

७– पश्चाताप का सिद्धान्त कुछ अंशों में स्वीकारा गया है।

८– दण्डनीय आचार संहिता में क्रमशः भयंकरता निम्न क्रम में बढ़ती हैं। गुरु की अवज्ञा, गुरुपत्नि से व्यभिचार का भाव–माता की अवज्ञा, अन्य व्यभिचार–बहुपत्निव्व, भाई का निरादर कृतघ्नता–मृत्यु के स्वामी के प्रति विश्वासघात-ईर्ष्या–अमानत में खयानत–विश्वासघात और कामान्धता।

वास्तव में यह पुस्तक के निर्माणकाल की वरीयताएं [Priorities] हैं। काल के साथ साथ हरेक राष्ट्र के अपने अपने मापदण्ड होते है और उन्हीं के आधार पर भावी जन्मों की कल्पना है। इस विषय पर एक पश्चिमी विचारक को उद्धृत करना समीचीन होगा।

T. Parker–

The conception of the form of future life depends on the condition and character of the believer. Hence it is a state of war of peace, of sensuel delight, or reform or progress with different nations. The national formed of the next world is the index of man's state in this life.

Adamsmith–

We are lead to the belief of a future state not only by the weakness and fears of human nature, but by the noble and best principles which belong to it, by the love of virture and abhorence of vice and injuaies.

कर्म फिलासफी पर मैक्समूलर का सिद्धान्त :

If a man feels that what, without any fault of his own of suffers in this life, can be the result of some of his own former acts, he will bear his suffering with more resignation, like a dabtor who paying off an old dedt. And if he knew besides that in this life he may, by suffering not only pay off his old debts, but actually, lay bymoral capital for the future, he has a motive for goodness, which is not more selfish ehan it ought to be (Lectures on the Philosophy, Page–165)

अध्याय–४

आत्मा का अन्य लोकों में भ्रमण और जन्मना :–

विषय का वर्गीकरण—

अन्य लोकों का अस्तित्व और उनमें जीवन :–

१– मृत्यु समय का एक दृश्य । डायरेक्टर आध्यात्मिक गृह, एबी–६, सफदरगंज, दिल्ली द्वारा वर्णित ईथरल शरीर, ऐस्ट्रज [तारों से संबंधित] शरीर और मानसिक शरीर और फिर पुनर्जन्म ।

२– चेतना के अन्य स्तरों पर स्थित आत्माओं से सम्पर्क । अमेरिका को [Meta Science Foundation] फ्रेंकलिन वाथ–कारालोना में जार्जमीक के परीक्षण और स्पिरीकाम [Spricom] नामक यन्त्र का निर्माण ।

३– पुरुषसूक्त में वर्णित तीन चौथाई विश्व का आकाश में ऊपर स्थित होना और शेष एक चौथाई में हमारा यह भूमण्डल ।

४– विश्व को विशालता । प्रकाश वर्षों की भाषा में सूर्य चन्द्र, तथा अन्य ग्रहमण्डलों की हम से दूरी ।

५– आकाश का फैलाव । ध्रुव व वरुण तारे । पृथ्वी के घूमने का कान्तिवृत्त तथा उसके बारह भाग अर्थात राशियां । नक्षत्र, आकाश गंगा और उसमें स्थित २५० गुच्छ तारे और सारे [Organic] कार्बनीय तथा [Inorganic] धातु संबंधी तत्वों का वही निर्माण और स्थित होना ।

६– गृहमण्डल, नवग्रहों के नाम स्थिति व हम से दूरी [सूर्यलोक, चन्द्रलोक शुक्र, गुरु, मंगल ग्रह, [वीनस] बुद्ध ग्रह का वर्णन और वेदादि वर्णित नरक

से तुलना। बृहस्पति ग्रहों में मानव जीवन और उन ऐडवर्ड आशपोल के विचार।

७– थ्योसोफिस्टों की ग्रहों पर जीवन संबंधी मान्यता।

८– उड़न तश्तरियां और तत्सम्बन्धी [Observations] एवं अन्य लोकों से आने की सम्भावना।

९– बाहरी अन्तरिक्ष में जीवन की खोज विषय में अमेरिका की संस्था [Seti Search For Extra Territorial Intelligence] के प्रयत्न मैडरिड एट टिंविनबिल आस्ट्रेलिया से ७०००० हजार तक शब्दीय विद्युत तरंगों का भेजा जाना और उनका केलीफोर्निया में पकड़ा जाना कि उनमें कोई शब्द तरंग तो नहीं आ मिली हैं तथा [U. S. National Academy of Science] की एतद्विषयक १० वर्षीय योजना।

१०– डा० रेमण्ड मूडी के (Life after Life) एक मरणासन्न, फिर आजीवित रोगी पर प्रयोग और [O.B.E.(Out of Body experience) सम्बन्धी निष्कर्ष।

११– उल्कापात (Materoids) सन् १८६४ में ओरीजनल (दक्षिण पश्चिमी फ्रान्स में) गिरे तथा सन् १९३८ में तनजानिया में गिरे मीटराइड पर जार्ज क्लाज वार्टनागी, हान्सडीटर प्लग द्वारा अमेरिका में किए प्रयोग व अनुसन्धान तथा उनमें जीवनांश पाया जाना।

१२– परकाया प्रवेश। इस पर आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के डायरेक्टर डा० सोसिल के प्रयोग व निष्कर्ष। जीव की स्वप्न एवं जाग्रत में यात्राएं। इयान स्टीवेन्सन (केलीफोरनिया विश्वविद्यालय के पैरा साईक्लोजा विभाग के डायरेक्टर) द्वारा गिरधारीलाल जाट की आत्मा का शंकरलाल त्यागी के पुत्र सोमनाराम की आत्मा में प्रवेश वाली घटना से निष्कर्ष।

मृत्यु के आगमन समय का एक दृश्य :–पिछले अध्याय में वृहदारण्यक उपनिषद [४–३–३८] तथा [४–४–२] में वर्णित आसन्न मृत्यु का दृश्य वर्णित किया था अब एक एक दूसरा दृष्टिकोण दर्शाते हैं :–

ईथर एवं तारालोक और परलोक :–

कुछ शास्त्रों में जिस त्रैलोक्य का वर्णन है, वह सम्भवतया तीन कोष मय शरीर ही है। अन्नमय कोष, प्राणमय कोष। अतः इस भौतिक शरीर के अतिरिक्त तीन और शरीरों की कल्पना है। लिंग शरीर, कारण शरीर तथा सुक्ायम शरीर।

पृथ्वी भौतिक है । अतः भूतों से बना शरीर सबको दिखाई देता है। मृत्यू के समय लिंग शरीर [Etheral Body] अर्थात प्राणमय कोष पंच तत्व वाले शरीर से पृथक होकर उसके चारों ओर तीन इंच के घेरे में मंडराता रहता है। यह कोष ईथर के चार विभागों से मिलकर बना है। यह भौतिक शरीर की प्रतिकृति ही होता है । कब्रिस्तानों तथा श्मशान स्थलों में कभी कभी जो [Apparition] प्रेत-पिशाच वत दीखते हैं, वह यही प्राणमय शरीर होते है । यह दो दिन तक शव स्थान के चारों ओर वियोगाकुल होकर मंडराते रहते हैं । हिन्दू दर्शन में शव को शीघ्रातिशीघ्र भस्म करने का इसीलिए विधान है कि प्राणमय शरीर को बहुत कम समय तक वियोग दुख न सहना पड़े। तदुपरान्त प्राणमय शरीर नष्ट होकर अपने संगृहीत (Residue) कर्म विपाकादि सहित जीव को ईथर में छोड़ देता है।

जीव तब (Abtral) तारों से संबंधित संसार में प्रवेश करता है। यह शव के ६" के घेरे में अवस्थित होता है। इस संसार में भी मनुष्य कर्मानुसार सुख दुख अनुभव करता रहता है। इसी का उर्ध्वभाग स्वर्ग तथा अधः भाग नरक है। यह बुद्धि आश्रित-बौद्धिक भोग है । यह तारों से संबंधित शरीर धूम्र या बादलवत होता है परन्तु जिसकी आध्यात्मिक शक्ति जीवन में प्रतिबन्धित हो चुकी होती है, उनमें वह भौतिक शरीर की प्रतिकृतिवत होता है। तथा इसकी यात्रागति स्थान व काल से ऊपर होती है ।

तदन्तर यह तारों वाला शरीर [Astral] भी नष्ट हो जाता है और जीवात्मा मानसिक जगत में प्रवेश करता है । वहां से मुक्त होकर ईश्वर सानिध्य प्राप्त करता हैं, या कोई भौतिक शरीर प्राप्त करता है। पुस्तक God Realization प्रकाशक Sterling Publishers [P] Limited AB/9, Safdarganj, New Delhi-29 लेखक बी. एस. लाम्बा डायरेक्टर आध्यात्मिक गृह के लेख के आधार पर उद्घृत]

मरणासन्न लोक कैसे हैं, इस पर एक लेख श्री टोनी ओरटीन सम्पादक Psychic News का उस पत्रिका के फरवरी ८६ अंक में छपा है [प्रकाशन

स्थान : Farthem . WC21 9LW : London)

इसमें दो घटनायें लिखी हैं, जिसमें मृत घोषित व्यक्ति पुनः श्वाच्छोवास लेने लगे और अन्तराल की यात्राओं का वर्णन किया जिनमें मूलतः साम्य था :–

1, Barney Hayden, a Bristol Publican, 'seemed to be floating on the air, looking down at the doctors trying to save my life,'

Mr. Hayden was revived after suffering from a heart attack. Having left his physical body, the publican found himself 'in a beautiful garden full of trees and flowers.

'My father, who had died 15 years earlier, was there,'

The parent stood in front of a door in the garden wall. This appeared to lead into a long corridor,

"Don't come in yet,' he said, 'It's too soon.' And with that Mr. Hayden awok in hospital.

Durdana Khan was but two when she died for 20 minutes from a brain virus,

Durdana-she is now 18 likewise found herself 'in a big garden, "She noticed stream and trees bearing many sorts of fruit.

She too saw others, Durdana encountered her grandfather and his mother and grandmother.

'Both had died long before I was born, 'She said. 'but I recognised them later from photographs.'

2- Meanwhile, Martin Ford, a Californian woodworking factory foreman 'felt weightless' after he died.

Mr. Ford Found himself to be looking down on a a beautiful city.

Going closer he saw "millions of shimmering lights and one central powerful light that was the source of all others.

Like many others, Mr. Ford had a conversation with the light,

'We didn't use words, he explained, 'It was more a feeling, Than I felt something tuggieg me and I was back in my body.

The magazine in question quoted Dr. Tom Smith, medical adviser to 'Pulse, 'the medics' journal.

Dr. Smith quite rightly pointed out the such accounts 'have remarkable similarities.

'They begin by floating above their bodies, watching what is going on below.

'Then they talk of travelling down a tuneel with light at the end.

'They all speak of a bright light, of great joy, of someone they know coming to meet them.

जन्म पुनर्जन्म :–

मृत्यु और जीवन से सम्बन्धित सभी भाषाओं में अनेक शब्द हैं। उनमें देश धर्म या जाति का कुछ सम्बन्ध नहीं है। जैसे कि 'अंतिम इच्छा' डेथविश 'डेथनेल', 'डेथफोबिया', 'लाईफलैस' आदि। फिर 'जीवन' का सम्बन्ध तो 'अस्तित्व' के साथ है और मृत्यु का 'विनाश' के साथ। 'मृत्यु' पर चर्चा करना या मृत्यु को जन्म से हो अस्वीकार करना तथा जीवनकाल में मृत्यु का भय रखना तो प्रचलित मानसिक स्थिति है ही। मृत्यु 'मर्त्य' का स्मरण करवाती है। इस बात की अनुभूति मेरे साथ भी ऐसा हो सकता है लगातार मौत का डर बनाए रखता है। डाक्टर, उपदेश देने वाले तथा 'साधु-महात्मा' भी आसानी से नहीं बोलते। जीवन तथा मृत्यु को अधिकतर धर्म तथा अध्यातम या फिर 'पैरा' स्तर तक ही सीमित रखा जाता है। जीवन को भौतिक रूप में तो 'शरीर' ही कहेंगे। परंतु मानसिक तथा मनोवैज्ञानिक रूप से इन भौतिक रूपों के अतिरिक्त भी :र्गति' है जिसका अनुभव भी अनेक 'शरीरों' ने

किया है। कई व्यक्तियों को मृत्यु का पूर्व संकेत प्राप्त हो जाता है तथा कई को मृत्यु के समय अनेक 'अदृश्य' उनुभव होते हैं। 'मौत के निकट' का अनुभव 'नियर डेथ एक्सपीरिएन्स' विश्वभर में अनेक लोगों को हुआ है। स्पष्ट है कि 'शरीर' से पहले भी 'कुछ' है और बाद में भी। हम केवल देख रहे हैं वही तो जीवन नहीं है, न ही वह मृत्यु है। फिर क्या है यह सब ?

विश्वभर के सभी धर्मों ने 'मृत्यु के उपरान्त' क्या होगा, इस विषय पर टिप्पणी की है। हिन्दू धर्म में पुनर्जन्म निश्चित है, अर्थात 'लाईफ आफ्टर लाईफ'। इस्लाम में मृत्यु के उपरान्त 'जन्नत' या'दोजख' है। पुनर्जन्म नहीं। ईसाई धर्म में 'हैवन' या 'हेल' है परंतु पुनर्जन्म जैसी कोई चीज नहीं। बौद्ध धर्म में 'रीइनकारनेशन' यानी पुनः देह धारण ही होता है। परंतु विश्वभर में जिन लोगों ने 'मृत्यु' को देखा है तथा पुनर्जन्म लिया है। वे सभी धर्म के लोग हैं। अतः इनमें अन्तरात्मा का धर्म से अधिक सम्बन्ध नहीं रहता। इतना अवश्य है कि जिस सामाजिक या धार्मिक परिप्रेक्ष्य में लोग रहते है। वे अपने अनुभव भी उसी पृष्ठभूमि में ही व्यक्त कर सकते हैं। ईसाई धर्म में पुनः देह धारण करने का सिद्धान्त नहीं है परतु ईसा मसीह का ।रीजरकशन' तो हुआ –पुनः जीवित हुए तथा उन्होंटे सलाखों तथा भालों से अपने शरीर में खुदे निशान अपने अनुगामियों को दिखाए । ४५०० वर्ष पूर्व 'ओसीरस' जिसे जीवन उपरांत देवता माना जाता था, उनकी पूजा मिस्त्र में की जाती थी। रेमसेज द्वितीय ने मिस्त्र में 'मृत्यु' के बाद मानव अंगों को बड़ी बोतलों में डालकर शरीर को ममी बनाकर रख दिया। यूरोपीय देशों में भी बाम लगाकर सालों-साल शरीर को संभाल के रखा जा सकता था। इसी प्रकार अनेक लोगों ने मृत्यु को देखा है। विशेषतः वे व्यक्ति जो अन्तिम रूप से बीमार रहते हैं। यानी कि 'टर्मीनली सिक' मरीज। जिन व्यक्तियों को डाक्टर या चिकित्सक रूप में मृत घोषित कर देते हैं, उन्हें 'मृत्यु' से साक्षात्कार होता है। वह समय जब 'शरीर' त्यागा जाता है उस समय 'मेगनेटिक एनर्जी जोन' में उस व्यक्ति का सम्पर्क बना हुआ होता है। 'गूढ़' रहस्यमयी' यानी ऑक्कल्ट में विश्वास रखने वालों को अनेक 'जीवन-मृत्यु' दर्शन हुए हैं। हेलन वेमबाच ने अपने शोध कार्य में ७५० लोगों से भेंटवार्ता की तथा 'सम्मोहात्मक चिकित्सा' के द्वारा लोगों को जन्म से पूर्व साक्षात्कार करवाया है।

क्या बिना नींद या स्वप्न के निद्रा हो सकती हैं ? स्वप्न आते हैं जब मस्तिष्क की ओर अधिक रक्त जाता है। अधिकतर जब हल्की नींद आ रही

हो, स्वप्न लाए भी जा सकते हैं । अस्तित्व तथा ज्ञान जब अन्तरात्मा में सम्मिलित हो जाए जो स्वप्नों की अनुभूति होती है। वैसे आध्यात्मिक रूप से इस लम्बे उर्जा क्षेत्र में जीवन एक पड़ाव ही है। जीवन के पार अनन्त अनुभव है। संवेदिक अवगमों में जिसमें कि मुख्यता देखना, सुनना या छूना है, इसके पार है, मृत्यु का अनुभव । 'मृत्यु के उपरांत' जो हो रहा है वह 'सेंसरी परसेप्शन' से परे है। जो व्यक्ति 'मृत्यु' के बाद वापस आये हैं उनके अनुभव एक समान ही पाए जाते हैं । जीवन में अनेक कठिनाईयां तथा विषमताएं आती हैं। फिर भी हम इस जीवन से जकड़े रहते हैं तथा मृत्यु से भय करते हैं। विनाश में कितने लोग मृत हुए इससे मापा जाता हैं, इससे नहीं कि बचे हुए व्यक्तियों के दुःख तथा पीड़ा क्या है ? मृत्यु का डर सबके मनोविज्ञान में 'भयभीत' करने वाला शब्द है। इसी कारण स्वर्ग, नरक या पुनर्जन्म जैसे शब्दों का जन्म भी हुआ । पर क्या हमें मृत्यु का भय है या मृत्यु पूर्व होने वाली पीड़ा या खो बैठने का भय ?

मौत से 'श्वास' या प्राण तो शरीर में नहीं रहते, फिर भी बजूद एक अदृश्य रूप में बना रहता है । 'कासमिक सेल्फ' में वह मिल जाता है। शरीर से उर्जा मुख्यतः हाथों के पंजों से, मस्तिष्क तथा नाभि के आस पास के स्थानों से निकलती है जिसका वस्तु उदाहरण 'गुस्से' को दिया गया है। इसका प्रमाण भी है कि गुस्सा आने पर इतना प्रभाव पड़ता है कि मानसिक संतुलन भो भंग हो जाता है। रोना, उदास हो जाना तथा शरीर का थक जाना कुछ चिह्न है। सभी आध्यात्मिक प्रचारक भी यही कहते हैं कि गुस्से पर विजय पाओ। यह 'स्वयं' का विनाश ही करता है। इसके विपरीत है 'प्रेम'। जब किसी की ओर स्नेहपूर्ण प्रेम भावनाओं का आदान प्रदान होता है तो साकार उर्जा क्षेत्र की वृद्धि होती हैं। जीवन में भी सुंदरता प्रतीत होती है। मन प्रसन्न रहता है तथा सुविचार भी आते हैं। इन्हीं विचार तथा भावनाओं पर हो संसारेतर सम्बन्ध 'जीवन-मृत्यु के बंधनों से पार जा सकते हैं। इस प्रकार जिसे हम जीवन मानते हैं वह मौत हो सकती हैं और जो मृत्यु है वह वास्तव में जीवन हो सकता है। यही कारण है कि हम एक आकृति सी बना लेते है-शिव, राम, कृष्ण, ईसा, दुर्गा या गुरु नानक की। किसी ने अपनी आंखों से देखा तो नहीं, फिर भी नाना प्रकार की कृतियां विभिन्न स्वरूपों में अपनी धारणा के अनुसार पाई जाती है। जिसे सभी लोग स्वीकार कर लेते हैं। इसमें 'समय' समाप्त हो जाता है। जीवन तथा मृत्यु

भी सांस्कृतिक सकल्पना है। जब हम इसे एक 'स्वरूप' से परे देखें तो समझ भी सकेंगे, महसूस भी कर सकेंगे। उसकी आत्मा को ईश्वर शांति दे। इसका तात्पर्य क्या है, 'आत्मा' क्या है और उसे शाँति क्यों चाहिए ? और उस आत्मा को शांति कौन देगा ? और मृत्यु के बाद तो उस व्यक्ति से संबंध समाप्त है फिर हम उसके लिए प्रार्थना क्यों करते हैं ? इसमें परस्पर कितने विरोध हैं। क्योंकि हम आत्मा के लिए शुभ मांग रहे हैं, इसका तात्पर्य है कि हमारा सम्बन्ध है–उस उर्जा से जो विचर रही है ब्रह्माण्ड में।

अमेरिकी लेखक बट्टी एड्ढी ने अपनी पुस्तक 'दि लाइट वियोड' में अपने मृत्यु अनुभवों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया वे। सभी अनुभवों में बात बराबर हैं कि जिन व्यक्तियों से हमारे भावात्मक तथा प्रेम आत्मीयता के सम्बन्ध हैं सभी ने उन्हें ही 'मृत्यु' उपरान्त अनुभवों में देखा है। जिस प्रकार जीवनकाल में भी हम उन्हीं व्यक्तियों के लिए व्याकुल रहते हैं जिनकी ओर प्रेम शुभकामनाएं हैं उसी प्रकार मृत्यु के उपरान्त भी यही श्रृंखला चलती है।

भूतयोनि तथा अन्य लोकों के सम्बन्ध में अद्वैत वेदान्त की मान्यता–
स्वामी ज्योर्मियानन्द इस विषय में निम्न विचार प्रस्तुत करते हैं :–

When the body becomes devoid of vital life, the soul along with [the mental matter is disconnected from the greoues of the brain. It exits finely in mental plan with depository impressions of actions. He is in a dream world, Then the spirit expands or contrasts in consciouness. Former is heaven latter is hell. After this heaven & hell, spirit takes up another personality (Pagc 56 third)

In life the body was existing to fuection as a value to regulate the experience of pleasure & pain After death the restriction caused by the body is dropped and therefore one experiences intense joy or intense Pain, The state of intense joy is swarg while the state of intense Pain is known as hell or Naraka. (Page 148 third)

-: विषय प्रवेश :-

४.०१ लोक लोकान्तर और सप्तमहाव्याहृतियां ओम् भू । ओम् भुवः । ओम् स्वः ओम् महः ओम् जनः । ओम तपः आम् सत्यम् ।

योगदर्शन ३/२६ [भुवन ज्ञानं सूर्य संयमात] की व्याख्या करके व्यासभाष्य में करते हुए कहा है कि सूर्य में संयम करने से इस भुवन [विश्व] का ज्ञान हो जाता हैं । भुवन के विस्ताररूप सात लोक व्यास मुनि ने वताये हैं :-

१- भूलोक-भूकेन्द्र से मेरु पर्वत के पृष्ठ तक ।

२- भुवःलोक :-मेरु पर्वत से ध्रुव तथा सूर्यादि ग्रहों, अश्विनी आदि नक्षत्रों और अरुन्धती आदि ताराओं से समवेष्टित ।

३-स्वः लोक=महेन्द्र की पांच प्रकार को सीमायें ।

४-. मह लोक :- पजापति का

५-६-७:- जनः तपः और सत्यम् लोक=ये ब्रह्म के लोक हैं । भोजवृत्तिकार ने भी सात लोक माने हैं ।

४.०१ विश्व की विशालता :-

अतः हम पहिले यह विचार करते हैं कि क्या इस भूमण्डल से इतर कुछ और है । सो विधान से अब तक प्राप्त ज्ञान का सार देना यहां अभीष्ट है पुरुष सूक्त में परम पुरुष का विस्तार बताया गया है कि वह सहस्र आंखों और सहस्स्र पैरों वाला है और चारों दिशाओं में व्याप्त है । प्रथम दो मन्त्रों में यह साधारण प्रतिज्ञा प्रस्तुत करके, आगे कहते हैं :-

एतावान् अस्य महिमा- अतः ज्यायान च पुरुषः ।
पादो अस्य विश्वा-भूतानि, त्रिपाद अस्य अमृतम दिविः । ।।३।।
त्रिपाद उर्ध्वःउद्वैत पुरुषः पादो अस्येहा अभवत् पुनः ।
ततः विश्वङ्. व्यअक्रमत् साशना नशने अभि ।। ।।४।।

[वह पुरुष इयना विशाल हैं कि सारा बिश्ब उसके केवल १/२ भाग में हैं । उसका ३/४ भाग तो आकाश से ऊपर है । यह अपने ३/४ भाग ऊपर प्रगट ही रहा है । और १/४ भाग यह पृथ्वी हैं । इस चतुर्थाङ्.श से ही पृथ्वी पर जीवधारी रहते हैं । और उनके खाने योग्य भाग पदार्थ उपजे है ।

ऊपर संकेत दिया गया है कि जो कुछ हमारे इस ब्रह्माण्ड पर हैं उससे तीन गुणा ऊपर स्थित लोक-लोकान्तरों और गृहों में है ।

इसी प्रकार ऋग्वेद १/२७/१ भी सात लोक बताता है :-

यतो देवा अवन्तु नोततो
विष्णु विचक्रमे पृथिव्या सप्त-धामभिः ।।

[यह ज्ञात हो कि विष्णु ने पृथ्वी आदि ७ लोकों का निर्माण किया है। ताकि सभी को अपने किये कर्मो को भोगने का अवसर मिल सके और जहां सृष्टि के सारे पदार्थ समा सकें]

पृथ्वी पर हम रहते हैं इसके बारे मे हमें ज्ञात है। इसकी परिधि लगभग ४०००० किलोमीटर है। हमारा निकटस्थ पड़ौसी चन्द्रमा लगभग ४००००० कि.मी. दूरी पर है। हमसे निकटस्थ सूर्य तारा हमसे १५ करोड़ किलोमीटर दूरी पर है। चन्द्रमा तक गत दशाब्दी में हम पहुंच गये हैं। सूर्य पर पहुंचना सम्भावना की परिधि में नहीं है। पर हमारे निकट के ग्रह–मंगल और शुक्र पर कदम रखना अब असंभवनीय है। फिर भी नहीं लगता है कि आने वाले कई दशकों तक सूर्यमाला को सबसे दूर का सदस्य प्लूटो सूर्य से लगभग छ अरब किलोमीटर पर घूमता रहता हैं।

ग्रहों के परे सूर्य से दूर कई तारे है। उनकी दूरी इतनी अधिक है कि उसे बताने के लिए इकाई के तौर पर किलोमीटर काम नहीं दे सकता। उसके बजाय खगोलशास्त्री 'प्रकाश वर्ष' [लाईट ईयर] को इकाई मानकर उसका प्रयोग किया करते है। प्रकाश एक साल में जो फासला तय करता वे, वह लगभग १०,००००००,०००,००० [एक हजार अरब] किलोमीटर होता है। तुलना के लिए हम सूर्य से पृथ्वी का फासला लें। यह फासला तय करने के लिए प्रकाश को केवल आठ मिनट लगते हैं। आठ मिनट और एक वर्ष में, इनमें कितना फर्क है, इसका अंदाज किया जा सकता है। परन्तु खगोलशास्त्री को अपने गणित के लिए प्रकाश वर्ष भी नाकाफी हो जाता है। उदाहरण के लिए हम आकाश गंगा को लें। रात में आसमान में जो आकाश दीखता हैं। वह अनेक तारों का समूह है। वे तारे हमारे तारिका विश्व की सीमा पर है। उनमें सूर्य के समान अनेक तारे हैं और उनसे कई गुणा प्रचंड, भीमकाय तारे [जायंट्स] भी है। उसी तरह सूर्य की अपेक्षा बहुत छोटे तारे [व्हाईट ड्वाफर्स] सफेद बौने, नीउट्रान स्टार्स तारे भी हैं। इसके अलावा, पल्सार, सुपरलोहा, कृष्णमेघ, [डार्क क्लाउड्स], तेजोमेघ [ब्राइट ने बुलाए] भी हमारे तारिका-बिश्व में समाविष्ट है। इस तारिका-विश्व का आकार बैच में फूली हुई रोटी जैसा है और उसका व्यास लगभग एक लाख प्रकाश वर्ष के बराबर है।

इस सदी के प्रारम्भ में कई खगोलशास्त्रज्ञों का ख्याल था कि विश्व की सीमा आकाशगगा तक ही है। परन्तु यह अदाज गलत साबित हुआ। आज के खगोलशास्त्र के वेध [आब्जर्वेशन्स] निश्चित कहते हैं कि विश्व असीम है। हमारे तारिका विश्व के परे अनगनित तारिका विश्व हैं। यह भी नहीं कि उनके समूल में हमारे तारिका विश्व को विशेष स्थान है। उससे विशाल अधिक, प्रकाशवान्, अधिक चमत्कारपूर्ण तारिका विश्व मौजूद हैं। इतना ही नही तारिका विश्व की अपेक्षा अद्भुत कई चीजों का संचय विश्व में हैं। कुछ स्थानों पर अत्यन्त प्रचड स्फोट हो रहे हैं। और उनमें से रेडियो-तरगों, किरणों [एक्सरेंज] गामा किरणों विश्व किरणों [कास्मिक रेज] का आविर्भाव होता है। दस साल पहले खगोलस्त्रज्ञों को क्वासीस्टेलर आब्जेक्ट्स अथवा क्वेसोर्स का पता चला। अतोव प्रकाशमान और अतीव संकुचित तारों की की भांति दिख पडने वाले परन्तु असल में इन तारों से बहुत प्रचंड आकार वाले ये क्वेसोर्स क्या है, इस प्रश्न का कोई जवाब अब तक प्राप्त नहीं हुआ।

वर्तमान दूरबीनें [टेलीस्कोप्स] दस अब्ज प्रकाशवर्षों तक देख सकती हैं। विश्व असीम होने पर भो खगोलशास्त्र इस अंतर की मर्यादा का पालन करने पर बाध्य है। यह फासला मूल कणों के व्यास की अपेत्रा कितना गुणा बड़ा है? लगभग १०^{40}, यानि १०,०००,०००,०००,०००,०००,०००,०० ०,०००,०००,०००,०००,०००,००० [१ पर ४० शून्य गुणा है। इन सख्याओं पर सोचने से ही मस्तिष्क चकराता है।

यह विशालता अथर्ववेद में यों वर्णित है। यहां विशाल प्रकृति का ब्रह्म कहा है जैसा कि मुण्डकोपनिषद में प्रयोग हुआ है।

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

[अथर्ववेद १०/७/३२]

अर्थात भूमि जिसके पादस्थानी और अन्तरिक्ष, उदर [के समान] है और मदयो को जिसने मस्तक [समान] रचा हैं उस सबसे बड़े ब्रह्मा को नमस्कार है।

४.०३ आकाश तत्व :-

आकाश वैदिक पंचतत्वों में से एक है। ईश्वरीय ईक्षण से सर्व प्रथम आकाश ही उत्पन्न होता हैं।

तस्मादा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः।

ईश्वरीय ईक्षण से जब भूतों के उदभव का क्रम आया तो पहिले आकाश हुआ।

खगोल या आकाश मण्डल :–

१– अन्तरिक्षः खगोल में जब सूर्य नक्षत्र पृथिवी आदि पिन्ड उत्पन्न हो जाते हैं तब उसे अन्तरिक्ष कहते हैं। [ऋ० ३/५४/१९]

२– ध्रुव व वरुण :–समस्त ज्योतिपिन्ड आकाश में ध्रुव को धुरी भानकर घूमते हैं और जिस परिधि मण्डल में ध्रुव उन्हें घूमाता है वह वरुण है। [ऋ०८/४१/९]

४.०४ राशि :–

जिस परिधि में पृथिवी भ्रमण करती है उसे 'क्रान्तिवृत्त' कहते हैं। इस क्रान्तिवृत्त के १२ भाग हैं जिन्हें राशि कहते हैं। राशियों के नाम आकाश में विद्यमान नक्षत्रों की आकृति के आधार पर रखे गये हैं। मेष [भेड़], वृष बैल, मिथुन [स्त्री-पुरुष का जोड़ा] कर्क [केकड़ा], सिंह [शेर], कन्या [लड़का] तुला [तराजू], वृश्चिक [विच्छू], धनु [धनुष], मकर [मगरमच्छ], कुम्भ [घड़ा], मीन [मछली], ये १२ राशि हैं। पृथ्वी जब एक राशि से दूसरी राशि में जाती है तब उसे संक्रान्ति कहते हैं। जब पृथ्वी मकर राशि में संक्रमण करती है तब उसे मकर संक्रान्ति कहते हैं।

सूर्य अपने स्थान में गति करता हैं। और तृथ्वी उसके चारों और भ्रमण करती है। पृथ्वी की गति के कारण सूर्य छः मास पर्यन्त पृथ्वी के क्रान्तिवृत से उत्तर से और छः मास दक्षिण में उदय होता है। इसे ही उत्तरायण और दक्षिणायन कहते हैं। उत्तरायण में दिन बड़े और रात्रि छोटी होती हैं। दक्षिणायन में दिन छोटे और रात्रि बड़ी होती है। मकर सक्रान्ति से उत्तरायण का आरम्भ होता है। इसमें कर्क, सिंह, तुला, वृश्चिक और धनु ये छः राशियां होती हैं।

मकर संक्रान्ति उत्तरायण की आरम्भक है, उत्तरायण काल में प्रकाश अधिक औरअन्धकार कम होता है । इसलिए मकर संक्रान्ति का भारत में विशेष महत्व है । यह अन्धककर को छोड़कर प्रकाश की ओर बढ़ने की प्रेरणा देती है ।

वैदिक साहित्य में उत्तरायण को देवयान कहते हैं । देव का अर्थ विद्वान् है । विद्वान लोग इस उत्तारायण काल में संसार से प्रस्थान की कामना करते प्रकाश बहुल समय में प्राण विसर्जन से देवलौक में जाने की भावना रखते हैं । भीष्म पितामस शर शैय्या पर उत्तरायण काल की प्रतीक्षा करते रहे हैं । उन्होंने उत्तरायण आने पर हो प्राणों का परित्याग किया ।

४-०५ नक्षत्र :–

उन तारों को कहते हैं जो कि व्योम कक्षा में परस्पर यथावत अन्तर सदा वर्तमान दृष्टि से गोचर होते हैं । अथर्व १९/८/१-२ में २८ नक्षत्र बताये हैं : अथर्व १९/७/२–५ तक वे यों तो गिनाये हैं [सुवमग्ने-आवहन्तु] वृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरः, आर्द्रा, पनर्वसु,पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा, फल्गुनी उत्तरा फल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, राधा, या विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वा, आषाढ़ा, उत्तरा आषाढ़ा, अभिजित, श्रवण, श्रविष्ठा, [घनिष्ठा] शतभिषक् [पूर्वा, भाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा], रेवती दो अश्वयुन–अश्विनौ, भरणी ।

४.०६ ऋषि :–

जो तारे व्योम कक्षा अर्थात नक्षत्र चक्र को छोड़कर अन्यत्र आकाश में वर्तमान हुये ध्रुव की परिक्रमा करते हुए स्वस्थान में यथाक्रम वर्तमान हैं, वे ऋषि कहलाते हैं । प्रथम स्थान सप्तऋषियों का का है जो ध्रुव तारे के चारों और एक श्रंखला में परिक्रमा करते हैं, जिनके ऊपर दो ताराओंके ठीक सामने ध्रुव तारा उत्तर में है ।

४ ०७ आकाश गंगा :–

चन्द्र विहीन रात्रि में आकाक में धुंधली श्वेत चमकदार लम्बायमान नदी जैसी प्रकाशधारा है । यह धुंधले समूह गुच्छ तारे हैं । अथर्व १३३/१–३ [हिरण्यबर्गा० शुचय। भवन्ति] में उसे आपः कहा गया है ।

इस वैदिक सत्य के समर्थन में हम हिन्दुस्तान टाइम्स २२-२-८० से अमेरिका का एतद्विषकक अनुसन्धान छपा था जिसमें बताया गया है कि

आकाश गंगा में लगभग २५० गुच्छे तारों के वहां हैं। जिनमें से हरेक गुच्छे में एक लाख तारे हैं। और संसार की सब [इनआॅरगैनिक] धातुओं का मूल कारण वहां उपस्थित है।

४.०४ ग्रह मण्डल :–

वेदों में गृहों के लिए रोचस नक्षत्र, तथा उक्षा शब्द प्रयुक्त हुये हैं। कहीं पर वे ३५ बताये गये हैं और कहीं पर सैकड़ों। ऋग्वेद ८/५५/१ में 'शत उक्षणों' गृह उपगृह कहे हैं पर मुख्य ग्रह सात हैं। सूर्य उन सबमें सब से बड़ा है।

सूर्य के चारों और निम्नलिखित ग्रह चक्कर लगाते हैं।

बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नैपच्यून और प्लेटो। इनमें से अंतिम दो का पता तो क्रमशः १८४६ और १९३० ही में लग पाया हैं।

सूर्य और पृथ्वी के बीच में बुध और शुक्र दो ग्रह हैं। अर्थात यह अपेक्षाकृत सूर्य के अधिक निकट है, अतः शायद उनमें जीवन न हो। पृथ्वी से इन ग्रहों की दूरी निम्न प्रकार है।

१– चन्द्रमा	=	२२१६० मील
२– शुक्र	=	२३७०१००० मील
३– मंगल	=	३३९१६००० मील
४– बुध	=	४८०२०००० मील
५– सूर्य	=	९१४०६००० मील
६– बृहस्पति	=	३६५८१६००० मील
७– शनि	=	७४२६४६००० मील
८– यूरेनस	=	१६०६१८३००० मील
९– नेपच्यून	=	२६७४३५७००० मील

४.०८ चन्द्रमा :–

अधुना चन्द्रमा के विषय में दो मुख्य मत हैं :–

१– करोड़ों वर्ष पहिले जब पृथ्वी द्रव्यावस्था में थी और इतने वेग के साथ घूमती थी दिन तीन ही घंटे का होता था। पृथ्वी के प्रबल वेग के

कारण इसका वह अंश जहां अब प्रशान्त महासागर है, निकल कर पृथक हो गया और चन्द्रमा बन गया।

यदि नक्शे में अफ्रीका तथा दक्षिणी अमेरिका के भाग को काटकर मिलाया जावे तो पहिले का पश्चिमी भाग तथा दूसरे का पूर्व भाग सट कर रह जाता है और वैज्ञानिक कहते हैं कि यह दोनों भूभाग पहिले एक थे-जुड़े हुए थे। पृथ्वी की गति या भूचाल [अत्यधिक गति] से कालान्तर में पृथक् हो गये। चन्द्रमा का नक्शा प्रशान्त महासागर वाले भूभाग के नक्शे में फिट हो जाता है।

२– दूसरा मत यह हैं कि चन्द्रमा, सूर्य की भाँति एक स्वतन्त्र ग्रह था। जब यह नभ मण्डल में चक्कर काटता हुआ पृथ्वी के नियट आया तो पृथ्वी ने अपनी आकर्षण शक्ति से इसे अपनी ओर आकर्षित कर लिया। अतः चन्द्रमा इसी प्रकार पृथ्वी की परिक्रमा करने लगा जैसे पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा केवल २९$\frac{1}{2}$ दिन में कर लेता हैं।

<u>पहले हम चन्द्रमा के विषय में वैज्ञानिकों द्वारा उपलब्ध आधुनिकतम जानकारी देते हैं।</u>

सर्वप्रथम गैलीलियों ने दूरदर्शी सतह को गौर से देखा। उपरान्त ज्योतिविदों ने उसके बारे में विशद जानकारी प्राप्त की। मानव अब चन्द्रमा पर उतर चुका है और वह दिन अब दूर नहीं जब अग्निबाणों की सवारी पर चन्द्र-यात्रा मामूली बात हो जाएगी। उस समय चन्द्रमा के विषय में हमें विशद जानकारी प्राप्त होगी।

चन्द्रमा पृथ्वी की भांति अपारदर्शी तारा कहलाता है। पृथ्वी में स्वयं का प्रकाश नहीं है बल्कि सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होती है। और चूंकि सूर्य की परिक्रमा किया करती है। अत: ग्रह कहलाती है। चन्द्रमा में भी स्वयं का प्रकाश नहीं है बल्कि सूर्य प्रकाश से ही प्रकाशित होती है। और चूंकि पृथ्वी की परिक्रमा निरन्तर करता हैं अतः उपग्रह कहा जाता है।

हम लोग चन्द्रमा की सतह के उस गोलार्द्ध को देख पाते हैं कि जो सूर्य की किरणों से प्रकाशित होता है। और इस प्रकाशित गोलार्द्ध के केवल उस भाग को देख पाते है जो कि हमारी ओर रहता है। अतः हम लोगों को शेष

चन्द्रमा दिखलाई नहीं पड़ता । प्रतिदिन चन्द्रमा थोड़ा बढ़ता हुआ दिखता है। एक सप्ताह पश्चात पहले चतुर्थांश पर चन्द्रमा से प्रकाशित गोलार्द्ध का आधा भाग दिखलाई पड़ता है और उसके पश्चात धीरे-धीरे बढ़ता हुआ एक सप्ताह पश्चात् संपूर्ण प्रकाशित गोलार्द्ध पूर्णमासी पर दिखलाई देता है। प्रतिदिन चन्द्रमा की बढ़ोत्तरी एक कला कहलाती है। शास्त्रों में पूर्ण चन्द्र १६ कलाओं का कहा जाता है । [इस उतार चढ़ाव से समुद्र में ज्वार भाटा तथा मासिकोपरन्त स्त्री के आर्तव की बढ़ोतरी का अनुपात गृह सूत्रों में वर्णित है। लेखक]

प्रतिदिन चन्द्रमा का प्रकाशित भाग घटता जाता है और लगभग दो सप्ताह बाद अमावस्या पर वह दिखलाई नहीं पड़ता।

पृथ्वी से चन्द्रमा की औसत दूरी लगभग ३,८५,४०० किलोमीटर है। चन्द्रमा का व्यास लगभग ३,५७५ किलोमीटर है। स्पेन्सर जोन्स के अनुसार लगभग ८० चन्द्र । मिलकर पृथ्वी की संहिता के बराबर होंगे। चन्द्रमा का गुरुत्व पृथ्वी के गुरुत्व का १.६ भाग निकलता है। वह व्यक्ति जो पृथ्वीतल पर ५ फुट ऊंचे से कूद सकता है, वह चन्द्र सतह पर ३० फुट ऊंचाई तक कूद सकेगा। यदि कोई क्रिकेट का खिलाड़ी गेंद को पृथ्वी तल पर १५० गज की दूरी तक फेंक सकता है तो चन्द्रतल वह गेंद आधे मील की दूरी तक फेंकने में सफल होगा।

अपनी अक्ष पर चन्द्रमा ठीक इतने समय में एक घूर्णन पूरी करता हैं जितने में वह पृथ्वी को एक परिक्रमा लगा लेता है । यही कारण है कि चन्द्रमा का एक ही गोलार्द्ध हमें बारहों मास दिखलाई पड़ता है। इस बात में विश्वास नहीं होता कि केवल संयोग से चन्द्रमा के घूर्णन और परिक्रमण काल बराबर हैं। इस घटना के पीछे कोई भौतिक कारण विद्यमान है। जिसके कारण का पता अब तक नहीं लग पाया है।

चन्द्रमा में कोई वायुमंडल नहीं है । अतः वहां उषा अथवा संध्या आलोक नहीं होता। दिन से रात तथा रात से दिन अचानक होता हैं। जैसे रात में किसी कमरे में बिजली बत्ती के जलाने या बुझाने से कमरा प्रकाशमय या अन्धकारयय अचानक होता हैं। विगत वर्षों में चन्द्रमा पर पहुंचने वाले वैज्ञानिकों को आक्सीजन एवं सिलिंडरों में भरकर अपने साथ ले जाना पड़ा क्योंकि वहां वायुमण्डल न होने के कारण उनका जीना मुश्किल हो जाता।

ऐसे वायुविहीन वातावरण में आपस में हुई बातचीत हम नहीं सुन सकते। वंदूक दगने की आवाज भी सुनाई नहीं देगी। विलक्षण निस्तब्धता का साम्राज्य चारों ओर छाया रहता है। चन्द्र ग्रह पर बराबर साड़े पन्द्रह दिनों तक सूर्य किरणों से प्राप्त उष्मा के कारण सतह का ताप बढ़कर १०० अंश सेंटीग्रेड हो जाता है। और चट्टाने उबाल लेने लगती हैं। रात्रि के समय ताप घटते घटते १५० अंश सेंटीग्रेड नक पहूंच जाता है।

चन्द्र गोलार्द्ध का अधिद्धांश तल उबड़ खाबड़ और खुरदरा है। समुद्रों वनों या बर्फ के मैदानों का नाम निशान तक नहीं मिलता। पृथ्वी की ओर के चन्द्रतल का नक्शा विलिकिन्स ने बड़ी वारीकी से बनाया है जिसमें अनेक पर्वत मालाएं बहुतेरी एकाकी चोटियों और लगभग ६०,००० ज्वालामुख दिखाए गये हैं। इनके अतिरिक्त कई बड़े समतल मैदान हैं जिन्हें भूल से गैलीलियो सागर समझ बैठे और उसी प्रकार उनका नामकरण किया गया था किंतु आज दिन ये मैदान सागरों के प्राचीन नामों से संबोधित किये जाते हैं जैसे वषा सागर, 'निर्मल सागर' इन्द्रधनुषों की खाड़ी' आदि। कुछ बड़े ज्वालामुखी के नाम प्राचीन दार्शनिकों एव ज्योतिर्बिदों के नामों पर रखे गये हैं जैसे टाइको, केपवर, प्लेटोज्वालामुख आदि।

पर्वत श्रेणियों के नाम पृथ्वो के पर्वतों पर रखे गये हैं। जैसे आल्प्स, एपिनाइंस, काकेशस आदि। कई पर्वत चोंटियों ८,००० [२६,००० फट] तक तक ऊची हैं। और अपने माउट एवरेस्ट से होड़ लेती है। अधिकाश पर्वत ज्वालामुखों की विलोम है।

सारा चन्द्रतल इतना उबड़ खाबड़ है कि उसकी सतह पर वायुयान को छोड़कर अन्य आवागमन के साधनों द्वाथा यात्रा करना अत्यन्त कठिन साबित होगा। रेल की पटरियां बिछाना या सड़के बनाना दुःसाध्य मालूम पड़ेगा।

चन्द्र लोक निराला है, इसलिए चन्द्रलोक की यात्राएं निराली साबित हुई। यात्रियों को सागर, नदियाँ झील, तालाब, या किसी प्रकार का जल जल देखने को नहीं मिला और न ता किसी प्रकार के पेड़ पौधे देखने को मिले। जीव बस्तुओं का नामोनिशान तक नहीं द घिोखा र। चारों ओर स्तब्धता छाई मालूम पड़ो। इस अस्वाभाविक शांति को भंग करने के लिए उनके शब्द भी उनको सुनाई नहीं दिए। धूल और धु धलका उसकी दृष्टि को

कम करने के लिए वहां विद्यमाम नहीं था। सूर्य और ताप उन्हें चमकते हुए साफ दृष्टिगोचर हुए। धूप से उत्पन्न छायाएं काली और बहुत तीखीं नजर आई। सतह के बड़े बड़े मैदान रेगिस्तान जैसे मालूम पड़ें। अधिकाँश प्रदेश पहाड़ी नजर आए। एक वाक्य में हम कह सकते हैं कि पृथ्वी की तुलना में उन्हें चन्द्रमा मृतप्राय लोक सा दिखा।

[इसलिए कुछ मृतात्माओं के चन्द्र लोक में जाने की जनभुति भारत में चली आती है—लेखक]

४.०८२ शुक्र :-

चन्द्रमा के पश्चात आकाशीय पिण्डों में चमकीला औप बड़ा शुक्र ग्रह है। जो कि रात्रि के पिछले भाग में और प्रातःकाल में पूर्व दिशा की ओर सूर्योदय से तीन घन्टे पहिले से सूर्योदय होने तक दिखलाई पड़ता है कभी कभी रात्रि के पूर्व भाग में पश्चिम की ओर सूर्यास्त के पश्चात से तीन घन्टे तक भी दिखाई पड़ता है।

अथर्व ६/५३/१ [द्यौश्चम इदं ...... मगश्च] में शुक्र का वर्णन है। ऋ० १/८३/५ [यज्ञैरथर्वा प्रथमः ...... यजमहे] में सूर्य की किरणों से काव्य =उशना के चमकने का वर्णन है। काव्यः उशना शुक्र के लिए आया है। भार्गव भी पर्यात है। इले शुक्र वेन भी कहा हैं। इसी ये वीनस शब्द बना है। [ऋ० १०/१२३/१]

४.०८३-बुध :-

बुध का वर्णन वेद में नहीं है। शायद कण्व शब्द इसी तारे के लिए प्रयुक्त है। [ऋ० १/११२/५] कुछ वैज्ञानिक बुद्ध [वीनस] ग्रह को ही नरक मानते हैं। पत्रिका टाईम्स आफ इण्डिया के २ नवम्बर ८३ के अंक में (ए.पी.) के हवाले से कैलीफोर्निया से पालो आल्टो द्वारा प्रेषित एक समाचार छपा था। जिनका अनुवाद नीचे दिया जा रहा है।

अमेरिका के एक वैज्ञानिक श्री बियान टून (Brian Toon) ने जो एक शोध संस्थान National (Aeronautics And Spacc Administration Ames-Reasearch Centre) में कार्यरत है यह बयान दिया है कि योरूपादि देशों में जिस वीनस ग्रह को प्रेम और सौन्दर्य का देवता मानते रहे है, वह तो यत्र तत्र वर्णित नरक जैसा है। वहां गन्धक के तेजाब के बादल छाये रहते हैं तथा वायु मण्डल का प्रेशर (दबाव) इतना है

कि मनुष्य को दबाकर चकनाचूर कर दे तथा वहां का तापमान ८५° से० है। उसी संस्थान के श्री कौनवे लियोजी ने कहा है कि वहाँ वायुमण्डल के तीन स्तर है। ऊपर तथा बिलकुल नीचे वाला तो धीरे-धीरे ग्रह के साथ घूमते रहते हैं। और एक चक्र २६३ दिन में पूरा होता है। परन्तु मध्य स्तर ग्रह के चारों और केवल चार दिन में चक्कर लगा लेता है। इसका कारण उस वायु की गति से है जो भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर चला करती है। इस ग्रह में भूडोल भी आते हैं तथा प्रदीप्त ज्वालामुखी भी हैं जिनसे लावा निकलता रहता है तथा बिजली भी कड़कती रहती है।

रुस ने वीनस-१३ नामक उपग्रह छोड़ा हुआ है जो नवम्बर ८६ तक वहाँ पहूंच जावेगा तब वहाँ के बारे में सूचनाएं प्राप्त होंगी।

स्थिति वाचक लोक :–

स्थान वाचक गवेषणा के बाद कुछेक विचारकों ने जो स्थिति वाचक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है, उस पर भी विचार किया गया है। दिल्ली में स्थित एक आध्यात्मिक केन्द्र (नं० ६–एबी, सफदरगंज, दिल्ली-२६) ने मृत्यु समय के व्यक्तियों के शरीर पर परीक्षण करके सुस्थिर किया है कि जीव मरने पर तीन प्रकार के शरीरों में रहता है।

१– Etheral :–आकाश तत्व से भी सूक्ष्म एक मीडियम जिसमें होकर प्रकाश यात्रा करता है। वह शव से तीन फीट ऊपर तक मंडराता रहता है।

२– Esterial :–यह तारों से संबधित क्षेत्र है। शायद यह आकाश गंगा का छोटा रुप हो। इसकी दूरी ६ फीट तक हो सकती है।

३– मानसिक शरीर :–यह स्थान परक न होकर स्थिति परक है। इसके बाद पुनर्जन्म होता है।

अमेरिका की Meta Science Foundation ने फ्रेन्कलीन वाथ कारोनिया नगर में कुछ परीक्षण जार्ज मीक ने किये हैं जिनमें चेतना के अन्य स्तपों पर स्थित आत्माओं से सम्पर्क करने का प्रयत्न किया गया है। उसने स्पिरोकाम Sperocom नामक यन्त्र का भी निर्माण किया है। यन्त्र में विभिन्न Frequencies पर प्राप्त शब्द संकेक इकट्ठे किये गये हैं और उनका विश्लेषण किया जा रहा है।

वैज्ञानिकों ने एक और थ्यौरी प्रकाशित की है कि जितने Inorganic पदार्थ हैं वे तारामंडलों के क्षेत्र में घर्षणादि से बनते हैं और वर्षा तथा उल्कापात से आकर पृथ्वी पर गिरते जा रहे हैं। मैण्डलीफ के वैलेन्सी चार्ट में क्रमबद्ध दिखाया गया है और आज रसायन विज्ञान की सर्व सम्मत मान्यता है कि पोजीट्रोन अर्थात बिजली के भार युक्त धन विद्युत के चारों और ऋण विद्युत इलैक्ट्रोन के द्रुतगति से घूमने ही विभिन्न तत्वों के अणु बनते हैं। जब एक धन विद्युत के चारों और एक इलैक्ट्रान घूमता है तो हाईड्रोजन, दो से आक्सीजन, तीन ले लोहा बतता है। यह विद्युत् गर्जन की प्रक्रिया आकाश में ही विभिन्न अनुपातों से सम्भव है। अतः उपभोग के यह पदार्थ आकाशस्थ लोकों में भी सम्भव है। प०शिवशंकरशर्मा काव्यतीर्थ ने अपने किये वेद भाष्य में ७० प्रतिशत ऋचाओं को आकाशीय तारामंडलों में परिव्याप्त तारामण्डलीय प्रक्रिया का वर्णनकर्ता बताया है।

इस परिपेक्ष्य में कुछ पत्रिकाओं की कतरनें व्याख्या सहित निर्देशक महोदय के पास निरीक्षणार्थ छोड़ी थीं। खेद है कि कुछ अन्य आवश्यक सामग्री के साथ वे कहीं रखकर उन्हें भूल गए हैं। ग्रहों में मानव जीवन के विषय में ऐडवर्ड आशपोल के विचार भी उन्हीं पृष्ठों में उद्धृत किये गये हैं। सौभाग्य से मेरी लिखी पुस्तक आर्यो को यज्ञ प्रक्रिया से पृष्ठ ६५ पर उद्धृत दो समान्तर हैं जो यहाँ अविकल देते हैं।

१– पत्रिका हिन्दुस्तान टाईम्स अंक ५ फरवरी–८० में छपी कलकत्ता में हुई विज्ञान कान्फ्रेंस की एक रिपोर्ट :–

लखनऊ से आये तीन मौसम वैज्ञानिकों ने यह सूचना दी कि लखनऊ में हुई वर्षा में टैस्ट करने पर चांदी के कण निकले। सर्व श्री आदर्श कुमार, डी. के. गोयल एवँ बी. के. हाण्डा ने यह भी कहा है कि उस सैम्पल में चाँदी के अतिरिक्त काफी परिमाण में लिथियम, तांबा, जस्ता और कोबाल्ट भी पाया गया। आगे यह भी बताया कि १९७६ के बाद से तो लखनऊ में हुई वर्षा में चांदी की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। इस परिपेक्ष्य में यज्ञ द्वारा खनिज सम्पदा में वृद्धि सम्भाव्य है।

२– इसी पत्रिका के २२ फरवरी के ८० वें अंक में :–नरोरा स्थित आणविक संस्थान के इंजीनियर परमहंस तिवारी ने अपनी खोजों के आधार

पर सिद्ध किया है कि आकाश खाली जगह का नाम नहीं है i उसमें एक और तो प्रभावशील, घर्षणरहित गतिवान फ्लूइड के परमाणु हैं और दूसरी ओर सृष्टि के हर तत्व के मूल कारगरुप अणु भी हैं । प्रथम से अमेरिका की कैलोफोरमिया यूनीवर्सिटी से डा० बसई देपालमा ने बिजली प्राप्त करने का जनरेटर बनाया है ओर द्वितीय से पृथ्वी की हरेक तत्व के पदार्थ अर्थात सोना व अन्य धातुएं बनाई जा सकती हैं। इन उद्धरणों से सिद्ध है कि :—ऊपर के लोकों में मानवोय जीवन है।

बाहरी अन्तरिक्ष में जीवन की खोज पर अमेरिका में एक संस्था और कार्यरत हैं। उसका नाम है (Socicty For Extra-Territorial Rneligence Set-1)

O.B.E. (Out of Body Experience) :—

आत्मा अपने इस शरीर को छोड़कर अन्यत्र विचरण करने हेतु चली जावे। इस संदर्भ में शकराचार्य के जीवन का एक प्रकरण इस देश में बहुत प्रचलित है कि यौवनीय काम का प्रभाव अनुभव करने हेतु वे यह शरोर छोड़कर किसी परकाया में प्रवेश किये थे। सम्भवतः आत्मा का एक ही अंश इस भाँति जाता होगा, अन्यथा प्रथम शरीर तो शववत् हो जाना चाहिए। इस सन्दर्भ में डा० रेमण्डमूडंदे ने अपनी पुस्तक (लाईफ आफ्टर डैथ) में एक परीक्षण रिपोर्ट दी थी जो एक व्यक्ति पर किया गया था। इसमें एक व्यक्ति जो मरणासन्न था उससे इन्टव्यू लिया गया था। वह मृत घोषित कर दिया और विधि विधान से वह फिर जीवित पाया गया। उससे अन्तराल के दृष्टि विवरण पूछे गये। उसने द्रुतगति से ऊपर उठना, फिर आकाश में तैरना, फिर आनन्दानुभूति के अनुभव बताये।

सोते में मनुष्य का उठ खड़ा होना, घूम फिर आना, फिर आकर सो जाना, और निद्रा भंग होने पर उठकर इस बीच हुई सब बातों से अनभिज्ञता प्रगट करना, इस प्रकार के ओ.बी.ई. अनुभवों की प्रथम सोपान लगती है। आगे आने बाली घटनाओं कापूर्वाभास दूसरी सोपान लगती है।

इस ओ. बी. ई. के विषय पर आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के डावरेक्टर सोसिल ने भी प्रयोग किए हैं। उन्होंने ऐसे कई व्यक्तियों

को यात्राओं का विवरण दिया है । दुर्भाग्यवश वह सारा मैटर निर्देशक कहीं रखकर भूल गये हैं। पर कैलीफोरनिया विश्वविद्यालय के पैरासाइकोलोजी विभाग के डाक्टर इयान स्टीवेंशन ने भारत आकर एक प्रकरण पर पूरी खोज की थी जिसने गिरधारीलाल जाट की आत्मा का शंकरलाल त्यागी के पुत्र सोमनारायण की काया (या आत्मा) अस्थायी रुप से में प्रवेश हो जाना सिद्ध हो गया था । इन सब प्रकरणों से आत्मा का दूसरे लोकों में विचरण स्पष्टतः सिद्ध है ।

उल्कापात (Materoids) पर अन्वेषण :

दक्षिणी फ्रान्स के ओरजेनिल नगर में १८६४ में गिरे भारी ठोस द्रव्य का विश्लेषण (एनलिसस की गयो। और फिर १६३८ में तनजानिया देश में गिरे बिशाल मीटराईड पर कई वैज्ञानिकों ने अमेरिका में खोज को। इनमें जार्ज वनाज, वार्टनागी, हान्सडीटर तथा प्लग मुख्य थे । इन सभी विश्लेषणों में यह पाया गया कि इनमें जीवनापयोगी पदार्थ विद्यमान थे। जहाँ तक कि हाईड्रोकार्बन विद्यमान थे। अन्य आरगेनिक पदार्थ भी मिले। इससे स्पष्ट है कि जहाँ से 'यह उल्कागण आये, यहां जीवन अवश्य होगा ।

मुक्ति प्रकरण :—

जीव कीं अमरता के प्रकरण में यह बहुचर्चित बात यह है कि मुक्ति में निबास का कोई लोक है जहां यदृच्छा भोग प्राप्त होते हैं। कर्मफल वाले अध्याय में जो प्लेट प्रदर्शित है और जिसमें सब से ऊची श्रेणी Celestial Bliss करके दिखाई है वही पूर्व के वाङ्मय में वर्णित मुक्ति है। यों मोक्षण अर्थवाली मुचलृ धातु से निष्पक्ष शब्द का अर्थ है छूटना। छूटना बद्ध होने से सम्बन्धित है। ऋग्वेद १/२४/१५ में यह ऋचा आई है (उदुत्तमं वरुण पाशमस्तदद्याद्यमं विमध्यम श्रथाया अथावयमादित्य व्रते तथानागसो आदितये स्याम) यहां वरुण देव के तीन पाश बताये हैं—उत्तम, मध्यम, तथा अधम और इन बन्धनों से छूटने हेतु क्रिया रुप में मुक्षीय शब्द ऋग्. ७/२४/१५ प्रयुक्त हुआ है।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतम् ।।

हम त्रयम्बक की स्तुति करे और पकने पर जैसे खरबूजा बेल से गिर पड़ता है वैसे मृत्यु द्वारा शरीर से छूटें। अमृत तत्व से न छूटें।

पर न्याय दर्शन के ४/१/५९ में ऋण क्लेश प्रवृत्यनबन्धा दपवर्गाभाव: कह कर बनुबन्ध चार प्रकार के बताये हैं–ऋण, क्लेश प्रवृत्ति और कर्मफल। और इनसे छूटने को अपवर्ग कहा है। वेदों में साक्षात मोक्ष शब्द का प्रयोग हुआ ही नहीं है। उपरोक्त मुक्षीय शब्द ही क्रिया रुप में ऋक् और यजु में एक बार आया है। ऋग्वेद में अमृतत्व शब्द आया है, सो भी ३६ बार प्रयुक्त है। वह यजु: में आठ बार सामवेद में पांच बार, अथर्ववेद में सात बार प्रयुक्त है। इसके अतिरिक्त परम पदम, स्वर्हितम, नाक:, तृतीयधाम, केवलम् तथा स्व: शब्द प्रयुक्त हुये हैं। इनसे स्पष्ट है कि यह स्थान विशेष है, स्वर्ग नरक से अलग तीसरा धाम है, जहा दुख नहीं है, जो सबसे उत्तम पद है तथा जहाँ केवल कारण शरीर उसके साथ रहता है और वहां मात्र इच्छा करते ही सब सुख उपस्थित हैं।

उपनिषदों में प्रयुक्त शब्द हैं :–ब्रह्मलोक, आनन्दा।।, अत्यन्त पुरुषार्थ। अपवर्ग, हानम्, निश्रेयस:, शाश्वतं सुखं, शाश्वती, शान्ति, और मुक्ति। इनके अर्थों से भी मोक्ष लोक की इयत्ता और स्वभाव पर प्रकाश पड़ता है।

यहाँ ऋग्वेद १०/६/४ दृष्टव्य है :–

जहां अमृतत्व के अनशु की निम्न उपलब्धियां बताई हैं :–ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवों वर्ष्माणं बसते स्वस्तये।

क्षीण होने वाली, शक्ति, प्रकाश किरणबत यात्रा, सुरभित, शान्त और दिव्य स्थानों पर बसने वाले)

और ऋग्वेद ९/११३/७ इस प्रकार वर्णन देता है।
यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिल्लोके स्वर्हितम।

(वहाँ निरन्तर ज्योति का प्रकाश है। वहां सुख ही सुख है। न क्षय होता है न बुढ़ापा। हे पवमान आप मुझे उसी लोक में रक्खें। वहीं में पूर्णाभिषेकी बनकर रहूं)

इसी सूत्र के १० वें (यत्र काया) तथा ११ वें मंत्र (यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुद: प्रमुद: आसते) में भी यही भाव है कि उस लोक में तृप्ति हैं, आनन्द है, हर्ष है तथा सब कामनाएं पूर्ण होती है।

ब्राह्मण ग्रन्थ इन संकेत को स्पष्ट करते हैं :–

शतपथ ब्राह्मण का० १४

(श्रृन्वन श्रोत्र भवति ·········अलंकारो भवति ।

वहाँ संकल्प मात्र से जीव सुनता, स्पर्श करता, देखता व गन्ध लेता है, स्पर्श-विकल्प करता है, निश्चय करता है, स्मरण करता है :–

छान्योग्य ८/१२/३ में कहा गया है कि–

एवमेवैष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योति रुप सम्बन्ध स्वेन रुपेणाभिनिष्पद्यते । स उत्तम पुरुषः । स तत्र पर्येति लक्षन् क्रीडन यानेर्वा ज्ञातिभिर्वारममाणः स्त्रीभिर्वा नोषजनं स्मरनिन्दं शरीरं स यथा प्रयोग्य आचरणं युक्त एवमेवायस्मिञ्छरीरे प्राणते, युक्तः ।

[यह प्रसन्न आत्मा बस शरीर से निकलकर परम ज्योतिर्मय परमधाम को प्राप्त करके परम शुद्ध स्वरुप से प्रकट होता है । वह उत्तम व्यक्तित्व है, वह स्त्रियों से वाहनों से, बन्धुओं में हंसता-खेलता हुआ रमण करता है । रथ में जुड़ँ घोड़ा रुप यह जुआ उतारकर मुक्त हो जाता है)

मैं फिर दुहराता हूं कि कुरान की बहिश्त का नक्शा इसी श्लोक चे आधार पर हुआ होगा । जीव पुनर्जन्म के पूर्व लाक लोकान्तर में घूमता रहता है । उसके पुनर्जन्म का समय भी कर्मफल और उसकी यदृच्छा जन्म लेने पर निर्भर रहता है और जन्म के समय के नक्षत्रादि का प्रभाव साथ आया ज्योतिष ग्रन्थों में बताया हैं यह प्रभाव मानसिक, शारीरिक, भोग-निर्देशक तथा भावुक होने का हो सकता है, तदनुरुप ही जन्म समय निर्धारित होगा कहते हैं यदि किसी का सूर्य दूसरे चन्द्र के खाने में पड़ेगा तो उनमें गाढ़ स्नेह होगा । परन्तु जन्म के समय का तात्पर्य कुछेक के डनुसार गर्भ स्थापन वाला कुछेकों के अनुसार गर्भ के ६ मास तथा अन्यों के अनुसार जन्म लेने की पहिली श्वास से हैं । जन्म होने तक स्मृति में आत्मा को याद रहता है कि उसे कैसा जीवन बिताना है । जो भी ही जन्म समय की ग्रहों की स्थिति से व्यक्ति विशेष के जीवनोद्देश्य बताये जा रहे हैं । ज्यातिषियों ने १२ राशियों को ४ आदतों वाले गुप में बांटा है ।

१– अग्निप्रभारी = Sun is arises, Leo or Sagittarius

इनमें, शक्ति, कार्यवाहक क्षमता और भावुकता होती हैं । अच्छे वैदय प्राध्यापक ।

३– वायुप्रभावी = Gemini, Virgo, Acquarius
मानसिक श्रम में सिद्धहस्त, अच्छे रोग अनुसन्धाता।

३– पृथ्वी प्रभावी = Taurus, Virgo, Capricorn.
पृथ्वी और भौतिकता में लिप्त।

४– जल प्रभावी = Cancer, Scorpio, Pisusc
सहानुभूति पूर्ण, नाजुक मिजाज, आत्मानुसन्धान में रत।

परन्तु यह Planets किसी व्यक्ति की स्वतन्त्र इच्छा Free Will के मार्ग में बाधक नहीं बन सकते। यह मात्र झुकाव पैदा करते हैं। उदाहरणतः पूर्ण चन्द्र के समय जल में उछाल होता है। चन्द्रोदय तथा पूणचन्द्र के समय बहुत से बच्चे जन्म लेते हैं। बीमारी, पागलपन तथा अकाल मृत्युएं इन दोनों दिन अधिक होती हैं। पागलपन और आत्महत्याएं बढ़ती हैं। आखिर हमारे शरीर में जल भाग ९०% है।

वैदिक मुक्ति का स्वरूप (१)

मनोहर विद्यालंकार

अथर्ववेद चतुर्थ काण्ड के २३ से २९ तक ७ सूक्तों को पापमोचन सूक्त माना जाता है। इन सबका ऋषि एक है, मृगार, किन्तु देवता प्रत्येक सूक्त का पृथक्-पृथक् है। यहां एक विचित्र संयोग दृष्गिोचर होता है। 'अंहोमुचम् शब्द सम्पूर्ण ऋग्लेद में (१०-६३-९) के एक बार ही प्रयुक्त हुआ है। वहां वह इन्हीं देवताओ की ओर इंगित करता है, जिन देवताओं के सूक्तों का दर्शन मृगार ऋषि ने किया है। क्रमशः सूक्त संख्या २३ के अग्नि, २४ के इन्द्र, २६ के द्यावापृथ्वी, २७ के मरुतः और २९ के मित्रावरुणौ की चर्चा इस मंत्र में स्पष्ट दिखाई देती है। २५ व सूक्त का देवता वायुः या सविता है। इनके स्थान पर प्रस्तुत मन्त्र में भगः आया है। स्वामी दयानन्द ने अपने ऋक् भाष्य में भगः २ का अर्थ वायु और सूर्य किया है। इसी तरह २८ वें सूक्त का देवता भवाशर्वौ, रुद्रावा है, और प्रस्तुत मंत्र में दैव्यंजनम् आया है। स्वामी दयानन्द ने अपने ऋक्भाष्य में दैव्यम् ३ का अर्थ चेतन ब्रह्म अर्थात सगुण ब्रह्म ही सृष्टि का निर्माता है और संहर्ता है। इस तरह ऋग्वेद के अहोमुक् देवता और मृगार ऋषि द्वारा दृष्ट अथर्ववेद के पापमोचन सूक्तों के देवता समान ही हैं।

अहस् पाप और दुरित :

वेद में तीनों शब्द पर्यायवाची प्रतीत होते हैं। ये तीनों शब्द दुख के प्रापक आधि, व्याधि, रोग दोष, तथा कर्म व स्वभाव के लिये सामान्य शब्द है। और दूसरे आगः, एन।, रपः, रिप।, निर्ऋतिः, अर्वतिः आदि शब्द प्राणी (सामान्य) के अन्तर्गत मनुष्य, गौ, अश्व आदि की तरह अवान्तर भेदों के सूचक हैं। इन तीनों शब्दों की व्युत्पत्ति से यह धारणा पुष्ट हो ज ती है।४

वेद में अंहस्, पाप और दुरित से ही मुक्त होने की पुन पुनः प्रार्थना का गई है। आवागमन या जन्ममृत्यु के चक्र से मुक्ति की प्रार्थना वेद में कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती ५

दुःख हमें दो तरह से प्राप्त होते हैं–बाहर से या अन्दर से। बाहर से प्राप्त होने वाले दुःख प्राकृतिक घटनाओं–अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि अथवा वन्य प्राणियों शत्रुओं से मिलते हैं, इन्हें आधिभौतिक और आधिदैविक कहते हैं। अन्दर से प्राप्त होने वाले दुःख, स्वास्थ्य के नियमों का उल्लंघन करके प्राप्त होने वाले रोगों से अथवा अपने स्वभाव और कर्मों के कारण उत्पन्न मानसिक चिन्ताओं से मिलते हैं, इन्हें आध्यात्मिक कहते हैं।६

इन सभी प्रकाप के दुःखों को प्राणी अपने प्रयत्न और परिश्रम से ही दूर कर सकता हैं। देव तो केवल सुमति प्रदान करके हमारी सहायता करता है, यदि हम स्ववं देव बनने का प्रयत्न कर रहे हों।

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः।
वीहि स्वस्ति सुक्षितिं दिवो नृन्द्विषो अंहांसि दुरिताता यरम तवावसा तरेम।।

ऋक् ६-२-११

वैद्यक शास्त्र में जिन वस्तुओं (शराब, माँस आदि) को कुपथ्य माना जाता है, नीतिशास्त्र में जिस आचरण (असत्य, हिंसा, स्तेय, परिग्रह आदि) को हेय माना जाता है, और शासन तन्त्र में जिस व्यक्तियों (चौर, लुटेरे, व्यभिचारी आदि को) अवाञ्छनीय और दण्डनीय माना जाता है, उन्हें धर्मशास्त्र में पाप या पापी माना जाता है।

'मुच्'—मुक्ति—मोक्ष :–

'मुच्' धातु का वेद प्रभुत मात्रा में प्रयोग हुआ है। मुच् धातु के तीन अर्थ हैं–छोड़ना, छुड़ाना तथा आनन्दित होना या आनन्दित करना।

मुक्ति और मोक्ष का अर्थ भी दार्शनिकों ने जन्ममृत्यु के चक्र अथवा आवागमन से छूट कर परब्रह्म में निवास करते हुए आनन्दित रहन माना है।

विचित्र बात यह है कि वेद के बीस सहस्र मन्त्रों में मुक्ति या मोक्ष शब्द एक बार भी प्रयुक्त नहीं हुआ है । फिर भी आस्तिक दर्शन मुक्ति या मोक्ष को वेदानुमोदित मानते हैं । हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे पुराणकारों ने मनुष्य को सन्मार्ग पर चलाने के लिये, प्रलोभन रुप में स्वर्ग को कल्पना की है, वैसे ही दर्शनकारों ने प्रलोभन रुप में मुक्ति की कल्पना की है।

स्वर्ग शब्द तो फिर भी वेद में अनेक बार आया है, यद्यपि वह किसी स्थान के लिए प्रयुक्त न होकर परिस्थति या अवस्था के लिए प्रयुक्त हुआ है। वैसे ही मुक्ति या मोक्ष शब्द भी वेद से अत्यन्त परवर्ती कल्पना है। स्वर्ग और मुक्ति दोनों ही जीवित रहते हुए विशेष मनोस्थिति की अनुभूतियां हैं, मृत्यु के अनन्तर किसी स्थान या अवस्था की प्राप्ति नहीं हैं।

वेद में मुक्ति और मोक्ष शब्द की मूल धातु 'मुच्' का प्रयोग जीवन से सम्बद्ध पाप, रोग, दोष, आदि व्याधि अथवा शत्रु और अहस् से छूटने या छुड़ाने के अर्थ में हुआ है।

महामृत्युञ्जय मन्त्र :-

ऋक् ७-५९-१२ ऋक के दो नाम हैं १. महामृत्युञ्जय माँत्र अथवा २. मृत्युविमोचनी उपनिषद्। इस माँत्र में आए 'मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्' शब्दों का अर्थ प्राय: 'हे त्र्यम्बक ! आप ऐसी कृपा करें कि मैं मृत्यु से छूट जाऊं और मोक्ष को प्राप्त करके उससे कभी वियुक्त न होऊ' किया जाता है।

किन्तु यदि संस्कृत भाषा की शैली को ध्यान में रखें तो इसका अर्थ अमृत=न+मृत=जीवित होगा। इसका अर्थ मोक्ष हो ही नहीं सकता।

यहाँ 'अमृत' का अर्थ जीवित या जोवन करने का औचित्य लोकव्यवहार और वेदमत्र दोनों से संम्पुष्ट होता है।

लोक में देखा जाता है कि व्यक्ति के बहुत बीमार होने पर, उसके दीर्घायुष्य की कामना से मृत्यु के चंगुल से छुड़ाकर जीवित रहने के लिए इस मन्त्र का जाप किया जाता है। इस प्रथा को देखते हुए 'मृत्यु' का अर्थ रोग और 'अमृत' का अर्थ जोवन के अतिरिक्त दूसरा करना संभव प्रतीत नहीं होता।

अमृत या जीवन :–

वेदमन्त्र के प्रमाण के रुप में अथर्व० ३–११–१ को देखिये। यह मन्त्र विचक्षण भिषक् की आत्मविश्वासपूर्ण सांत्वना के रुप में है। वह कह रहा है कि 'तुझे चाहे सामान्य रोग है या राजरोग है, चिन्ता को छोड़ दे। मैं तुझे बिलकुल स्वस्थ कर दूंगा, जिससे तू सुखपूर्वक जीवित रह सके।'७

इस मन्त्र में मृत्यु के दो कारण बताए हैं–सामान्य रोग या राजरोग। उसके बाद वह कहता है कि तू चाहे कितना क्षीण हो गया है। अथवा बुरी तरह मृत्यु के चंगुल में फंस चुका है, फिर भी निश्चिन्त रह, क्योंकि अब तेरा केस मैंने ले लिया है। अब तू पूरे १०० वर्ष जीवित रहेगा।८

मृत्यु के कारण एक दो नहीं सैकड़ों हैं। उन्हें भी मृत्यु ही कह देते हैं, तू चिन्ता मत कर। मैं उन सबको दूर भगा दूंगा।९

मृत्युञ्जय मन्त्र में आया है 'मा अमृतात्' और इस मन्त्र में आया है 'मुञ्चामि त्वा जीवनाय'। पहला मन्त्र रोगी की उक्ति है–हे वैद्य! तू हमें मृत्यु से छुड़ा दे, जीवन से मत छुड़ा।' दूसरा मन्त्र भिषक् की उक्ति है–'मैं तुझे रोग से छुड़ाता हूं, जिससे तू सुखपूर्वक जी सके।' बात एक ही है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मृत्युञ्जय मन्त्र में 'अमृतात्' का अर्थ जीवन करना चाहिए, मोक्ष नहीं। यह भाव अथर्व ५-६-८ मन्त्र में आया है।

[मनोहर विद्यालंकार के लेख के आधार पर साभार लेखक]

भाग–५ [उपसंहार]

इस अन्वेषण से जीव की अमरता सिद्ध होने पर उपलब्ध लाभ :–

१– मृत्यु के भय से मानव जाति की उन्मुक्ति क्योंकि उसे आगामी जीवन का प्रवेश द्वार समझा जावेगा।

२– मृत्यु उपरान्त बने रहने वाली चेतना का रोग कष्ट से रहित सिद्ध होने पर भविष्य जीवन के स्वस्थ बने रहने से आश्वस्त होना।

३– निकटतम सम्बन्धी के दिवंगत होने पर दुःख व क्लेश का अपहरण क्योंकि वह तो पुनः कहीं प्रगट होकर बाल्यावस्था एवं यौवन पुनः प्राप्त करेगा।

४– मृत्यु को अपवित्र मानने के भाव का समाज से मिटना और सूतकादि तज्जन्य क्लेश का अन्त।

५– कतिपय असत्य साम्प्रदायिक मान्यताओं का अन्त । शुद्धि, तेरहवीं, तर्पण, वर्षी आदि के अपव्यय से हिन्दू समाज का बचाव ।

६– यह भाव जागने पर कि मेरी आत्मा और मन बने ही रहेंगे, से मनुष्य में यह भाव जागृत होगा कि उसको अपनी भावनाओं और उद्वेग हीं इस जीवन में उसको मानसिक प्रसन्नता और परिपक्वता के कारण बनेंगे ।

७– सम्भवत: कभी दिवंगत पर पुन: न उत्पन्न आत्माओं से संपर्क का कोई यांत्रिक मार्ग निकल आवे और युग युग का संचित ज्ञान उपलब्ध हो सके ।

८– हर व्यक्ति समझेगा कि वह इस विशाल सृष्टि का नागरिक है और तब अर्न्तजातीय एव अन्तर्राष्ट्रीय भ्रातृभाव पनपेगा ।

९– कर्मफल के सिद्धान्त के कारण मनुष्य पापरत न होगा । और चरित्रमय तथा स्थिर समाज का निर्माण होगा ।

अपनी पुस्तक री-इन्कारनेशन में जोय फाक्स ने भी यही निष्कर्ष निकाले हैं ।

Joe Fisher is convinced that a wider acceptance of reincarnation can only be boneficial to society and lead to a more peaceful world

'Consider the transformation of earthly existence were reincarnation aecepted into the soulstream of the global population as a guide by which to live,' he writes.

"Acutely aware of reaping harvests of past deeds simultaneously sowing the seeds of future lives, most people would behave very differently.

Life on the planet would be overhauled-and hugely for the better.

'Wars, crimes, recism, nationalism and sexual chauvinism would be radically diminished.'

To back up his argument the auther notes that 'Not religious war has been wagod in 2,500 years of Buddhism.'

BIBLIOGRAPHY

१– ऋक्, यजु एवं अथर्व पर सायण भाष्य तथा यजुर्वेद पर दयानन्द भाष्य।

२– शतपथ ब्राह्मण पर पं० बुद्धदेव विद्यालंकार का भाष्य।

३– एतरेय ब्राह्मण पर आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री का भाष्य।

४– उपनिषदों पर शंकर स्वामी और महात्मा नारायण स्वामी का भाष्य।

५– दर्शन शास्त्रों पर पं० उदयवीर शास्त्री गाजियाबाद का भाष्य।

६– महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका तथा सत्यार्थ प्रकाश

७– मृत्यु और परलोक (महात्मा नारायग स्वामी)

८– Auto Biography of a Soul –कर्मनारायण कपूर।

९– जीवात्मा (पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय)

१०– Llfe Everlasting –प्रिंसिपल दीवान चन्द जी कानपुर।

ब्रहदारण्यकोपनिषद : श्लोक ४/४/४, ६/२/१५ एवं १६

ऐतरेय उपनिषद : श्लोक ४/४ से ६ तक

छान्दोग्य उपनिषद : श्लोक ८/७/३, ८/११ एवं जनश्रुति को रैक्व मुनि का उपदेश

मुण्डकोपनिषद : मु० ३/१/९ एवं ३/२/७

माण्डूक्य उपनिषद : ३/४/५

श्वेताश्वर उपनिषद : ५-९-१०

गीता : अध्याय ४ श्लोक १-२-४-५ एवं अध्याय १८/१ श्लोक २३ से २५ तक। निरुक्त : १५-६

11 Rosicruciou Digest (Magazine Collection)
Rosicrucion Park, Son Jose, C,A, 95191–U.S,A.
Mentry of Life,

12 International Yoga Guide (Magazine Collection)
Yoga Rerearch Fonndation, 6111, S.W. 74th Ave.
Misni Florida 33143, U.S.A.

13 Two Worlds)Magazine Collection)

Two worlds Publishing Co Ltd, Great uQeen Street London WG 28 588.

14 Fate (Magazine Collection)
Clark Publishing Co. 170 Futute Way Deptt. D0027 Harison, OH 43302-U.S.A.

15 Hanuman Foundation (Reports)
Dying Project, P.O. Box 624 Smota Cnax. CA-90061 U.S.A.

16 The Sadhana Society Inc. (Reports).
-1530 Private Road, Premcott Arisona-86401 U.S.A.

17 Psychical Research Foundation Inc. (Reports)
Duke Station, Durbom N.C.O. 27763 U. S. A.

18 Phyeical Reaıch Foundation Inc. (Reports)
Centre For Spiritual Awarness-Lake Pabun Road, Lakemont Georgia 30552 U.S.A.

19 Vedic Path (Collections)
Gurukul Kangri University, Hardwar.

20 Life beyond : (Megazine Gollection) —Poona

21 George W. Meek–Director of Research-P.O. Box No. 737 Fanklia. NB 28734 U.S.A.

22 Dr. Pandit G. Kannaiah Yogi Atıma Yoga Jnana Sabha, Madras-600053 India.

23 The secrst of Death-Hhrved Alluminusen Publicaticn Savitri Nagar Estate, Mussoories-248179 (U.P,)

24 S.N. Matterami (M.A.) Fair Pild-B/30.S.V. Road, South Avenue Santa Cruse-Bombay-54

25 Dr. Mrs. Yaahdhura Wadbaani Shah MA, Deean College Pune-6.

26 Karan Narain Kapoos : Autobiography of a Souı.

अन्तरकथा (Obitor Dicta)

वनस्पति और वृक्षों में जीव नहीं है :—

शाध को इत्यलम कह कर पृष्ठ १६५ पर समाप्त कर दिया है। उसमें इस सन्दर्भ को परिभाषित करके ही छोड़ दिया है। यहां पर थोड़ा विस्तृत विमर्श करते हैं।

जगदीश चन्द्र बोस ने पत्तों में अनुभूति का होना वैज्ञानिक उपकरणों से सिद्ध किया था। जैन का नास्तिक दर्शन ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार करते समय यही दलील देता है कि प्रकृति में प्रभूत ज्ञान है, अतः किसी ज्ञानवान सत्ता की सृष्टि और प्रकृति के पदार्थों के संचालन लिये की आवश्यकता नहीं है। सामिष-भोजी दलील देता है कि वनस्पति (घास-पात) और औषधि वृक्ष लता इत्यादि में जीव है अतः उस भक्षण भी पशु के मास भक्षण के सदृस ही है। और कतिपय संस्कृत ग्रन्थों में आया है कि महान कुकर्मी और व्यभिचारी अगले जन्म में वृक्ष वनस्पति बना दिये जाते हैं। अतःअधिक अन्नके लिए यह हिन्दू दर्शन व्यभिचारादि को आवश्यक मानता है और पशुओं में जीवन न मानने का ईसाई सिद्धान्त भोजन के लिये पशु वध को क्षम्य मानता है क्योंकि इसके कतल से उन्हें पीड़ा नहीं होती है।

इन पांच महान अनर्थों से बचने के लिए वृक्षादि में जीव न होने के आर्ष वैदिक दर्शन पर उहापोह आवश्यक है, जो शोध के बाद यहा अब देते हैं।

२- वृक्षादि में सार्वजनीन चेतनता तो अवश्य हैं। उसी के फलस्वरुप वे (i) बढ़ते हैं, (ii) फूलते हैं (iii) नष्ट होते हैं और (iv) नष्ट होते समय अपना बीज छोड़ जाते हैं जिसमें से वही वृक्ष पुनः उदित हो जाता है। इतना साम्य ममुष्यादि चल योनियों से अवश्य है। पर यह साम्य मनुष्य के शरीर से है जो पार्थिव पदार्थों (क्षत, जल, पावक, गगन व समीरा) तथा कुछ Inorganic पदार्थो से ही बना है। यह गुण शरीर या आत्मा के नहीं है। हां पार्थिव शरीर का यह उत्प्रेरक अलश्य है।

३. **वृक्षादि में निम्न गुण नहीं होते हैं :—**

चिन्तन घटनाओं को मष्तिष्क के कम्प्यूटर में सुरक्षित रखा, खोज समस्याओं का निराकरण, योजना बनाना, योजनाओं की सफलता पर सुख और असफलता पर दुख अनुभव करना, ईर्ष्या करना, द्वेष करना, त्याग करना, पश्चाताप करना, ज्ञानार्जन, स्वाध्याय, और कृतवता कृतघ्नता।

४. निसन्देह ऐसे वृक्ष है जो अपने Orbit में आने वाले को खींचकर उसका रक्त पीते हैं। पर वे ऐसा करने को बाध्य हैं। वे अच्छे-बुरे दोनों को खींच लेने या किसी को खींचने से इन्कार नहीं कर सकते। उनमें कर्तुम शक्ति है। जीव सहित योनियां में कर्तुम, अकर्त्तुम तथा अन्यथा कर्त्तुम सिद्धान्त से बंधे हैं चाहें तो सत्कर्म करें चाहे न करे चाहे उसका उल्टा करें क्योंकि वे सभी कर्म करने में स्वतन्त्र हैं। वृक्षादि की सार्वजनीन चेतना मात्र नियम वह कर्त्तुम है। अकर्तुम या अन्यथा कर्त्तुम नहीं। अतः वृक्षादि में विख्यात जीव नहीं है।

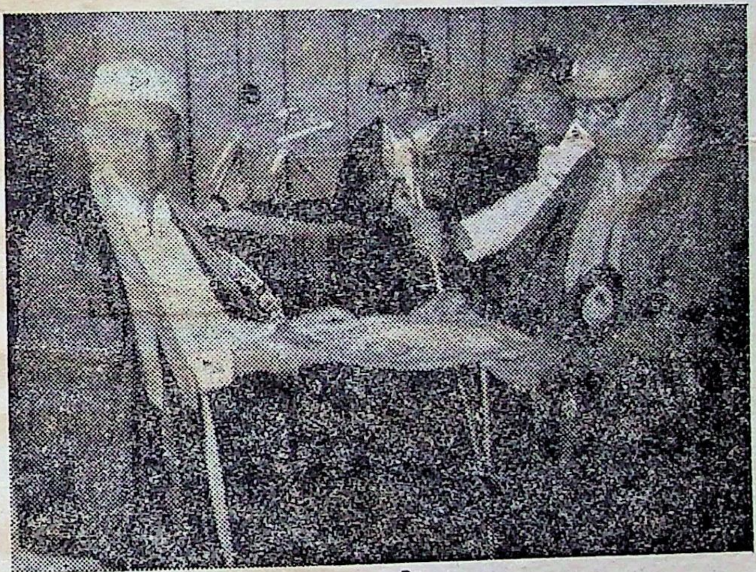
लेखक-परिचय

डा. रामेश्वर दयाल गुप्त का जन्म ८ फरवरी १९२० को हुआ। इस दिन अंग्रेज सरकार ने कटारपुर काण्ड में चार वरिष्ट हिन्दू मनीषियों को गौवध को सब उपायों से रोकने के अभियोग में फांसी दी थी।

शिक्षा तथा आजोविका-डी ए.वी. कॉलेज कानपुर से B.Sc. पास करके संचार विभाग में जूनियर इन्जीनियर १९४४ में बन कर १९६४ में इन्स्टीटयूट आफ इलक्ट्रोनिक एवं टेलीकोम इन्जीनियर्स के सदस्य (इन्जीनियर वत) नामाङ्कित होकर १९७८ में डिविजनल इन्जीनियर पद से सेवा निवृत्त हुये।

पदों पर कार्यरत रहते हुये भागलपुर विश्वविद्यालय से कला में स्नातक तथा भोपाल विश्वविद्यालय से M.A. तथा Ph.D. राजनीति विसान में किया और दो वर्ष [1978-80] शि० द० पोस्ट ग्रेजुएट कौलेज गाजियाबाद में उसी विषय के प्रवक्ता रहें।

पद निर्वृत्ति के उपरान्त गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार के नियमित छात्र रहकर वैदिक साहित्य में M.A., Ph.D. की डिग्री प्राप्त की।



[वर्ष १९८७ के कन्वोकेशन में कुलपति से Ph.D. डिग्री प्राप्त करते समय का चित्र]

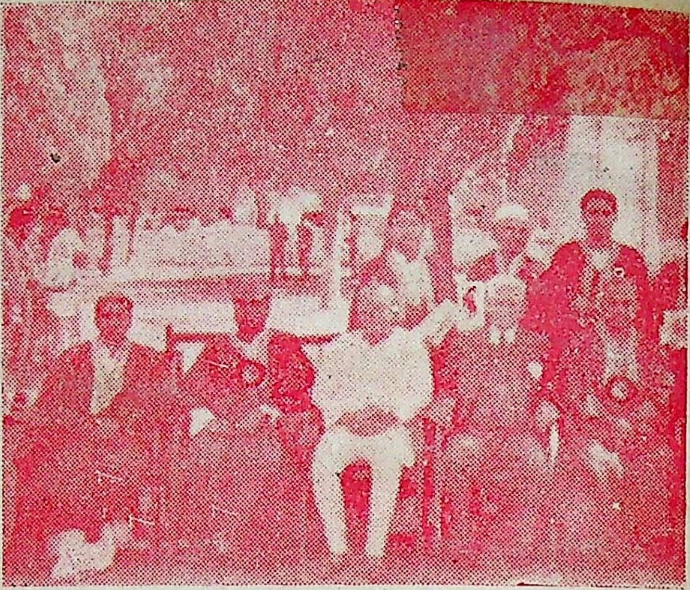
तदन्तर निरन्तर साहित्य सृजन में रह कर लगभग तीन-तीन सौ पृष्ठ के निम्न ग्रन्थ रचे।

i) वैदिक त्रैत दर्शन ii) वैदिक राजदर्शन iii) शिव और विष्णु ऐतिहासिक पुरुष थे। iv) निराकार का ही स्तवन v) ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या) समीक्षा (हिन्दी) पद्य में सम्पूर्ण सन्ध्या vi) देवयज्ञ प्रक्रिया विश्लेषण vii) वैदिक वाङ्मय में विज्ञान viii) पुनर्जन्म क्षौर कर्मफल व्यवस्था ix) माँस भक्षण निषेध x) पुकार पशु-पक्षियों की xi) नारो: अभिशाप या वरदान xii) वैश्य समुदाय का इतिहास xiii) वैश्यवर्ण: महाउरु शाखा xiii] आरक्षण की विष-बेल। xiv) सोलह संस्कारों से संस्कृति का निर्माण

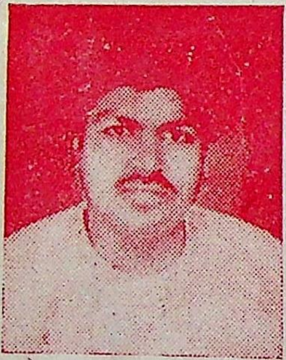
कृतज्ञता–ज्ञापन

[i]

कुलमाता गुरुकुल कांगड़ी यूनिवर्सिटी के समावर्त्तन [Convocation-1987] पर परिद्रष्टा [Visitor] कुलाधिपति, कुलपति [Vice-Chancellor] आदि।



[ii]



ग्रन्थ के परिशोधनकर्त्ता डा. मनुदेव बन्धु M.A. [त्रय] Ph D.
अध्यक्ष—वैदिक साहित्य विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

[iii]



श्री आदित्य कुमार आर्य, पानीपत (हरियाणा) जिन्होंने अपनी स्व० पुत्री अनिता रानी की स्मृति में आर्य साहित्य के सृजन-प्रकाशन को प्रोत्साहन देने की परम्परा जारी रखते हुये इस ग्रन्थ मुद्रण की आधा राशि अग्रिम प्रदान करके प्रकाशन को संभव बनाया।

[iv]

लेखक का पुत्र इन्जीनियर यतीन्द्र कुमार गुप्त डिप्टी जनरल मैनेजर भारत हैवी इलैक्ट्रोकल्स हरद्वार-जिसके प्रदत्त संरक्षण की सुरक्षा और व्यवस्था के कारण लेखक अबाधरूप से लेखन कार्य में गत १८ वर्षों से संलग्न है।